प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार १९५८
मूल्य
अढ़ाई रुपये

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

प्रकाशकीय

इस पुस्तक मे डा० कैलासनाथ काटजू के सस्मरणात्मक तथा अन्य लेखो का मग्रह किया गया है। इन रचनाओ को हम दो श्रेणियो में रख सकते है १ व्यक्तियो के मस्मरण, २ अदालती मामलो की यथार्थ कहानिया। पहली श्रेणी के सस्मरण जहा हमारे मर्म को स्पर्श करते है, वहा दूसरी श्रेणी की कहानियो से न केवल हमारा मनोरजन होता है, अपितु निजी स्वार्थ के लिए अदालती मामलो में होनेवाले प्रपचो के प्रति तिरस्कार का भाव भी पैदा होता है।

विद्वान लेखक के सोचने का ढग अपना है। इमलिए उन्होंने इस सग्रह की कुछ रचनाओ में प्रचलित मान्यताओ के विपरीत एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया है। लेखन-शैली का तो कहना ही क्या! वह इतनी रोचक और सजीव है कि सामान्य घटनाओ में भी उससे जान पड गई है। अदालती मामले तो इतने दिलचस्प है कि उन्हें पढने में कहानी का-सा आनद आता है।

हमे विश्वास है कि पाठक इस पुस्तक को चाव से पढेंगे और इसके द्वारा उन्हे पर्याप्त विचार-सामग्री प्राप्त होगी।

पुस्तक के कुछ लेख मूल हिंदी में लिखे गये हैं। कुछ का अनुवाद श्री सतराम 'विचित्र' तथा कुछ थोडे से का अन्य बधुओ ने किया है। हम उनके आभारी है।

दूसरा संस्करण

कुछ ही समय मे पुस्तक का दूसरा सस्करण पाठको की सेवा मे उपस्थित करते हुए हमे बडा हर्ष हो रहा है। पुस्तक की सभी क्षेत्रो में बडी प्रशमा हुई है और उसे खूब पसद किया गया है। आशा है, इस नये सस्करण का भी उसी प्रकार स्वागत होगा।

—मत्री

भूमिका

इस किताब में मेरे लेखो का सग्रह है। इनमें से कईएक लेख तो अदालती मुकदमो के है, जिनसे अपनी वकालत के दिनो में मुझे वास्ता पडा था। लेकिन कुछ लेख ऐसे व्यक्तियो के भी है, जिनमें मुझे विशेपता दिखाई दी थी। मै खासतौर पर पाठको का ध्यान दो लेखो की ओर दिलाना चाहता हू। एक मेरी माताजी के वारे में है, दूसरा पिताजी के। ऐसा मैं इसलिए नही कर रहा कि वे कोई साहित्यिक दृष्टि से वडे ऊचे दर्जे के है, वल्कि उनके विपय की दृष्टि से। वरसो पहले मेरी धारणा हुई कि हरएक वाल-वच्चेदार मनुष्य का यह फर्ज है कि वह अपने वच्चो और नाती-पोतो के लिए अपने माता-पिता तथा पूर्वजो का हाल लिखकर छोड दे। मिसाल के तौर पर, मेरे नाती-पोतो को मेरे माता-पिता का परिचय सिवा उनके नाम-धाम की जानकारी के और क्या हो सकता था? मैंने सोचा कि यह ठीक नही है, और मुझे ऐसा परिचय तैयार करने की कोशिश करनी चाहिए, जिसमे मेरे नाती-पोतो को साफ मालूम हो जाय कि उनके वाप-दादे कैसे थे, उनकी आदतें कैसी थी, किस तरीके के उनके विचार थे और वे कैसे जिदगी विताते थे। सबसे पहले मैंने 'माताजी' लेख लिखा। सुप्रसिद्ध हिंदी मासिक 'सरस्वती' के सपादक, मेरे मित्र, श्री देवीदत्त शुक्ल ने उसे देखा और छापने की इच्छा प्रकट की। मुझे कुछ आश्चर्य हुआ और मैंने उसे उन्हें वताया भी, क्योकि वह लेख महज अपने घर के लोगो के लाभ के लिए लिखा था। मेरे मन में कभी भी यह वात नही आई थी कि वह छप भी सकेगा। शुक्लजी ने कहा कि यह ठीक है कि इस लेख में कोई खास साहित्यिक छटा नही है, किंतु वह इस तरीके से वेमिसाल है कि हमारे देश मे अवतक किसीने भी अपनी

माता के बारे में खास तौर पर नहीं लिखा। मेरा खयाल है कि मेरी माताजी लाखों में एक थीं और उनका दिल और दिमाग आला दर्जे का था। मगर इसके साथ ही मेरा मानना है कि भारत में हमारी सारी माताएं अपने परिवार के प्रति अपने निस्वार्थ एवं निष्ठापूर्ण कर्तव्य-पालन में सचमुच देवियां ही होती हैं। भारतवासी अपनी माताओं के ऋणी हैं, इसे वे वास्तव में, समझ नहीं पाते। मैं अपनी मेहनत को सफल मानूंगा और गर्व अनुभव करूंगा, अगर मेरे इन लेखों से प्रेरित होकर हमारे पाठक अपने मां-बाप के बारे में जरूरी जानकारी लिखकर तैयार कर दें। हमारे देश में कुछ ऐसा साहित्य भी निकलना चाहिए जो पारिवारिक जीवन से संबंध रखता हो और उसमें सिर्फ बड़े लोगों का ही नहीं, बल्कि उन लोगों का भी जिक्र होना चाहिए जिनके पास बहुत ज्यादा धन-संपत्ति नहीं है।

कबीलों के बारे में आजकल सब तरह की बातें कही जाती हैं। किसी की भी राय क्या न हो लेकिन इस बात से इनकार नहीं

भी वडी चतुराई की जरूरत होती है। वास्तव मे वकील ही अपने साथी वकीलो की योग्यता को आक सकता है। वकालत का मार यह है कि किमी भी मामले का निचोड लेकर अदालत के सामने यथा सभव थोडे-से-थोडे में इस ढग से पेश किया जाय कि अदालत कायल हो जाय। इस सबध में 'पहियो के निशान' एक अच्छा उदाहरण है और उसकी ओर मैं खास तौर से पाठको का ध्यान खीचना चाहता हू।

वाकी के कई लेखो में भी अदालती मामलो की घटनाए है, जो रोचक होते हुए भी पाठको के लिए अपना विशेप महत्व रखती है। 'दैनिक समस्याए और उनका सामाधान' में मैंने परिवारो के जीवन को सुखी और शात वनाने का एक नया उपाय वताया है। इसी तरह 'अपराध और अपराधी' में अपराधियो के प्रति अपने वर्तमान रवैये को वदलने का सुझाव दिया है।

'जवाहरलाल नेहरु वकील के रूप में' जवाहरलाल के वकालत के दिनो की तथा वाद में विशेप अवसरो पर वकील के रूप में उनके अदालत में जाने की दिलचस्प कहानी है।

मुझे खुशी है कि यह किताव हिंदी की प्रमुख प्रकाशन-सस्था, सस्ता साहित्य मडल, से निकल रही है।

आशा है, हिंदी के पाठक इसके लेखो को चाव से पढेंगे।

—कैलासनाथ काटजू

१, क्वीन विक्टोरिया रोड,
नई दिल्ली, १ मार्च १९५५

विषय-सूची

मैं भूल नहीं सकता

: १ :

माताजी

हरएक को अपनी माता प्यारी होती है और माता के समान इस लोक में दूसरा कोई नही दीखता, परतु मेरी माता केवल मुझको ही प्यारी नही थी, जिन-जिनसे उनका सपर्क हुआ, उनको वह सैकडो-हजारो में एक मालूम हुई। मुझे अब लगता है कि मेरी माता ५० वर्ष जल्दी पैदा हुई। यदि ५० वर्ष बाद होती, तो उनके जो विचार थे और ईश्वर ने जो बुद्धि उनको दी थी, उसको देखते हुए वह हमारे देश में महिला-समाज के लिए बहुत उत्तम कार्य करती और समाज में बडा नाम पाती।

मेरी माता अपने माता-पिता की इकलौती सतान थी। उनके पिता पडित नदलाल काश्मीरी पडित थे। वह पजाब में पहले जिला हिसार और बाद में बहुत वर्षों तक होशियारपुर मे सरकारी अधिकारी रहे। मेरी माता का जन्म माघ सवत १९१५ (जनवरी १८५९) में सिरसा, जिला हिसार में हुआ। मा-बाप ने नाम रामप्यारी रखा। ससुराल में सुहागरानी कहलाई। वास्तव मे दोनो नाम सुदर और शुभ घडी में रखे गये। वह निस्सदेह राम की प्यारी थी और अत समय में अपने विवाह के ७१ वर्ष पश्चात अपना सुहाग अपने साथ लेकर गई।

नदलालजी अपनी बेटी को बहुत चाहते थे। घर में रामप्यारी और दादी दोनो मौजूद थी। प्यार-दुलार तो बच्ची का बहुत था, लेकिन वह जमाना कुछ और ही था। महिलाओ में शिक्षा इत्यादि का चलन नही था। मेरी माताजी कहा करती थी कि उनकी दादी को यह बात जम गई थी कि रूस के रहनेवाले सब घुडमुहे होते है। धुए की गाडी, यानी

रेल, उन दिनो नई-नई निकली थी, मगर हमारी दादीजी को मरते दम तक यह विश्वास नही हुआ कि इंजन भाप से चल सकता है। रेल पर तो कभी बैठी ही नही थी। घर मे स्त्रियो का तो यह हाल था, परतु पिताजी को विद्या से बडा प्रेम था। बहुत उमग से अपनी पत्नी के मना करने पर भी बेटो को खुद पढाया-लिखाया। बाप से हिंदी और फारसी सीखी, दिमाग ईश्वर ने बहुत अच्छा दिया था। संस्कृत खूब पढी और गणित भी। भूगोल, नक्षत्र-ज्ञान अच्छी तरह जानती थी और ज्योतिष मे तो इतना कमाल था कि बडे-बडे पडितो और ज्योतिषियो से वार्तालाप करती थी। फारसी मे 'गुलिस्ता-बोस्ता' और 'दीवान हाफिज़' बराबर याद थे। विचार-शक्ति बहुत ऊची थी। जो एक दफा पढती या सुनती थी, वह सदा के लिए याद रहता था। धर्मशास्त्र अपने-आप सब पढे थे, और गीता तो कठस्थ-सी थी।

नौ वर्ष की अवस्था मे सवत १९२५ (सन १८६८) में मेरे पिता पडित त्रिभुवननाथजी काटजू के साथ उनका विवाह हुआ। हमारा घर जावरा (मालवा) मे है, शहर से दूर एक कोने में। सवत १९२५ मे जावरे मे रेल भी नही थी। छोटी जगह पुराने विचार, पुराने चलन और रीति-रिवाज। मेरी माताजी यहा ५० वर्ष की आयु तक पर्दे मे बद रही। विवाह छोटी आयु मे हुआ था और लाडे अरसे के बाद सब घर-गृहस्थी का बोझ उनपर पड गया। देवर-जेठ सब अलग रहते थे। घर का कुल काम-धधा, रोटी-पानी, बच्चो का पालना-पोसना, कपडो की सिलाई, सब अपने-आप करती थी और उसपर पढने-लिखने की रुचि। खुद पढती थी और दूसरो को पढाती थी। दोपहर को १-२ बजे जब घर के धधे से कुछ सुभीता मिलता, तो महल्ले की लडकिया आ जाती और छोटी-सी पाठशाला लग जाती और मेरी माताजी लडकियो को पढना-लिखना सिखाती थी।

काश्मीरी पडितो मे परदा बाहरवालो से होता है। घर में ससुर या जेठ से नही होता। कुटुब के जितने लोग थे, उनकी गिनती काफी थी। वे सब स्त्री-पुरुष मेरी माताजी को घेरे रहते थे। घर के सब पुरुष और

लडके उनसे वीसो वातो पर वार्तालाप करते थे। कभी समाचार-पत्र सुनाना, कभी दुनिया की चर्चा, राजनैतिक वाते। रियासत के मामले वह सव सुनती और समझती थी। मुझसे कहती थी कि एक दफे विवाह के कुछ वर्षों वाद तुम्हारे ताऊ शाम को आये और कहने लगे कि सुहागरानी, आज शाम को नवावसाहव के यहा एक सज्जन ने एक सवाल वताया जो अखवार में छपा है, लेकिन हम लोगो में से किसीको उसका जवाव नही वन पडा। मैंने पूछा, क्या सवाल था, तो कहने लगे, सवाल था कि एक आदमी के नौ लडके और उसके पास ८१ मोती, और मोती के दाम इस तरह कि एक मोती एक रुपये का और दूसरा दो का और तीसरा तीन का और इस प्रकार एक-एक रुपया वढता जाय और ८१वें का दाम ८१ रुपये हो। पिताजी चाहते हैं कि हरएक लडके को ९-९ वाट दें, परतु वटवारा ऐसा हो कि हरएक का कीमत में हिस्सा वरावर हो। मैंने सुना, मैं चुप हो गई, सवाल कुछ कठिन लगा। जव सव लोग सो गये, मैं कागज-पेंसिल लेकर वैठी और दो घटे में मैंने सवाल हल कर दिया और उसका उत्तर तुम्हारे ताऊजी को दूसरे दिन दे दिया। उनको वडा आश्चर्य हुआ। नवावसाहव के दरवार में ले गये और वहा वडे गौरव से वयान किया कि मेरी भावज ने सवाल सही कर दिया। सव लोग दग रह गये।

वास्तव में २०-२२ वर्ष की आयु की एक महिला के लिए, जिसने अपने घर में खुद ही पढना-लिखना तथा गणित सीखा हो, ऐसे प्रश्न का सही हल करना एक आश्चर्यजनक वात थी।

मेरी माताजी घर में साधारण स्त्री की तरह सभी काम-धधा करती थी, परतु उनके विचार उस समय को देखते हुए और जिस वातावरण में उनका जीवन वीत रहा था, विल्कुल निराले और वहुत ऊचे थे। उनका दृढ विश्वास था कि मर्दों ने स्त्रियो को दवा रखा है और वह कहा करती थी कि वे औरतो को पशुओ की तरह अपनी जायदाद समझते हैं। कहती थी कि हमको चूल्हे के सुपुर्द कर दिया है। औरतो को मर्द रोटी-कपडा देकर यह समझते हैं कि उनके घर की दासी हैं। मै जव वडा हुआ और

इन बातो को समझने लगा तो मैं हसता था और कहता था—"अम्माजी, तुम रसोईघर में चूल्हे के पास बैठकर अन्नपूर्णादेवी मालूम होती हो।" इस-पर वह बहुत बिगडती थी और कहती थी कि तुम लोगो ने यही कह-कहकर, मीठी-मीठी बातो में लुभाकर, हमको अपाहिज बना रखा है। उनकी जबरदस्त इच्छा थी कि हरएक स्त्री इतना पढ-लिख ले और हुनर-दस्तकारी सीख ले कि वह अपना पेट खुद पाल सके और मर्दो का मुह देखती न रहे। कहती थी कि मैं शादी-विवाह के खिलाफ नहीं हू, घर-गृहस्थी करना तो स्त्रियो का धर्म है। मगर मैं नहीं चाहती कि स्त्रिया दुर्बल बनकर रहे। स्त्री और पुरुष में वह पूरी बराबरी की दावेदार थी और उनका अपना विचार यह था कि बराबरी की ही बुनियाद पर पति और पत्नी अपना घर चलाये। इस दृष्टि से वह स्त्री-शिक्षा की बडी जबरदस्त समर्थक थी और जब कभी सुनती या समाचार-पत्र में पढती कि देश की किसी स्त्री ने बी० ए०, एम० ए० पास किया है या नाम हासिल किया है, तो बाग-बाग हो जाती थी। यह चर्चा मैं आज की नहीं करता हू, बल्कि ६०-६५ वर्ष पहले की, जबकि गाव व कसबे की तो बात दूर, बडे-बडे नगरो में भी स्त्री-शिक्षा का प्रचार नहीं था।

सतानोत्पत्ति के बारे में भी उनके विचार ऐसे थ, जो अब पाये जा रहे है। ब्रह्मचर्य और उसके द्वारा सतान-निग्रह की वह बडी पक्षपाती थी। कहती थी कि बच्चो के बीच में कम-से-कम चार-चार वर्षों का अतर होना चाहिए, ताकि एक बच्चा मा का दूध पीकर बडा हो जाय। मा उसकी पूरी-पूरी देख-भाल, पालन-पोषण करले, तब दूसरा बच्चा उत्पन्न हो। किसी स्त्री के जल्दी-जल्दी हर दूसरे साल बच्चा होना सुनती थी तो उनको घृणा होती थी और इसका प्रचार वह अपने कुटुब की और सपर्क में आनेवाली स्त्रियो में करती थी।

विवाह के सबध में भी उनके विचार बडे स्वतत्र थे। छोटी आयु की शादी उन्हे बडी नापसद थी और बिरादरी में ही शादी होना आवश्यक नहीं समझती थी। सब ब्राह्मणो को एक ही मानती थी। प्रत्येक वर्ग में जो

सहस्रो लडें पड गई हैं और एक-दूसरे मे जो व्यावहारिक मतभेद हो गया है, इस कैद को भी वुरा मानती थीं ।

जीवन उनका एक सच्चा धार्मिक जीवन था । शिवजी की बडी भक्त थीं और नियम के साथ रोज उपासना करती थीं । इसी कारण उन्होने मेरा और मेरे भाई का कैलाशनाथ और अमरनाथ नाम रखा था । धार्मिक पुस्तकें वहुत पढी हुई थी । खाने-पीने में छूतछात का विचार तो करना ही पडता था, लेकिन उसमें वहुत कट्टर नही थी । कहा करती थी कि शास्त्रो में जितनी खाने-पीने की मनाइया लिखी हुई हैं, उनका धर्म से और ईश्वर की भक्ति से कोई सवव नहीं है । वह तो सव अपने शरीर के रक्षार्थ हैं । छूत-छात से वहुत वीमारिया हो जाती हैं । उसीकी रोक-थाम के लिए हमारे ऋषियो ने ये सव कायदे वनाये । लोग उनको मानें, इस वास्ते उनको धार्मिक रूप दे दिया, वरना यह तो सव डाक्टरी शिक्षा है ।

सवत १९६७ में मैंने अपनी वकालत का काम कानपुर में आरभ किया । ६ वर्ष वहा रहकर सवत १९७१ से प्रयाग-हाईकोर्ट में वकालत करने लगा । हम लोगो का इनसे पहले सयुक्त प्रात से कोई वास्ता नही था, परतु अव तो प्रयाग में अपना घर-द्वार वना लिया है । मेरी वकालत तो मेरी माताजी के लिए आजादी का कारण हो गई । वह सवत १९६६ से मेरे पास कानपुर और प्रयाग मे आने-जाने लगी । कहा तो जावरे की मुसलमानी रियासत, परदे का जोर, कही वाहर निकलना नही होता था, मदिर में आने-जाने का भी दस्तूर नही था, और कहा कानपुर और प्रयाग में गगाजी का तट और आने-जाने की कोई वाधा नही । घर का काम-धधा कानपुर में तो सव वैसा ही था जैसा जावरे में । मेरी नई वकालत, नई जगह, सभी कठिनाइया थी, परतु वह मगन रहती थी । वेटे की घर-गृहस्थी जमाना, इसमें ही क्या कम आनद था और उसपर परदे की कोई ज्यादा रोक-टोक नही । रोज गगाजी जाती, स्नान करती, कैलाश मदिर में दर्शन करती और घर आती थी । विरादरी के और गैर-विरादरी के वहुत-से घरो से हमारा मेल-जोल हुआ, उन सवसे मिलना-जुलना माताजी को वहुत अच्छा लगता था ।

यहा भी खूब दुनिया की चर्चा रहती थी और वह अपनी ज्ञान-वृद्धि बराबर करती जाती थी। प्रयाग मे ७-८ वर्ष तो मैं किराये के मकान में रहा। बाद में संवत १९७९ मे अपना बंगला खरीद लिया। अब तो माताजी को पूरा अवसर मिला कि अपनी इच्छानुसार काम करे। प्रयाग मे प्राय साल-साल, दो-दो साल आकर रहती थी। त्रिवेणी—गंगाजी, जमुनाजी के स्नान बराबर होते थे। शिवकुटी और पंचमुखी महादेव के शिवालों मे जाकर उनके दर्शन करने का शौक था। सदा वहा जाती थीं, साधु-सन्तो की भी सेवा करना उनका खास काम था। घर मे सदा पूजा-पाठ, कथा-हवन इत्यादि होते ही रहते थे। पंडितो-पुजारियो मे वार्तालाप होता था, परंतु किसी पंडितजी महाराज की क्या मजाल कि जो विधिपूर्वक पूजा करने मे कोई कमी करे या किसी मन्त्र का उच्चारण अशुद्ध करे। उनको मन्त्र सब याद थे। सबके अर्थ समझती थी और देखती रहती थी कि पूरा कार्य शुद्ध रूप से समाप्त हो। दानी भी थी और गुप्त दान देने मे उन्हे बडी रुचि थी। किसीको मालूम नही होता था कि माताजी किस-किस की क्या सहायता कर रही है। चलने-फिरने, हवा खाने को बडी उत्सुक रहती थी, मैंने गंगा किनारे एक बगीचा लिया था। वहा जाकर रहना तो उनको बहुत ही पसंद था। प्रयाग मे आकर मुझे मालूम हुआ कि उनका बागवानी मे कितना दखल था। मालियो को अपने सामने खडे होकर उपदेश देती, फूलो के पौधे और फल के पेड लगवाती, उनके हाथ के बहुत-से आम, अमरूद इत्यादि के पेड, चमेली-गुलाब के पौधे उनकी स्मृति के रूप मे मेरे बंगले और बाग मे मौजूद है।

गो-सेवा सदा तन-मन से करती थी और गऊ के बच्चा होना तो हमारे घर मे ऐसा होता था कि जैसे किसी बहू-बेटी का जापा हुआ है। हफ्तो पहले से गाय घर मे आ जाती थी, उसकी देख-भाल माताजी स्वयं करती थी और बच्चा उत्पन्न होने के बाद उसकी सेवा, उसको खिलाई-पिलाई महीनो बडे ध्यान से की जाती थी। कहीं बछिया पैदा हुई तो माताजी निहाल हो गई। वह बछिया फिर घर मे ही गाय बनती थी और ऐसी कई गाए—बेटी और नवासी—अभी तक है। जबतक बछडा बडा नही हो जाता था, तब-

तक माताजी का आदेश था कि एक थन का दूध बचाकर छोडा जाय। जानवरो की चिकित्सा में भी काफी दखल था। कुत्ते-बिल्ली से नफरत थी। कहती थी कि कुत्ता गदा और बिल्ली विश्वासघातक होती है, लेकिन रग-बिरगी चिडिया, तोते-मैना बहुत पसद आते थे और उनकी रक्षा करती थी।

डाक्टरी की तरफ माताजी का खास रुझान था। बगैर किसी परीक्षा पास किये अच्छा खासा अभ्यास और जानकारी हो गई थी। मनुष्य का ढाचा और उसकी बनावट और दिल, दिमाग, कान, आख सब अगो की क्रियाए खूब अच्छी तरह जानती थी। स्त्री-जाति की बीमारिया और प्रसूति इत्यादि के मामले में तो उनकी योग्यता असाधारण थी। घर में बहू-बेटियो का ही नही, बल्कि महल्ले के रहनेवाले और प्रयाग में हाते के नौकर-चाकरो में भी माताजी का ही इलाज औरतो-बच्चो का हुआ करता था। हिकमत और आयुर्वेदिक दवाओ से अच्छी जानकारी थी। मरीज की देखभाल, सेवा और नर्सिग भी बडी रुचि तथा तन-मन से करती थी।

ये गुण तो थे ही, परतु जो बात उनकी तरफ हरएक को खीचती थी, वह था उनका स्वभाव। क्या बडे, क्या बूढे और क्या बच्चे, सब उनसे खुश रहते थे। पुराने खयाल की बडी-बूढी औरतो में माताजी की बडी कदर थी। बिरादरी के सब रस्म-रिवाज, शादी-ब्याह के अवसर पर लेना-देना, विधिपूर्वक पूजा-पाठ इत्यादि सब मामलो में माताजी की राय मागी जाती थी और उसपर अमल होता था। घर में स्कूल और कालेज के पढने-वाले बालक और बालिकाए अम्माजी के पास रुचि से बैठा करते थे। भारत का इतिहास उनको याद था। गाना-बजाना सीखा नही था और न जानती थी, मगर सुनने का बडा शौक था। मेरी लडकी लीला का गला बहुत अच्छा था। मीरा के भजन बडे प्रेम से गाती थी। माताजी घटो सुनती और लीन हो जाती। मगर सबसे अधिक तो उनकी पूछ-ताछ थी कुटुब के पुरुषो मे। हमारे घर में ईश्वर की दया से सब ही है जज, वकील, डाक्टर, इजीनियर,

कारवारी और हर तरह के सरकारी—ओहदेदार—बराबर ग्राना-जाना लगा रहता था। जब मैं नौकर से पूछता कि वह साहब कहा है, उत्तर मिलता, बहूजी के पास बैठे है। जो आता, सीधा सुहागरानी चाची के पास जाता, अपना दु ख-दर्द बयान करता। वह बड़े प्रेम से सब कथा सुनाती और नेक सलाह देती। हरएक के साथ उसके काय के बारे मे बातचीत करने का माताजी का खास ढग था। इजीनियर के साथ इजीनियरी के मामलो पर बहस करती थी और डाक्टरो के साथ डाक्टरी की बातत, मैं तो अक्सर रात को भोजन करके उनकी गोद मे अपना सर रख के लेट जाता और उनसे अपने मुकदमो का हाल बयान करता था। अपने अनुभव और बुद्धि से ऐसे-ऐसे नुकते निकालती कि उनसे बडी मदद मिलती थी।

दु ख-दद में माताजी के समान तसल्ली देनवाला, सतोष करानेवाला शायद ही कोई होगा। दुखग्रस्त लोगो को उन्हे देखकर और उनके शाति-पूण उपदेशो से बडा सतोष मिलता था। स्वगवासी स्वरूपरानीजी नेहरू के साथ मेरी माताजी का घनिष्ठ सबध हो गया था। वह मेरी माता-जी को अपनी बडी बहन मानने लगी थी और उसी नाते से मुझको भी अपना बेटा कहती थी। जिस हलके मे उनका मिलना-जुलना था और जीवन बीतता था, और वह प्रयाग मे एक काफी बडा हलका था, उसमे माताजी का प्रभाव काफी था।

राजनैतिक मामलो मे बडी दिलचस्पी थी और बराबर उसकी जान-कारी रखती थी।

हिदुस्तान का गरीब जनता की भलाई हर समय उनकी निगाह के सामने रहती थी और इस विषय मे गाधीजी का बराबर सराहा करती थी। इसी दृष्टि से कांग्रेस मत्रिमडल की शराब के बारे मे जो नीति थी, वह उसका जोर के साथ समर्थन करती थी। चाय पीने के बहुत खिलाफ थी। प्रयाग मे माघ मेला था। त्रिवेणी स्नान करने गई। वहा से लौटने पर मुझसे बडी नाराज हुई। कहने लगी कि तुम लोग प्रबध नही करते हो। गरीबो का नाश हो जायगा। मैंने पूछा—"अम्माजी, आखिर क्या

मामला है ?” मालूम हुआ कि चाय का प्रचार करने के लिए चाय-बगीचो के मालिको की तरफ से गगा के तट पर कैंप लगा है, वहा चाय मुफ्त बाटी जा रही है। उनका तो काम चाय के प्रचार का था, लोगो को मुफ्त चाय पिलाते थे, ताकि आदत पड जाय। माताजी का विचार था कि दूध-दही खाने की देश मे आवश्यकता है और चाय से हिंदुस्तान में स्वास्थ्य खराब हो जाता है, भूख कम हो जाती है। मुझसे कहने लगी कि तुम सरकारवाले थोडी आमदनी के लिए भारत का सत्यानाश करते हो।

माताजी की बोलचाल मीठी और गभीर होती थी। व्यर्थ वार्तालाप और कोरे बकवास से उनको घृणा थी। अत समय तक उत्सुक थी कि वह कुछ नई बातें सीखें और जानकारी को बढाये। शाति की मूर्ति थी। मैंने कभी उन्हे क्रोधित होते नही देखा। न कभी हर्ष होता था, न द्वेष करती थी। सुख-दुख में समान रहती थी। रोने-धोने की आदत नही थी। घर मे बहुत शादिया हुईं, लडकियो के विदा होने के समय घर-भर रोता है और आसू गिराता है, परतु माताजी वैसी-की-वैसी ही शात रहती थी। मैंने कभी भी एक आसू गिराते उन्हें नही देखा और अगर बेटी-पोती माताजी से अलग होते समय रोती थी, तो उसको माताजी मना करती थी। माताजी ने दु ख भी उठाये, बडी प्यारी पाली-पोसी व्याहता बेटी-पोती उनके सामने गुजर गईं, लेकिन उन सदमे को भी उन्होंने बहुत सब्र, शाति तथा हिम्मत के साथ झेला।

हरएक के साथ उनका बर्ताव अच्छा होता था। मैके मे एक भाई गोद आया था। ननद-भौजाई मे मैंने ऐसा मेल नही देखा। लगता था, जैसे दो सगी बहनें हो। मेरी मामी मुझे बेटा समझती थी और मै उनको माता के समान मानता था। उन्हीके घर जाकर मैंने लाहौर में ५ वर्ष रहकर बी० ए० पास किया। मेरे मामूजी की सतान और उनके जमाई दीवान बहादुर ब्रजमोहननाथ जुत्शी को मेरी माताजी से जैसा प्रेम था उसका मैं वर्णन नही कर सकता। अपने घर में माताजी अपनी बेटियो से ज्यादा बहुओ को प्यार करती थी। कहती थी कि बेटिया तो दूसरो के

घर गई । मेरे घर की आबादी तो बहुओ मे है । नतीजा यह कि घर मे कभी कोई खटपट नही । हमेशा शांति, हरएक खुश और मगन । बहुओ की दृष्टि मे माताजी सास नही थी, परतु माता के समान थी ।

अभ्यास करते-करते माताजी को ज्योतिष में बहुत दखल हो गया था । जब प्रयाग में होती तो हाते के नौकर-चाकरो के बच्चो की जन्म-कुडली बनाती थी । मेरे पास जब कोई ज्योतिषी आते, मै उनकी माताजी से भेट करा देता । नतीजा यह होता कि मुझे तो छुटकारा मिल जाता और उनकी कलई खुल जाती । मेरी जानकारी मे माताजी की बताई हुई बाते बहुत सच निकली । चालीस वर्ष पहले जब मै कालेज में पढता था, उन्होंने मेरे कुल जीवन का नक्शा खीच दिया था । इन चालीस वर्षों के बारे मे बताई हुई सब बाते सही निकली ।

खाने-पीने मे वह बहुत पाबद थी । मेरे हाथ का छुआ हुआ कच्चा खाना नही खाती थी, मगर अछूतपना बिल्कुल नही मानती थी । मैंने उनको चमार व भगी औरतो और बच्चो को अपने पास प्रेम से बिठाते, उनकी दवा करते और बच्चो को गोद मे लेते देखा है ।

हम पाच भाई-बहन थे । सबको ही प्यार करती थी । मगर सब कहते थे कि मेरे प्रति स्नेह अधिक था । कहा करती थी—"मेरे २४ वर्ष तक कोई सतान नही हुई । मुझे इसका कुछ अधिक दुख नही था । मुझे सतान की ज्यादा अभिलाषा नही थी, झझट ही समझती थी । उस उमर में पहली औलाद लडकी हुई, तो मुझे जरूर कामना हुई कि ईश्वर ने जब सतान दी तो पुत्र भी दे और मैंने शिवजी से ऐसी ही प्रार्थना की । तू चार वर्ष बाद उत्पन्न हुआ तो मेरी सास कहने लगी कि काटजू-खानदान मे दो पीढियो से कोई लडका पैदा नही हुआ । गोद मागकर यह घर चला है । मेरे भाग्य मे कहा कि मै इस लडके का सुख पाऊ ! उनका कहना सच ही निकला और आठ महीने ही मे परलोक सिधारे गई । मै भी बीमार पड गई । जापे के बाद से ही दो वर्ष ज्वर आया, माना दिक (क्षय) हो गया, मरते-मरते बची । रोना व्याकुल हो जाती थी, आसू निकल आते

थे और सोचती थी कि यह बच्चा इतनी कामनाओ मे मागा हुआ, मालूम नही किसके हाथो पडेगा। कौन स्त्री इसकी विमाता बनेगी, कौन इसको पालेगी और शिव भगवान से बार-बार मागती कि तुमने मुझे बच्चा दान दिया तो मुझको आयु भी दीजिये, ताकि उसकी रक्षा कर सकू। भगवान ने मेरी विनती सुनी और ऐसी सुनी कि तुझको ही नही पाला-पोसा, बल्कि तेरी सतान और उनकी औलाद का सुख भोग रही हू। तू भी मुझसे चिपटा ही रहता था। चार वर्ष तक तूने मेरा दूध पिया है।" ऐसी माता का भार कौन उतार सकता है और कैसे उतरे?

अत में आख चले जाने से उनका चलना-फिरना बद हो गया था, तो भी नौकर का हाथ पकडकर प्रात काल बाग में टहला करती थी जिससे स्वास्थ्य ठीक रहे। जब ८० वर्ष की अवस्था हो गई, तो गौतम बुद्ध के समान कहने लगी कि यह शरीर अब काम का नही रहा, त्यागना उचित है। स्वास्थ्य भी ढीला हो गया था। उन्होने सब तैयारी करली। अपने सामने अपने हाथ से जो गहना उनका था, वह बहुओ-बेटियो और उनकी सतान को बाट दिया और जितना दान करना चाहती थी, सब दान कर दिया। एक ट्रक में अपने लिए एक जोडा साडी इत्यादि रखवा दी कि मरने के बाद पहनाई जाय और अपनी अतिम यात्रा के लिए पूरी तैयारी करली। बराबर गीता का पाठ खुद करती थी और सुनती थी। आठवें अध्याय में उनकी बडी रुचि थी। वैसा ही हुआ। सवत १९९६, मास श्रावण, शुक्ल पक्ष में प्रदोष के दिन १॥ बजे दोपहर, जबकि दिन की ज्वाला भरपूर थी, माताजी ने प्रयागराज की महात्याग भूमि में, जैसी उनकी मनोकामना थी, अपना शरीर त्याग किया। किसी प्रकार की कोई तकलीफ नही हुई। बातें करते-करते करवट लेकर परलोक चली गई। हम सब उनके पास मौजूद थे, परतु मेरी स्त्री बीमारी के कारण नैनीताल में थी। उनको बुलाया था। आने में जरा विलब हुआ। बस उन्हीको बार-बार याद करती थी। कई बार पूछा—"लक्ष्मीरानी नही आई? कब आयगी?" फिर जैसे भगवान ने बताया है

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देहि ।।२।२२।।

मनुष्य अपने पुराने वस्त्रो को छोडकर नये बदलता है, वैसे ही माताजी ने अपने शरीर का त्याग किया ।

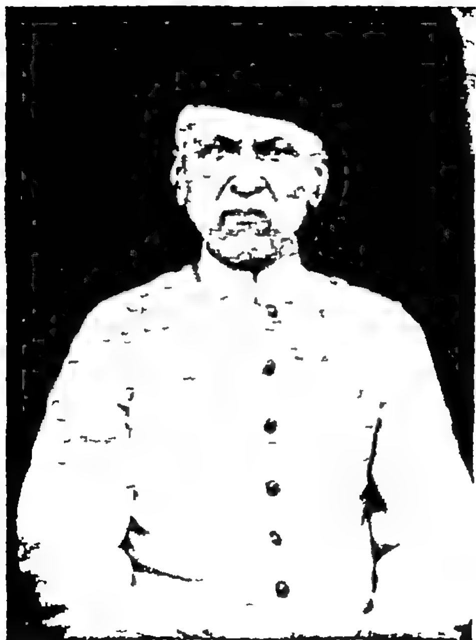
लक्ष्मीरानी कुछ ही घटो के बाद घर पहुच गई और माताजी के अन्तिम दर्शन कर लिये । उस दिन मुझे यह भी ज्ञान हुआ कि हिंदू स्त्रियो की क्यो अभिलाषा होती है कि वह अपना सुहाग लेकर साथ जाय । माताजी बहुत वर्षो से रगीन किनारे की सफेद साडी पहनती थी । यदि कभी कोई उनको रगीन रेशमी वस्त्र लाकर पहनने का कहता, तो उत्तर मिलता कि बुढापे मे क्या यह मुझको शोभा देगा ! परन्तु जो साडी उन्होने अन्तिम यात्रा के लिए ट्रक मे निकालकर रखी थी वह लाल सुदर साडी थी और नहला-धुलाकर जब उनको पहनाई गई और सिंदूर का टीका माथे पर लगाया गया, तो ऐसी सुदर मालूम होती थी कि जैसे कोई दुलहन हो । कुछ ऐसी ईश्वर की करनी हुई कि उनके चेहरे से बुढापे के सारे चिह्न मिट गये और सुहागरानी अपना सुहाग साथ लेकर हसी-खुशी चली गई ।

२

पिताजी

मेरे पिता की कहानी एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो सदा प्रतिकूल परिस्थितियो मे ही सघर्ष करते रहे, जिन्होने अपनी सारी शिक्षा आप-ही ग्रहण की, सच्चाई और आत्म-सम्मान के साथ ही जीवन-यापन किया और जो अपने जीवन-काल मे ही अपनी मिलनसारी तथा धर्मी स्वभाव के कारण सबके सम्मानित और सबके प्रीति-भाजन रहे ।

मेरे पिताजी गोद गये थे । उनके गोद जाने की घटना बडी महत्वपूर्ण है । वह हिंदू परिवार के आपस के घनिष्ठ सबध का एक सुदर उदाहरण है ।



पिताजी

भोलानाथ दर और मनसाराम काटजू काश्मीरी पडित थे। वे अथवा उनके पिता सन १७७५ के आस-पास काश्मीर से इधर चले आये थे। उन दिनो काश्मीरी पडितो के इधर आने का मुख्य मार्ग लाहौर होते हुए दिल्ली था और फिर दिल्ली से कई रास्ते हो जाते थे। कुछ परिवार पूर्व में उत्तर प्रदेश, बिहार और बगाल की ओर गये और कुछ पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में राजस्थान अथवा मध्यभारत की ओर आये। सन १८१८ में चतुर्थ मराठा-युद्ध हुआ, जिसमें अग्रेजो ने महाराज होल्कर को परास्त किया, जिसके फलस्वरूप इन्हें अपने राज्य का बहुत-सा हिस्सा ईस्ट इडिया कपनी को देना पडा। इस लडाई में उनके एक पठान सेनापति गफूरखा ने अग्रेजो का साथ दिया था। लडाई के बाद महेदपुर की सधि के द्वारा पुरस्कार में उसे महाराज होल्कर से मिली जागीर स्थाई रूप से दे दी गई। गफूरखा ने अपनी इस नई रियासत की राजधानी जावरा नाम के एक छोटे कसबे में स्थापित की। इसके कुछ समय बाद मनसाराम काटजू ने गफूरखा के यहा आकर नौकरी कर ली और तबसे यह स्थान काटजू-परिवार का घर बन गया। यह नगर इदौर के उत्तर में ८० मील दूरी पर अजमेर जानेवाले रेल-मार्ग पर स्थित है।

मनसाराम काटजू का विवाह भोलानाथ दर की एक बहन से हुआ था, पर उनके कोई सतान नही हुई। भोलानाथ दर के दो लडके थे—बद्रीनाथ और ज्वालानाथ। इनमें से बद्रीनाथ को उन्होने अपने बहनोई मनसाराम काटजू को गोद दे दिया। बद्रीनाथ का जन्म १८१५ मे दिल्ली में हुआ था। अपने गोद लेनेवाले पिता के निधन के बाद उन्होने जावरा रियासत की नौकरी कर ली और वही सन १८७५ में उनका स्वर्गवास हुआ। उनके सगे भाई ज्वालानाथ भी जावरा रियासत की नौकरी में थे। कुछ वर्ष बाद उनका भी देहात हो गया।

दोनो भाइयो ने १८४० और १८४४ मे एक-दूसरे से मिले हुए दो छोटे मकान खरीद लिये थे और उन्हीमें अपने-अपने परिवार के साथ रहते थे। यद्यपि गोद आ जाने के कारण रिश्ते में बद्रीनाथ-ज्वालानाथ फुफेरे भाई

हो गये थे, तो भी जावरा एक छोटा कसवा होने के कारण दोनो भाई परस्पर वडी आत्मीयता के साथ रहते थे।

वद्रीनाथ काटजू के एक लडकी थी, पर लडका कोई न था। उनकी लडकी के दो लडके थे, जिनमे से एक को उन्होने गोद ले लिया था। पर दुर्भाग्यवश कुछ ही वर्ष वाद वद्रीनाथ और उनकी स्त्री को शोक-सागर मे छोडकर यह वालक चल वसा। इससे उनकी वृद्धा स्त्री का विशेष रूप से हृदय ही टूट गया। उन्हे अत्यधिक शोकातुर देखकर सगे-सवधियो ने सलाह दी कि उनके मन को सान्त्वना देने के लिए कोई दूसरा वच्चा गोद ले लेना चाहिए और वश-परपरा की रक्षा करनी चाहिए। पर उन्होने ऐसा करने से निरतर इन्कार किया और कहा कि भाग्य मे वेटा लिखा ही नही है। यहा मैं पति को छोडकर अकेले उन्हीकी चर्चा इसलिए कर रहा हू कि काश्मीरी पडितो के घरो मे हमेशा स्त्रियो का ही प्रभुत्व रहता है।

पर ज्वालानाथ की स्त्री की कुछ दूसरी ही योजना थी। उनका परिवार काफी वडा था। सितवर १८६१ मे उनके तीसरा लडका हुआ, और जव वह सिर्फ ११ दिन का था, तव वह उसे पासवाले मकान मे वद्रीनाथ की स्त्री के पास ले गई और यह कहकर वच्चा उनकी गोद मे रखकर चली आई कि यह लो, यह तो तुम्हारा ही वच्चा है। वद्रीनाथ की स्त्री यह काड देखकर चकित हो गई। उन्होने वच्चे को लेने से इन्कार किया, पर यह सुनने को अव वहा था ही कौन? ज्वालानाथ की स्त्री तो वहा से जा चुकी थी! वच्चे के गोद लेने का प्रश्न पूरे आठ महीने तक चलता रहा। वद्रीनाथ की स्त्री वरावर कहती रही कि उन्हे वच्चा नही चाहिए और ज्वालानाथ की स्त्री वरावर वच्चे को वापस लेने से दृढतापूर्वक इन्कार करती रही। अत मे जीत उन्हीकी हुई और वद्रीनाथ की स्त्री ने वच्चे को रखना स्वीकार किया। यही वालक त्रिभुवननाथ मेरे पिता थे। पुराने समय मे हिंदू परिवारो मे प्राय देवरानी-जिठानी का एक-दूसरे के प्रति प्रेम होता था। स्मरण रहे कि यह एक देवरानी की ओर से जिठानी को भेंट किया गया विशुद्ध प्रेम का उपहार था, जिसमे धन-सपत्ति का तनिक

भी विचार न था, क्योंकि काटजू-परिवार के पास वह था ही नही ।

बचपन में त्रिभुवननाथ की स्कूली शिक्षा बहुत ही कम हुई । जावरा मे उन दिनो कोई अग्रेजी स्कूल नही था । घर पर मौलवी रखकर उर्दू-फारसी पढाने का ही रिवाज था, क्योंकि उस समय यही राजभाषा थी । अत मौलवी से त्रिभुवननाथ ने भी घर पर ही सामान्य उर्दू-फारसी पढी ।

उन्हें गोद लेनेवाले उनके पिता बद्रीनाथ जावरा में एक जिम्मेदार पद पर थे । उन दिनो ऐसी छोटी रियासतो की देख-रेख के लिए पोलिटिकल विभाग पोलिटिकल एजेंटो के मातहत पोलिटिकल-एजेंसिया रखता था । मालवा-एजेंसी का, जिसमें जावरा भी शामिल था, पोलिटिकल एजेंट उज्जैन से ४० मील की दूरी पर स्थित आगरा में रहता था । एजेंसी के अधीन हर रियासत को यहा अपना एक प्रतिनिधि रखना पडता था, जो 'वकील' कहलाता था । इसका काम था पोलिटिकल एजेंट के हेडक्वार्टर में रहना और उसके साथ तथा रियासत के बीच के सारे कागजो का इधर-उधर भेजना । ये काम इसीके मार्फत होते थे । इन्ही वकीलो का एक पचायती बोर्ड भी होता था, जो एजेंट की देखरेख में रियासत की सीमा सबधी-आपसी झगडो का निपटारा करता था । बद्रीनाथ काटजू कई वर्षों तक मालवा के पोलिटिकल एजेंट के यहा जावरा के वकील के रूप मे रहे । एजेंट तथा अन्य रियासतो के वकील उनका सदा सम्मान करते थे ।

उपर्युक्त कारण से त्रिभुवननाथ की शिक्षा आगरा में ही हुई । पर शीघ्र ही वह विपत्ति में पड गये और उनकी शिक्षा अधिक नही हो पाई । १८७४ में, जब वह केवल १३ वर्ष के थे, बद्रीनाथ बीमार पडे । वह कुशाग्र-बुद्धि थे और जावरा के नवाबसाहब ने शायद पोलिटिकल एजेंट के कहने से १३ वर्ष के इस बालक को ही उनके स्थानापन्न के रूप में काम करने को नियुक्त कर दिया । इसपर उन्होंने आठ महीने तक बडे कौशल से काम किया, जिससे सबको सतोष हुआ । मेरे पिता के बहुत ही प्रिय कागजो मे मालावा के तत्कालीन पोलिटिकल एजेंट कर्नल मार्टिन का दिया हुआ एक सर्टिफिकेट था, जिसमें इस बालक द्वारा जिम्मेदारियो को योग्यता

अली ने भी उन्हें ज्यादा-से-ज्यादा इज्जत दी। जहा तक रियासती मामलो का सबन्ध था, यार मोहम्मद खा की मृत्यु के बाद पिताजी का महत्व और प्रभाव बहुत अधिक बढ गया। उनकी तनख्वाह भी १५०) से ३००) मासिक हो गई। पर तनख्वाह के अतिरिक्त नवाबसाहब उनका जितना सम्मान और लिहाज करते थे, वह कहा नही जा सकता। पिताजी नौकरी से अलग हो चुके थे और जावरा छोडने मे पूरे स्वतत्र थे। सर्दियो मे प्राय वह इलाहाबाद आकर मेरे साथ रहा करते थे, पर उनकी अनुपस्थिति नवाबसाहब को सह्य न थी। उनके बिना नवाबसाहब को बडी उदासी और अकेलापन अनुभव होता था और वह कहते भी थे—"पडितजी, जबतक आप जावरा मे रहते है, मैं खुश और अपने को बहुत महफूज समझता हू। पर आपकी गैरहाजिरी में बडा परेशान-सा हो जाता हू।" १९३६ की सर्दियो मे जब पिताजी अपने कार्यक्रम के अनुसार मेरे पास आने के लिए नवाब-साहब की अनुमति लेने गये, तो नवाबसाहब ने कहा—"पडितजी, आप शौक से जा सकते है, मगर जरा लौटने मे जल्दी कीजियेगा, क्योकि आपकी गैरहाजिरी मे मैं बडा दुखी हो जाता हू।" इस बात का पिताजी के मन पर कुछ ऐसा गहरा असर हुआ कि उन्होने भविष्य मे जावरा कभी न छोडने का निश्चय कर लिया और जीवन के शेष ९ वर्षों तक वह फिर कभी बाहर नही गये।

इसका यह मतलब नही कि वह नवाबसाहब से प्रतिदिन मिला करते थे। सप्ताह मे केवल एक बार नवाबसाहब के महल पर जाते थे। कभी-कभी यह भी नही हो पाता था। पर नवाबसाहब का भेजा हुआ एक चपरासी रोज आकर पिताजी की कुशल-क्षेम पूछ जाता था और नवाबसाहब को जाकर बता देता था। अगर कभी पिताजी का स्वास्थ्य ठीक न हुआ तो नवाबसाहब को बडी चिन्ता हो जाती थी। ऐसे मौके पर दिन मे कई बार आदमी भेजकर वह पिताजी की तबीयत का हाल पुछवाते, अपना डाक्टर भेजते और खुद भी देखने चले आते थे। जब फरवरी १९४५ मे पिताजी का स्वर्गवास हुआ, तो नवाबसाहब ने जाहिर किया कि चूकि पडितजी

के बडे लडके वह स्वय, है, अत लोकाचार के लिए मिलनेवाले लोग मेरे पास न आकर उन्हीके पास जाय ।

उनमें और पिताजी में पत्र-व्यवहार भी खूब होता था। पिताजी को लिखे गये नवावसाहब के पत्र पितृ-भक्ति और स्नेह से ओत-प्रोत है। जीवन के अंतिम समय तक जब कभी नवावसाहब के सामने कोई अहम ममला पेश होता या कोई महत्वपूर्ण सरकारी दस्तावेज तैयार कराना होता, तो पिताजी को सलाह और मदद के लिए जरूर बुलाया जाता।

व्यक्ति और शासक की हैसियत से जहा नवाब इफ्तिखार अली में छोटी-बडी कई कमजोरिया थी, वहा एक बहुत बडा गुण यह था कि वह सरकारी भ्रष्टाचार को बहुत नापसन्द करते थे। मेरे खयाल से पिताजी की ओर उनके आकृष्ट होने का सबसे बडा आधार यही था कि पिताजी किसी भी हालत मे और किसी भी कीमत पर खरीदे नही जा सकते थे। उन दिनों जबकि सरकारी घूसखोरी के विरुद्ध जनमत इतना प्रबल नही था, पिताजी की सचाई, ईमानदारी और सच्चरित्रता ध्रुव तारे की तरह मानो अपना अलग ही महत्व रखती थी। उनकी सीमित दुनिया में भी प्रलोभनो की कमी न थी और उनके अवसर भी आते रहते थे। पर वे कभी भी पिताजी को विचलित नही कर सके और उनकी तूफानी हिलोरो के बीच भी पिताजी पवित्रता की चट्टान की भाति अडिग बने रहे। अपने वेतन के सिवा, जो कई वर्षों तक काफी कम था, उन्होंने कभी भी एक पाई नही छुई। एक बार उन्होंने मुझे बडे वेदनापूर्ण स्वर में बताया कि जब वह लगभग २०-२२ वर्ष के थे, तो उन्होंने किसीसे दो छोटी-छोटी रकमें, जो मेरे खयाल में शायद कुल २००) से ज्यादा नही थी, घूस में ली थी। पर इसके लिए उन्हें जीवन भर बडा क्षोभ रहा और इसका जब भी उन्हें ध्यान आता था, वह दुखी हो जाते थे। इस मामले में वह इतने कडे थे कि हमारे घर में कभी भी सरकारी स्टेशनरी—कागज-पेंसिल वगैरह—खानगी काम में नही लाये गये।

ऐसे खरेपन और ईमानदारी के लिए सभी पिताजी की बडी इज्जत करते थे और वह भी अपने मन मे इस बात को खूब समझते थे । उनके अनेक गुणो मे शायद नम्रता शामिल नही थी । इसलिए अपनी ईमानदारी पर उन्हे अभिमान था, और इसे वह अक्सर अपने दोस्तो, मातहतो और सहयोगियो के सामने मिसाल के तौर पर रखते भी थे । इस दृढता ने उनके व्यक्तित्व और स्वाभिमान की भावना को काफी ऊचा उठाया । वह भावुक भी काफी थे । एक बार मिनिस्टर यार मोहम्मद खा ने जरा झल्लाकर उन्हें लिख दिया कि उनसे उन्हे उतनी मदद नही मिल रही जितनी कि उन्होने आशा की थी, तो पिताजी ने बिना कुछ भी आगा-पीछा सोचे बडे गर्व के साथ वही यह कहकर इस्तीफा दे दिया कि मै तो पूरी मेहनत करता हू, पर अगर मिनिस्टरसाहब का यह खयाल है कि मै उन्हें मदद नही दे रहा हू, तो मेरा रियासत की नौकरी मे रहना बेकार है । ऐसा करना पिताजी के लिए कम साहस की बात नही थी, क्योकि हमारा परिवार काफी बडा था और बराबर बढ रहा था । यदि पिताजी का इस्तीफा मजूर हो गया होता, तो वह बडे सकट मे पड जाते । मिनिस्टरसाहब शायद भूल गये थे कि वह किससे पेश आ रहे है । पर शीघ्र ही उनको अपनी भूल मालूम हुई और उन्होने पिताजी को मैत्रीपूर्ण, बल्कि कहना चाहिए कि भ्रातृभावपूर्ण, पत्र लिखकर इतने अधिक भावुक होने के लिए उलाहना दिया । मामला यही खतम हो गया । मुझे इस बात मे तनिक भी सदेह नही कि पिताजी ने अपनी मिसाल और ताडना से न सिर्फ अपने बच्चो को, बल्कि अपने समय मे प्रभाव मे आनेवाले अन्य सभी व्यक्तियो को नेकी के सीधे रास्ते पर चलाया ।

उन्हे विकास के विशेष अवसर नही मिले थे और उनका कार्य एक छोटी सी रियासत तक ही सीमित था । अधिक अनुकूल परिस्थितियो मे उन जैसी व्यापक प्रतिभा और चरित्रवाला व्यक्ति काफी ऊचा उठता, ऐसा वह भी समझते और कहा भी करते थे । घर मे और बाहर तथा नवाबसाहब के महल मे लगभग हर विषय मे वह कुछ-न-कुछ मत रखते थे और

दृढता के साथ उसे व्यक्त भी करते थे। डा० जॉन्सन की तरह वह भी प्रतिवाद करने को अधीर रहते थे। मूर्खो को सहन करना उनके लिए सभव नही था, और उनके मुह पर भी कह देते थे कि उनको वह क्या समझते है। पत्र-पत्रिकाओ के अपने शौक के कारण देश-देश की गति-विधि से उनकी इतनी जानकारी हो गई थी कि वह सभी ममलो पर—चाहे वे राजनीति के महत्वपूर्ण प्रश्न हो, चाहे और कुछ जरूरी या गैर-जरूरी—अपना मत वडे विश्वासपूर्वक व्यक्त करते थे। १८७५ में हुई वद्रीनाथजी की असामयिक मृत्यु ने १४ वर्ष पूरे करने से पहले ही उन्हें अकेले जीवन-सघर्ष में ढकेल दिया था और परिवार में किसी वडे भाई की छत्र-छाया के नियत्रण में न रहने से वह आत्मनिर्भर और अपनी वात पर अडने-वाले स्वभाव के हो गये थे। कोई भी काम करने को सदा प्रस्तुत रहते थे। ग्राम-सुधार-योजनाओ मे उनकी विशेष रुचि थी। उन्होने मकानो के निर्माण की देख-रेख की, वाग-वगीचे लगवाये, डेरी फार्म खुलवाये और मानो दुनिया की हर वात के वारे में उनकी कुछ-न-कुछ जानकारी थी। उनके इस स्वभाव की हमारे घर में वडी विचित्र प्रतिक्रिया हुई, खासतौर पर माताजी और वच्चो पर।

सन १८६८ में, जव पिताजी ७ साल के थे, तव उनका विवाह उनसे कोई २ वर्ष से भी अधिक वडी लडकी के साथ हुआ था। थोडे ही वर्षों में वह एक ऐसी स्त्री सिद्ध हो गई, जो वुद्धि और चरित्र-वल में पिताजी से वढ-चढकर थी। उन्होने जो कुछ पढा-सीखा, अपने-आप ही, और पिताजी के मुकावले में उनकी वौद्धिक भूख और ज्ञान-पिपासा कही अधिक थी। जव मैं सिर्फ आठ महीने का था, मेरी दादी का स्वर्ग-वास हो गया। फिर तो हमारे परिवार में मा, पिताजी और हम वच्चे ही रह गये। पिताजी की तरह मा को भी पारिवारिक मामलो में सलाह-मशविरा देने कोई वडी-वूढी नही थी। मुझे ऐसा लगता है कि पिताजी मा की वौद्धिक उच्चता को जान गये थे और यह भी महसूस करने लगे थे कि ज्ञान और तर्क-शक्ति में वह उनकी वरावरी नही कर सकते। अत

कभी-कभी वह पति के जन्मसिद्ध अधिकार मे उन्हे दवाने की चेष्टा करते थे। मै जब थोडा वडा हुआ, तो मैने देखा कि कभी-कभी पिताजी के कटु वचनो से मा वडी दुखित हो जाती थी। ऐसा लगता कि दोनो मे ही विनोद-वृत्ति का अभाव है। दोनो ही वेहद मजीदा रहा करते थे। पिताजी वाहर भले ही खुलकर वात कर लेते हो, पर जवसे मैने होश सभाला, घर मे मैने उन्हे कभी भी कोमल और मृदु रूप मे नही देखा। इस स्वभाव के कारण अक्सर दोनो मे कहा-सुनी और झगडे हो जाते थे। अन्य वातो के साथ मा का यह दृढ विश्वास था कि नारी का हर प्रकार से पुरुष के पूर्णतया समान होने का दैवी अधिकार है। वह यह भी कभी स्वीकार करने को तैयार नही थी कि पति का काम हुक्म देना और पत्नी का उसे वजा लाना भर है। उनका मत था कि जीवन-सग्राम मे पति-पत्नी दोनो साथी और सहयोगी है।

पिताजी का मत ठीक इसके विपरीत था और यह आभास होते हुए भी कि उनके पास कोई उपयुक्त तर्क नही है, उनकी चेष्टा रहती थी कि घर मे उन्हीका हुक्म चले। १८९५ मे मेरे नानाजी का स्वर्गवास हो गया और अब माताजी के लिए अपने घर के सिवा और कोई स्थान नही रहा।

स्वभावो की ऐसी भिन्नता होने पर भी मा ने जैसे-तैसे निभाया और एक वार तो उन्होने मुझे यह रहस्य भी वताया कि क्यो वह पिताजी की कठोरता और अविचार को भी सहन कर लेती है। उन्होने कहा कि कोई भी स्त्री पति का पर-स्त्रीगमन कभी भी क्षमा नही कर सकती। किंतु यदि पति उसके प्रति वफादार है, तो पत्नी की दृष्टि मे इस एक गुण से सारे अवगुण ढक जाते है। इस दृष्टि से पिताजी एक आदर्श पति थे। न उनके चरित्र मे कोई खोट थी और न उनमे कोई दुर्व्यसन ही था। घर की पूरी मालकिन मा थी। पिताजी की पूरी तनख्वाह उन्हीके हाथ मे पहुचती थी। फिर वह उसे जैसा उचित समझती, खर्च करती। जब भी मा को पिताजी से कोई शिकायत होती या उनके मन को ठेस लगती,

तव वह उनके गुणो का ही खयाल करती और मन-ही-मन ऐसा पति पाने के लिए अपना भाग्य सराहने लगती । इस प्रकार पिताजी की कठोरता को वह सहज ही मे क्षमा कर देती थी । यह केवल दोनों के स्वभावो की भिन्नता थी, जिसके कारण समय-समय पर कहा-सुनी हो जाया करती थी, वरना पिताजी वडे प्रेमल और वफादार पति थे । जव १६०८ में मैंने सयुक्त-प्रात (अव उत्तर प्रदेश) में अपनी वकालत शुरु की, तो मा और पिताजी पर उसकी वडी विचित्र प्रतिक्रिया हुई । मा उस समय ५० वर्ष की थी और जव उन्हें ज्ञात हुआ कि अव उनके अपने लडके का एक और ऐसा घर हो गया है, जहा वह अधिकारपूर्वक जा सकती हैं, तो उनकी स्वतत्रता की भावना और भी प्रवल हो गई । ज्यो-ज्यो समय वीतता गया, पिताजी भी अधिक नरम होते गये । मेरे विचार से परिवार में एक नया घर स्थापित हो जाने से जो परिवर्तन हुआ, उसके महत्व को उन्होंने भी समझा और उसके वाद मा के साथ होनेवाली वातचीत में वह इस वात का ध्यान रखने लगे कि अव वह हमेशा अपनी ही वात नही मनवा सकेंगे ।

माता-पिता की कठोर सजीदगी का उनकी सतान के मस्तिष्क पर वडा वुरा प्रभाव पडा । दोनो में से कोई भी मृदु और हसमुख स्वभाव का न था । मा को घर के काम-काज से ही फुरसत न थी । खाना वनाने के अलावा सिलाई और घर का काम सारा उन्हीको करना पडता था । पिताजी का अपना अलग कार्यक्रम था । वह दिन को ११ वजे दफ्तर गये सायकाल ६ वजे लौटते थे । फिर कोई आध घटे वाद ही खाना वगैरह खाकर मिनिस्टरसाहव के वगले पर मिलने-जुलने और गप-शप के लिए चले जाते थे और रात को ११ वजे वाद लौटते थे, जवकि सव वच्चे सो जाते थे । हमसे उनकी वहुत कम वात होती थी और खुल कर तो कभी वात हुई ही नही । इस तरह मा-वाप के स्नेह से एक तरह से मैं वचित-सा ही रहा । उन दिनो हिंदू-सयुक्त-परिवारो में मा-वाप सवके सामने अपने वच्चो से प्रेम-प्रदर्शन नही करते थे । इस कमी की पूर्ति दादा-दादी कर देते थे, जिनके अत्यधिक लाड-प्यार से कभी-कभी वच्चे विगड

भी जाते है । पर दुर्भाग्य से मेरे दादा-दादी भी न थे । गत बचपन में मैंने पैतृक प्रेम का कभी अनुभव ही नही किया । अकेला मैं ही उस दुर्भाग्य का शिकार हुआ होऊ, सो नही, मेरे छोटे भाई और बहनो को भी यद्यपि कुछ कम अशो मे, यही दुखद अनुभव हुआ । मुझे और मेरी बहन को पिताजी की उपेक्षा का पूरा भार वहन करना पडा और हम सर्वदा उनसे भयभीत रहे । वह जैसे हमारी पहुच के बाहर थे, परन्तु अवस्था होते-होते वह कुछ नरम पडे । १८९९ मे पैदा हुई मेरी सबसे छोटी बहन हममें से सबसे भाग्यशाली रही । १९०५ मे विवाह कर जब मैं अपनी पत्नी को घर लाया, तब मानो पिताजी के पितृ-प्रेम का बांध ही टूट गया । मेरी पत्नी की अवस्था तब सिर्फ १४ वर्ष की थी और हमारे घर मे पांव रखने के बाद ही से पिताजी ने उसपर अपना सारा प्रेम उडेल दिया । वह उसे नित नये-नये उपहार लाकर देने लगे, उसे उर्दू पढाना शुरू किया घंटो उसके साथ गप-शप करते तथा ताश खेला करते थे । इस प्रकार शायद पहली बार पिताजी ने परिवार मे हसना और जी बहलाना सीखा ।

काश्मीरी पडितो की परपरा के अनुसार शादी के बाद जब पत्नी हमारे घर मे आई, तो उसे नया नाम दिया गया 'लक्ष्मीरानी' । पिताजी के बहुत-से पोते-नाती थे । वह उन सबको प्यार करते थे । सबसे अधिक प्यार लक्ष्मीरानी के बच्चो को ही करते थे । १९१० मे लक्ष्मीरानी के सतान उत्पन्न हुई । पिताजी का उसके साथ खेलना और हसना देखने-योग्य होता था । उन्हे ऐसा करते देखकर मुझे ईर्ष्या होती थी । हिंदू-परिवार मे बहुओ को जितना प्यार और सम्मान मिलता है, उतना लक्ष्मीरानी को हमारे घर मे भी मिला । पर शीघ्र ही उसके गुणो के कारण पिताजी अपनी लडकियो से भी अधिक उसे चाहने लगे । १९४४ में जब उसका देहात हुआ, तो पिताजी के हृदय को भीषण वेदना हुई और इसके तीन महीने बाद उन्होने भी अपनी इहलीला समाप्त कर ली । लक्ष्मीरानी की बुद्धिमत्ता, सरल और मीठे स्वभाव, शात और स्थिर

मत, चुपचाप योग्यतापूर्वक घर-गृहस्थी की सभाल और धर्म तथा सहिष्णुतापूर्वक दुख-कष्ट सहने की वृत्ति के कारण पिताजी उसका बडा आदर करते थे। हमारे परिवार के लिए तो वह साक्षात लक्ष्मी ही थी, क्योकि वह अपने साथ सुख और सौभाग्य लेकर आई थी।

मेरा जावरा के अपने घर मे चला आना पिताजी को अच्छा नही लगा। हम लोगो की खानदानी जड अब वहा के सिवा और कही न थी। अत पिताजी चाहते थे कि मैं भी अपने पुरखो की परपरा के अनुसार वही रियासती नौकरी में रहू। १६०७ में जब मैंने एल-एल० बी० पास किया तो उन्होने मेरी जानकारी के बिना ही मिनिस्टरसाहब को मेरे रियासत में नौकरी करने की बात लिख दी। पर मिनिस्टरसाहब ने इसपर कोई विशेष ध्यान नही दिया और पिताजी से कहा—"कैलास-नाथ अभी बहुत छोटा है (तब मैं २० वर्ष का भी न था)। रियासत में किसी पद पर नियुक्त किये जाने से पहले उसे कही अनुभव प्राप्त कर लेने दो।" इससे पिताजी को न केवल असतोष ही हुआ, बल्कि झुझलाहट भी। उन्होने जवाब में मिनिस्टरसाहब को लिख भेजा कि इस बारे में फैसला करना तो उन्हीके हाथ की बात है, पर पिंजरे से पहली बार बाहर निकलनेवाला पक्षी पता नही, फिर कब लौटे या न लौटे, उसी तरह कैलास-नाथ यदि एक बार जावरा से बाहर चला गया, तो फिर वह लौटे या न लौटे। इस सूक्ष्म सकेत का भी मिनिस्टरसाहब पर कोई प्रभाव नही हुआ और मुझे अपने भाग्य की परीक्षा के लिए विस्तृत दुनिया में चला आना पडा। जावरा से बाहर सभी स्थान मेरे लिए बराबर फासले और आकर्षण के थे। मैंने अपनी वकालत के लिए कानपुर को चुना। जैसीकि पिताजी को आशका थी, फिर कभी मैं जावरा नही लौटा।

मेरे कानपुर और फिर इलाहाबाद के घरो ने पिताजी के क्षेत्र को भी काफी व्यापक बना दिया। इसका मतलब यह नही कि उनकी जावरा से ममता कुछ कम हो गई हो, पर सर्दियो के कुछ महीने हम सबके साथ सयुक्त प्रात में बिताना उनको अच्छा लगने लगा। अब वह मेरे साथ काफी

भी जाते है। पर दुर्भाग्य से मेरे दादा-दादी भी न थे। गत बचपन मे मैंने पैतृक प्रेम का कभी अनुभव ही नही किया। अकेला मैं ही उस दुर्भाग्य का शिकार हुआ होऊ, सो नही, मेरे छोटे भाई और बहनो का भी यद्यपि कुछ कम अशो मे, यही दुखद अनुभव हुआ। मुझे और मेरी बहन को पिताजी की उपेक्षा का पूरा भार वहन करना पड़ा और हम सदा उनसे भयभीत रहे। वह जैसे हमारी पहुंच के बाहर थे, परन्तु प्रौढ होते-होते वह कुछ नरम पडे। १८९९ मे पैदा हुई मेरी सबसे छोटी बहन हममें से सबसे भाग्यशाली रही। १९०५ मे विवाह कर जब मैं अपनी पत्नी को घर लाया, तब मानो पिताजी के पितृ-प्रेम का बाध ही टूट गया। मेरी पत्नी की अवस्था तब सिर्फ १४ वर्ष की थी और हमारे घर मे पाव रखने के बाद ही से पिताजी ने उसपर अपना सारा प्रेम उडेल दिया। वह उसे नित नये-नये उपहार लाकर देने लगे, उसे उर्दू पढाना शुरू किया घटो उसके साथ गप-शप करते तथा ताश खेला करते थे। इस प्रकार शायद पहली बार पिताजी ने परिवार मे हसना और जी बहलाना सीखा।

काश्मीरी पडितो की परपरा के अनुसार शादी के बाद जब पत्नी हमारे घर मे आई, तो उसे नया नाम दिया गया 'लक्ष्मीरानी'। पिताजी के बहुत-से पोते-नाती थे। वह उन सबको प्यार करते थे। सबसे अधिक प्यार लक्ष्मीरानी के बच्चो को ही करते थे। १९१० मे लक्ष्मीरानी के सतान उत्पन्न हुई। पिताजी का उसके साथ खेलना और हसना देखने-योग्य होता था। उन्हे ऐसा करते देखकर मुझे ईर्ष्या होती थी। हिंदू-परिवार मे बहुओ को जितना प्यार और सम्मान मिलता है, उतना लक्ष्मीरानी को हमारे घर मे भी मिला। पर शीघ्र ही उसके गुणो के कारण पिताजी अपनी लडकियो से भी अधिक उसे चाहने लगे। १९१४ में जब उसका देहात हुआ, तो पिताजी के हृदय को भीषण वेदना हुई और इसके तीन महीने बाद उन्होने भी अपनी इहलीला समाप्त कर ली। लक्ष्मीरानी की बुद्धिमत्ता, सरल और मीठे स्वभाव, शात और स्थिर

मत, चुपचाप योग्यतापूर्वक घर-गृहस्थी की सभाल और धर्म तथा सहिष्णुतापूर्वक दुख-कष्ट सहने की वृत्ति के कारण पिताजी उसका वडा आदर करते थे । हमारे परिवार के लिए तो वह साक्षात लक्ष्मी ही थी, क्योकि वह अपने साथ सुख और सौभाग्य लेकर आई थी ।

मेरा जावरा के अपने घर से चला आना पिताजी को अच्छा नही लगा। हम लोगो की खानदानी जड अब वहा के सिवा और कही न थी । अत पिताजी चाहते थे कि मैं भी अपने पुरखो की परपरा के अनुसार वही रियासती नौकरी में रहू । १९०७ में जब मैंने एल-एल० वी० पास किया तो उन्होने मेरी जानकारी के विना ही मिनिस्टरसाहव को मेरे रियासत में नौकरी करने की वात लिख दी। पर मिनिस्टरसाहब ने इसपर कोई विशेष ध्यान नही दिया और पिताजी से कहा—"कैलास-नाथ अभी वहुत छोटा है (तव मैं २० वर्ष का भी न था) । रियासत में किसी पद पर नियुक्त किये जाने से पहले उसे कही अनुभव प्राप्त कर लेने दो ।" इससे पिताजी को न केवल असतोप ही हुआ, वल्कि झुझलाहट भी । उन्होने जवाव मे मिनिस्टरसाहव को लिख भेजा कि इस वारे में फैसला करना तो उन्हीके हाथ की वात है, पर पिंजरे से पहली वार वाहर निकलनेवाला पक्षी पता नही, फिर कव लौटे या न लौटे, उसी तरह कैलास-नाथ यदि एक वार जावरा से वाहर चला गया, तो फिर वह लौटे या न लौटे । इस सूक्ष्म सकेत का भी मिनिस्टरसाहव पर कोई प्रभाव नही हुआ और मुझे अपने भाग्य की परीक्षा के लिए विस्तृत दुनिया में चला आना पडा । जावरा से वाहर सभी स्थान मेरे लिए वरावर फासले और आकर्षण के थे । मैंने अपनी वकालत के लिए कानपुर को चुना । जैसीकि पिताजी को आशका थी, फिर कभी मैं जावरा नही लौटा ।

मेरे कानपुर और फिर इलाहावाद के घरो ने पिताजी के क्षेत्र को भी काफी व्यापक वना दिया । इसका मतलव यह नही कि उनकी जावरा से ममता कुछ कम हो गई हो, पर सर्दियो के कुछ महीने हम सवके साथ सयुक्त प्रात में विताना उनको अच्छा लगने लगा । अव वह मेरे साथ काफी

खुलकर और आराम से रहने लगे। पर उनकी आत्मनिर्भरता और दूसरों पर बोझ न डालने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी कि वह जबतक हमारे साथ रहते, हमारे कामों में यथाशक्ति हाथ बटाते। मकान बनाने, मरम्मत की देखभाल करने, बगीचे की व्यवस्था आदि कराने के सिवा वह हम सबकी देखभाल, नेक सलाह और पथ-प्रदर्शन आदि से भी बड़ी मदद किया करते। इतना सब करकर भी वह अपने-आपको इस नये वातावरण के अनुकूल नहीं बना सके। वह पुराने विचारों के थे और विचारों की आजादी और जनतंत्र की बढ़ती हुई भावना के साथ उनकी कोई सहानुभूति नहीं थी। जन-साधारण की बुद्धि, राजनीतिमत्ता और अनुभव को वह विशेष महत्व नहीं देते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि दूसरों को अपनी भलाई खुद करने के लिए छोड़ देने की अपेक्षा उनका भला हम ही करना चाहिए। उनका खयाल था कि जनता की भलाई किसमें है, इसका वह स्वयं ही अच्छा निर्णय कर सकते हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने जावरा में ४० वर्ष तक रियासत की सरकार द्वारा जनता की भलाई के कई तरह के काम किये थे। पर जब वह प० मोतीलाल नेहरू और प० मदनमोहन मालवीय के नगर प्रयागराज में आये, तो अपने-आपको अकेला महसूस करने लगे। एक तो उनका अंगरेजी न जानना बहुत बड़ी बाधा साबित हुई। दूसरे उनमें अहभाव की प्रबलता थी।

माताजी कहा करती थीं कि उनमें रजोगुण का प्राबल्य है, जिससे वह मनन और शांति का जीवन नहीं बिता सकते थे। वह निरंतर कुछ-न-कुछ करते रहना चाहते थे। यद्यपि वह जब इलाहाबाद आते थे तो उनके इर्द-गिर्द ऐसे कई लोग जमा हो जाते थे, जो उनके प्रति श्रद्धा रखते थे, फिर भी उन्हें सदा यह ध्यान बना रहता था कि यहां चाहे वह कुछ भी करें, पर लोग तो उन्हें डा० काटजू के पिता के रूप में ही जानेंगे। यह स्थिति उन्हें स्वीकार न थी। जावरा में इससे बिल्कुल उल्टी बात थी। वहां लोग उनकी उनके गुणों और व्यक्तित्व के कारण इज्जत करते थे। जावरा में शायद ही कोई ऐसा घराना हो, छोटा या बड़ा, जिससे उनकी पीढ़ियों

की मैत्री और घनिष्ठ परिचय न हो और उनमें से हरएक के वह प्रिय 'पडितजी' थे ।

अपने अतिम समय में पिताजी जावरा में एक सस्था-सी वन गये थे । सभी श्रेणियो और वर्गों के लोगो को उनपर गर्व था और सभी उन्हें अपना सलाहकार और हितैषी समझते थे । वह जहा भी जाते, लोग उन्हें सिर-आखो पर उठा लेते थे । उन्होने अनेक हिंदू और मुसलमान लडकियो को गोद ले रखा था और इस तरह गोद लिये हुए बच्चो से हुए उनके पोते-पोतियो और पडपोतो की सख्या वेशुमार थी । गावो और शहरो के लोग निरतर उनके दर्शन करने को आते रहते थे । मेरा छोटा भाई हमेशा पिताजी के साथ रहा, पर वह सदा एकातवासी ही रहे । उनकी सेवा के लिए एक पुराना नौकर था, जो हमारे परिवार का ही एक सदस्य वन चुका था । उसकी सेवा के कारण न सिर्फ पिताजी उसीका खयाल रखते थे, वल्कि उसके स्त्री-बच्चो का भी । बच्चे तो खेलने के लिए उनको वरावर घेरे रहते थे । अपने सगे भाइयो के बच्चे और पोते-पोतियो को वह अपने ही बच्चो की तरह प्यार करते थे । वह भी उन्हें परिवार का सबसे वडा सदस्य और अपना सबसे वडा शुभचिंतक समझते थे । उनके और अन्य रिश्तेदारो के लिए जावरा इसी कारण एक तीर्थस्थान-सा वन गया और पिताजी की विशाल-हृदयता भी ऐसी थी कि वह अपने पास आनेवाले सभी को दीर्घ अनुभव और वुद्धिमत्ता का कुछ-न-कुछ अमूल्य प्रसाद देते थे ।

अतिम वर्षों में तीन वातो का उन्हें विशेष ध्यान था । पहली तो यह कि वह एकदम स्वतत्र ही रहें और किसीका—यहा तक कि अपनी सतान का भी—तनिक-सा एहसान न लें । हरएक को वह कुछ-न-कुछ देते, पर लेते कभी किसीसे कुछ नही थे । दूसरी, उनकी यह प्रवल इच्छा थी कि मृत्यु-पर्यंत उनके हाथ-पाव अपना कार्य करते रहें और उन्हें किसीकी सेवा-सुश्रूषा का आभारी न होना पडे । तीसरी यह, कि उनका शरीरात अपनी पैतृक भूमि जावरा में ही हो । एक वार मुझे एक कच्ची कोठरी दिखाकर वडे गभीर होकर उन्होने कहा—"मेरी जडें तो यहा है । वुढापे में मैं इस

स्थान को कैसे छोड दू ?" उनकी ये तीनो आकाक्षाए पूरी हुई ।

हम लोग अपनी घर-गृहस्थी बसा चुके थे । पिताजी पर सब परिवार का कोई बोझ नही रह गया था, अत पेंशन के रूप मे उन्हे जो ३००) वेतन मिलता था, उसमे वह बडी प्रसन्नता के साथ अपने गरीब परिवारो की सहायता किया करते थे । रही स्वास्थ्य की बात सो उन-जैसी अपनी देख-भाल शायद ही कोई रखता हो । वह कठोर नियमो का पालन करते थे । नपा-तुला खाना खाते, नपा और नियमित व्यायाम करते, निश्चित समय सोते और महीने की पहली तारीख को अपना वजन लेते । अगर उसमे थोडा-सा भी फर्क प्रतीत होता, तो वह उसे ठीक करने का पूरा प्रयत्न करते । कान, आख, मुह, दात और जाडो का लिए पसेरू नमको की बनाई हुई कोई-न-कोई दवा उनके पास जरूर रहती जिसका नियमित रूप से वह प्रयोग करते थे । कभी-कभी मै उनकी इस जरूरत से ज्यादा शरीर-रक्षा पर टीका-टिप्पणी करता। वह कहते—"तुम्हे नही मालूम कि तन्दुरुस्ती कितनी बडी देन है ।" कदाचित इसीका परिणाम था कि ८५ वर्ष की आयु मे भी उनके सब-के-सब दात कायम थे, आखो की रोशनी अच्छी थी और एक पोस्टकार्ड पर वह ३२ सतरे लिख सकते थे । उनका रहन-सहन बिल्कुल पुराने ढग का था । माताजी के स्वर्गवास के बाद वह अपना भोजन स्वय बनाते और दूसरे किसीके हाथ का बना खाना कभी नही खाते थे । मृत्यु-पर्यंत पूर्णतया स्वस्थ रहने की आकाक्षा अक्षरश पूरी हुई । फरवरी १९४५ मे जब वह पूर्णतया स्वस्थ नजर आते थे, एक दिन भोजन के बाद अचानक उनको मूर्च्छा आ गई और वह बेहोश हो गये । उसके बाद वह फिर होश मे नही आये । पाच दिन बाद सदा के लिए चल बसे । इस प्रकार दुरुस्त होश-हवास मे वह शरीर से कभी किसीके मोहताज नही हुए ।

२८ फरवरी, १९४५ को आधी रात के करीब उनका अतकाल आया । पर इसके आने से पहले न-जाने कैसे अचानक उन्होने पूरी आखे खोली और चारो ओर खडे हम सबोको देखा—मानो हमसे विदा ले रहे हो—और फिर स्वर्ग सिधार गये । जावरा के लोगो ने ऐसा शोक मनाया, मानो

अकेले मेरे ही पिता का नही, उनमें से हरएक के पिता का वियोग हुआ हो। उनकी अरथी के साथ रियासत की सारी फौज, पुलिस, नवावसाहव के कुनवे के लोग और सभी श्रेणियो की जनता वहुत वडी सख्या में श्मशान तक गई। पडितजी चल वसे थे और सव समझने लगे थे कि उनके साथ ही एक युग भी हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

' ससार मे हर सतान अपने माता-पिता की ऋणी होती है। पर मुझपर यह अतिरिक्त ऋण है कि मेरी शिक्षा पर खर्च की गई एक-एक पाई खरी और कडी मेहनत की कमाई थी। अव महसूस करता हू, पहले शायद नही करता था कि लाहौर और इलाहावाद में मुझे पढाने के लिए मेरे मा-वाप को अपनी वहुत-सी सुविधाओ को त्यागना पडा था। उनके लिए यह एक गर्व और गौरव की वात थी। मेरी शिक्षा के प्रश्न पर उनके सामने परिवार में और कोई मिसाल न थी। मुझे उच्चतम शिक्षा मिले, इसके लिए वडी-से-वडी तकलीफो और असुविधा सहन करने में उन्हें कभी तनिक-सी हिचक नही हुई। मेरा यह दृढ विश्वास है कि मुझे जीवन में जो कुछ सफलता मिली है, उसका एकमात्र कारण पिताजी की खरी कमाई ही है। जव मैं १९१२ में एल-एल० एम० के इम्तहान में वैठा और असफल हो गया, तो मुझे खयाल आया कि मेरी असफलता का कारण शायद यह हो कि इम्तहान की पूरी फीस मैंने अपने पास से ही दी थी। अत दूसरे साल जव मैं फिर उसी परीक्षा में वैठा, तो इम्तहान की फीस के लिए खास तौर से पिताजी से १००) रुपये मगवाये, ताकि मैं सचाई के साथ कह सकू कि मेरी पूरी पढाई का खर्च मेरे पिताजी ने ही दिया। उन्होंने वैसा ही किया और मैं पास हो गया। वह हमारे लिए एक ऐसे वटवृक्ष के समान थे, जिसकी छाया मृत्यु-पर्यंत हम सव पर रही।

३
वाह री बेटी !

कहावत है, जो संकट मे साथ दे वही सच्चा साथी और मित्र है । इस दृष्टि से जब मैं देखता हू तो मुझे स्त्री-जाति का स्थान सर्वोत्तम जान पडता है । अपने वकालत-काल मे मैंने जेल मे पडे आत्मीयो और स्नेहियो के लिए माताओ, बहनो और पत्नियो के अपूर्व त्याग और प्रेम का साक्षात प्रतिरूप देखा है । जिन देवियो ने अपने जीवन मे कभी दहलीज से बाहर पाव तक न रखा था, वह अपने स्नेही आत्मीयो की रक्षा के सबध मे कई-कई बार मेरे पास आई । युवा माताए गोदी मे बच्चो के साथ दूर-दूर के सफर करती थी और अपने पतियो को बचाने के लिए वह वकील की मानव-भावना को उत्प्रेरित करती थी । जब मैं न्यायालय मे बहस करता था, तो अक्सर मुझे उन विनती-भरी आखो का खयाल आ जाता, जिन्हे मैं अपने दफ्तर में छोड आता था ।

भारतीय स्त्रियो के बारे मे यह खयाल करना अत्यधिक भूल है कि अपने घरो में उनकी दासियो की-सी स्थिति है और व अपने पतियो की इच्छा-पूर्ति की साधन-मात्र हैं । मेरा यह अनुभव नही है । इसके विपरीत मैंने देखा है कि घरेलू क्षेत्र में उन्हे बहुत ही प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त होता है । वे अपने घरो मे शासन करती है और अपने परिवार तथा पारिवारिक सपत्तियो-सबधी प्रबध एव देखभाल मे उनका बडा हाथ होता है । वस्तुत रिश्तेदारो मे जो मुकदमेबाजी होती हे, उसमे अधिकाश की प्रेरणा परिवार की स्त्रियो की ओर से होती है और यह विद्रोही भावना माता की इस भावना से उत्पन्न होती है कि परिवार की जायदाद मे से उसके बच्चो को जायज हिस्सा मिल सके ।

पत्नी का खयाल होता है कि उसका पति पुरातन परपराओ के आगे झुक रहा है और अपने भाइयो तथा बहनो का पक्षपात कर रहा है । इस पक्षपात और समर्पण की सीमा यहा तक बढ जाती है कि वह अपने बच्चो के

स्वार्थ तक की बलि करने को तैयार हो जाता है, लेकिन उसकी पत्नी तो ऐसे किन्ही पुराने बधनो एव परपराओ में नही बधी होती। वह अपने बच्चो के हित के लिए लडती है और स्वभावत उसका पति उसके प्रभाव को आखिरकार स्वीकार कर लेता है और जैसा वह चाहती है, करता है। अपने व्यावसायिक जीवन मे मुझे अनेक ऐसे अनुभव हुए है और उनमें एक तो बहुत ही मनोरजक है।

एक दिन सवेरे मैं अपने दफ्तर में बैठा था। मेरे चपरासी ने सूचना दी कि एक देवी आपसे कानूनी सलाह लेने के लिए मिलना चाहती हैं। भद्र-परिवार की होने के कारण मैंने उसे पास के कमरे में बैठाने को कहा और चद मिनटो बाद मैं वहा गया। मैंने देखा कि साफ-सुथरे वस्त्र पहने एक हिंदू युवती बैठी है। वह बडी नम्र और सहज स्वभाव की थी। उसने खडे होकर मुझे नमस्कार किया। सामान्य आचार के उपरात मैंने पूछा कि मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हू। इसपर उसने बताया कि उसके पति मिर्जापुर के एक स्कूल में अध्यापक हैं। उनका वेतन ६० रु० मासिक है और उनके दो बच्चे हैं। आगे उसने कहा—"मेरे पति का घर पास ही के जिले मे है। वे तीन भाई हैं और उनकी बहुत बडी जमीदारी और एक पुश्तैनी मकान है। इस जायदाद से अच्छी-खासी आमदनी हो जाती है, लेकिन दो भाई उस सारी आय का इस्तेमाल कर लेते है। वे उसमें से मेरे पति को हिस्सा नही देते।

"डाक्टरसाहब, आप मेरी इस बात से सहमत होगे कि हम इस बात की उपेक्षा नही कर सकते। मैंने अपने पति को समझाया था कि हमें भी अपने परिवार का पालन करना है और हमें इस ढग से अपनी आय के हिस्से को दूसरो को नही उडाने देना चाहिए। सो मैंने उन्हें राय दी कि जायदाद का बटवारा कर लेना होगा। यह सोचकर हम दोनो अपने पुश्तैनी गाव में गये और मेरे पति ने दोनो भाइयो से जायदाद और उसकी आमदनी का हिस्सा मागा। आप जानते हैं कि हुआ क्या? भाइयो ने उनकी बात ही नही सुनी और वे लडने लगे। उन्होंने हमारी बेइज्जती की और हमें घर

से निकल जाने को कहा। डाक्टरसाहब, मैं आपसे कहती हूँ (उसका स्वर उत्तेजित हो उठा और आखे लाल हो गई), मैं राजपूत की बेटी हूं। अगर यह घटना मेरे मायके मे हुई होती तो लड़ाई हो जाती और तलवारे निकल आती। मैं अपने बच्चो की सपत्ति को इस तरह किसीको भी नही हड़पने दे सकती। मैं तो इसके लिए लड़ मरती।

"लेकिन मेरे पति बहुत ही नम्र और कोमल स्वभाव के है। जब मैंने उन्हें दृढ रहने तथा अपने भाइयो के साथ व्यवहार मे सख्ती करने को कहा, तो वह बोले कि यह मेरे वश का नही। वह अपने भाइयो के साथ अपने पुश्तैनी गाव मे नही लड सकते। डाक्टरसाहब, क्या आप समझते है कि उनका ऐसा करना ठीक था और क्या मेरा बच्चो के हक पर जोर देना मुनासिब नही था?"

आवेश एव क्रोध के मारे उसकी आखे लाल हो आई थी और उसके क्रोधी स्वभाव को देखकर आश्चर्य के साथ-साथ मेरा मन भी भर आया। इसके बाद मैंने पूछा—"इसके बाद फिर क्या हुआ?"

उसने जवाब दिया—"मेरे पति ने कहा था कि वह कुछ नही कर सकते और अगर तुम पारिवारिक सपत्ति के बटवारे पर ही जोर देती हो, तो अदालत के सिवा दूसरा चारा नही है। इसपर मैंने कहा कि इसके लिए कानूनी सलाह लो। उन्होने जवाब दिया कि वकील लोग तो फीस मागेगे और मेरे पास पैसा है नही। भला इतनी थोडी-सी आमदनी मे से मैं उनकी फीसे कैसे दे सकता हू! इसपर मैंने उन्हे आपसे राय लेने को कहा, जिसका जवाब उन्होने यह दिया, 'डा० काटजू तो बडे भारी वकील हैं। सभव है कि वह बहुत बडी फीस मागे और हमारे लिए उतना देना एकदम असभव होगा।'

"इसपर मैंने उनसे कहा कि मैं खुद ही आपके यहा जाऊगी, आपको अपने परिवार की सारी हालत बताऊगी और मुझे पक्का यकीन था कि आप हमारी सहायता करेगे।" इतना कहकर वह चुप होगई। उसकी शात आखो मे उसका दृढ निश्चय झलक रहा था। मैं तनिक मुस्कराया और

वोला—"तुमने मेरे पास आकर वहुत समझदारी का काम किया है। अव तो मैंने तुम्हारी सारी वात सुन ली है, इसलिए तुम वेफिक्री के साथ अपने घर जाओ। अदालतें और मुकदमेवाजी स्त्रियो के काम नही और न तुमको यह शोभा देता है। वेहतर होगा कि तुम अपने पति को मेरे पास भेज दो। मै उन्हे उचित सलाह दे दूगा। और हा, यह यकीन रखना कि किसी प्रकार की फीस की कोई वात नही होगी।"

इसपर जव उसने कहा कि उसके पति वही मौजूद है, तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने हैरानी के साथ पूछा—"कहा है ?"

"वाहर फाटक पर।" उसने जवाव दिया।

"कौन-सा फाटक ?"

"आपकी कोठी के वाहर वह तागे मे वैठे है।"

मै हसा और मैंने चपरासी से कहा कि फाटक के वाहर तागे में वैठे महाशय को भीतर वुला लाओ। तत्काल ही पति महाशय आगये। वह वहुत ही सरल, नम्र तथा विक्षिप्त-सा था। जाहिर था कि स्थिति उसके वम की नही थी। मुकावले में उसकी पत्नी का व्यक्तित्व रोवीला था।

मैंने उससे कहा कि आपकी पत्नी से मुझे सारी वात वता दी है। आप अपने पारिवारिक मामलो के विषय में कोई चिंता न करे, सव ठीक हो जायगा। मैंने मिर्जापुर के कुछ वकील-मित्रो के नाम लिये और कहा कि आप इनमें से एक के पास जाकर मेरा नाम लेना और और उनसे कह देना कि वह मुकदमा दायर करनेका मसविदा वनाकर मेरे देखने को भेज दे। इसके वाद वे दोनो चले गये, पत्नी वहुत खुश थी और पति एकदम गभीर।

थोडे दिनो वाद पत्नी की ओर से मुझे एक पत्र मिला, जिसके साथ मुकदमे का मसविदा था। पत्र में उसने अपने-आपको मेरी पुत्री जाहिर किया था। मैंने मसविदा देखकर उसे लौटा दिया, लेकिन कानूनी कार्रवाही की जरूरत ही नही पडी। वाद मे मुझे सूचित किया गया कि वह स्त्री अपने पति के साथ अपने पुश्तैनी गाव मे गई थी और वहा उसने सव लोगो मे फैला दिया कि डा० काटजू ने उसे मुहबोली वेटी वना लिया है और वह

बिना फीस लिये ही जिला अदालत में उसका मुकदमा लड़ेंगे। मैं समझता हूं कि दोनों भाइयों का दिमाग इससे शांत हो गया। जायदाद के बटवारे की मांग का वह जवाब भी कोई नहीं दे पाते थे और इस प्रकार वे आपसी समझौता करने को सहमत हो गये।

कई वर्ष बाद, मेरा खयाल है १९४० में मुझे एक अपरिचित स्त्री का खत मिला, जिसने मुझे पिता कहकर संबोधित किया था। एकाएक मैं उसे पहचान नहीं सका। खत में लिखा था कि उसके पति का उत्तर-प्रदेश के किसी दूसरे स्थान पर तबादला हो गया है और अब उसे १२० रु० मासिक मिलते हैं। बच्चे दो से बढ़कर चार हो गये हैं। आगे उसने लिखा था—"यह देखते हुए कि परिवार की आय बढ़ते हुए परिवार के लिए सर्वथा अपर्याप्त है, मैंने अपने यत्नों द्वारा आय में वृद्धि करने का निश्चय किया। तदनुसार मैंने अपने घर पर पढ़ना शुरू किया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से मैट्रिक, इंटर और बी० ए० परीक्षाएं पास कर लीं। अब मैं बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से बी० टी० की परीक्षा पास करना चाहती हूं। दाखिला मिल गया है और यूनिवर्सिटी के महिला हॉस्टल में जगह भी मिल गई है। होस्टल का खर्च लगभग चालीस रुपये महावार है और मेरे पति इस सारे खर्च को पूरा नहीं कर सकते। उन्होंने एक वर्ष मेरे घर से बाहर रहने की तो मंजूरी दे दी है और वह इस बीच बच्चों की भी देख-भाल करेंगे, लेकिन खर्चे के बारे में उनका कहना है कि वह अधिक-से-अधिक दस रुपये मासिक दे सकते हैं।' पत्र के अंत में उसने लिखा था कि बी० टी० परीक्षा पास करने और यूनिवर्सिटी होस्टल में रह सकने के लिए आप मेरी सहायता कीजिये।

मैं उस खत को बार-बार पढ़ता रहा और मेरे मन में उसके प्रति अधिकाधिक श्रद्धा और सम्मान उत्पन्न हुआ। मेरे मस्तिष्क में वह पुराना दृश्य चित्रित हो उठा और अनायास ही मैंने मन-ही-मन कहा—"उस जैसी बेटी या बहन का होना कितने सौभाग्य की बात है! परमात्मा उसे चिरंजीवी रखे।"

४

दैनिक समस्याएं और उनका समाधान

एक बहन से एक बार हिंदू घरो की सुख-शाति को अक्सर विक्षिप्त कर देनेवाले असुखद सबधो के बारे मे चर्चा हो रही थी। मेरा सुझाव था कि इस सकट का मूल कारण अक्सर स्वत्व-अधिकार की भावना होती है और यदि सबधित लोग गीता के 'मा फलेषु कदाचन' के सिद्धात पर आचरण करे, तो सहज ही लाभ हो सकता है। यह दर्शन-सिद्धात हिंदू घरो की रोज़मर्रा की समस्याओ का क्योकर समाधान कर सकता है, यह स्पष्ट करना इस लेख का उद्देश्य है।

प्रत्येक मानव-प्राणी में प्रबल स्वत्वाधिकार की भावना होती है और यह ज़रूरी भी नही कि हम उसे अनिवार्यत बुरा ही समझें। लेकिन होता कभी-कभी यह है कि कोई व्यक्ति अत्यधिक प्रतिष्ठित बन जाता है और उसके कारण ऐसी भक्ति और समर्पण के कार्य होने लगते हैं, जिनमें अपनापन का सर्वथा लोप हो जाता है। वस्तुत ऐसा आत्मत्याग दिखाई तो बहुत कम देता है, लेकिन इसका मूल तो अधिकार-भावना में ही निहित है।

यहा मुझे अपने पुत्र के विषय मे एक मा की स्वत्वाधिकार भावना का खयाल हो आता है। एक हिंदू मा के नाते वह अनुभव करती है कि बच्चे को जन्म देकर और अगाध मातृ-स्नेह से उसका लालन-पालन करने के कारण वह उनका अनत-प्रेम पाने की अधिकारिणी है। वह यह भी खयाल करती है कि उसे अपने पुत्र की धन-दौलत, उसकी सुख-समृद्धि, उसके घर और बाहरी जगत में भागीदार बनने का अधिकार है। वह पुत्र पर 'अधिकार' शब्द का अत्यधिक वास्तविक अर्थों में दावा करती है और हमारे धार्मिक उपदेश भी उसी लक्ष्य की प्रेरणा करते हैं। इसके बाद आती है वहू—पुत्र की पत्नी। अपने अस्तित्व के नाते वह भी अपने अधिकार का दावा करती है। उसका यह दावा अपने पति के प्रेम पर

असली बहन की तरह । यदि यह अनभूति वास्तविक होगी, तो पुत्र या भाई के बधन पूववत रहगे और सभवत वह अधिक सुदृढ होगे, लेकिन एक अन्य ही रूप मे । उस अवस्था मे वह पुत्र नही, बल्कि दामाद बन जायगा, दूसरी ओर भाई न रहकर वहन का पति होगा और इसीके अनुसार नतीजे भी हासिल होगे । एक दामाद स्नेह, मान और विशेष चिंता का अधिकारी होता है । आप महसूस करते ह कि उसके प्रति आपकी सब तरह की जिम्मेदारिया है, लेकिन किसी प्रकार का अधिकार नही । इस दृष्टि से मै सुझाव दूगा कि यदि आप अपने वेटे के साथ दामाद यानी अपनी नई मुहबोली वेटी के पति के तौर पर व्यवहार करेगे तो इसका परिणाम यह होगा कि जहा आप एक ओर अपना सारा स्नेह तथा मान उसे लगातार देते रहेगे, वहा आप उससे अधिकार के नाते स्वयमेव कुछ भी दावा करना छोड देगे । आप अपने पुत्र के घर मे यह समझकर नही जायेगे कि वैसा करने का आपको अधिकार है, प्रत्युत अपनी वेटी के घर में एक सम्मानित अतिथि के नाते जायेगे । इसी तरह बहन अपने भाई के घर मे इस दावे के साथ नही जायगी कि वह उसके भाई का घर है, बल्कि अपनी वहन के घर जायगी । मेरा अनुभव है कि मानसिक दृष्टिकोण मे इस परिवतन के आधार पर कल्पनातीत सुख-शाति की रचना हो जायगी । यदि बहू के साथ वेटी का-सा व्यवहार किया जाय, तो वह अवर्णनीय प्रेम का प्रतिपादन करेगी और वह खुद भी और अपने पति को भी ऐसे कार्यो की प्रेरणा करेगी, जिनसे अधिकाधिक स्नेह और सुख की उत्पत्ति हो । एक हिंदू पत्नी के हृदय मे से जिस क्षण आप प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या के तत्वो को दूर कर देगे, और जैसे ही उसे वह सतोष हो जायगा कि वह अपने पति के घर और उसके स्वत्वो की एकछत्र एव एकमात्र स्वामिनी है, वह स्वत ही अपने पति के अभिभावको और रिश्तेदारो के साथ ऐसे ढग का व्यवहार करेगी, जो इस विषय मे सिवा हिंदू नारी के अन्य कोई नही कर सकता । यह मै अपने निजी अनुभव और ज्ञान के आधार पर कहता हू । मेरा खयाल है कि इस जीवन मे अपनी

माताजी मे अधिक समझदार महिला मेरे देखने मे नही आई। न्होने इन्ही मिद्धातो के आधार पर कार्य किया था। उनके एक मुह-बोले भाई थे, लेकिन उनके भाई की पत्नी उनकी वहन थी। भाई से वह इस-लिए प्रेम करती थी कि वह उनकी इस नई वहन के पति थे, और दूमरी ओर यह वहन—यानी लोक-व्यवहार की भाषा में मेरी मौसी—मेरे और अपने निजी पुत्र के बीच रत्तमात्र भेद नही करती थी। हम एक गाव में रहते थे और वह रहती थी लाहौर नगर में। यद्यपि उनकी स्थिति इतनी सुखकर नही थी, तथापि उन्होने वहुत ज़ोर देकर मुझे अपने यहा वुला लिया। अपने-आपको अत्यधिक असुविधा मे डालकर भी उन्होने मुझे अपने यहा पाच वर्ष तक रखा और मेरी कालेज की शिक्षा को पूर्ण किया। जव मेरा विवाह हुआ, तो मेरी माताजी ने मेरी पत्नी के साथ वहू-जैसा नही, वल्कि अपनी निजी वेटी जैसा व्यवहार किया। उसकी सुख-सुविधा को वह मेरी सुख-सुविधा से भी कही अधिक आकती थी। वह वरसो मेरे और मेरी पत्नी के माथ रही। हमारे ही घर में उनका स्वर्गवास हुआ और यद्यपि हम कहा करते थे कि वह घर की मालकिन है और हम मव उनके वच्चे है, तथापि वह हमेशा इसी वात पर जोर देती थी कि यह घर तो उनकी नई वेटी का है और वह इस घर मे मेहमान के तौर पर रहती है। इमीका यह परिणाम था कि हमारे यहा चिरतन सुख-शाति थी।

वहुधा इस वात को महसूस नही किया जाता कि एक स्त्री पिता या मा के प्रेम के लिए कितनी तरमती है। अनेक अवसरो पर मुझे इसका वडा विचित्र अनुभव हुआ है। अनेक युवा लोगो ने मुझे अपना स्नेह-दान किया है। मेरी अवेड जिंदगी के इन वरमो मे मेरा यह सवसे वडा सुख है। इस सुख के पीछे भेद यह है कि मेरी वहुत-मी मुह-वोली वेटिया है, जो अपने घरो की मालकिनें तथा कई-कई वच्चो की माताए है। वडे विचित्र ढग मे मुझे यह स्थिति प्राप्त हुई है। पति और पत्नी की मौजूदगी मे मैंने वहुधा युवा लडकी मे यह मवाल किया है कि क्या वह मेरी वेटी वनना चाहती है या वहू, और इमका उत्तर असदिग्ध रूप में 'वेटी' मिला।

कुछ समय पूर्व इसी भावना का मुझे एक बहुमूल्य अनुभव हुआ। कलकत्ते के सरकारी भवन मे एक स्नेही बहन मेरे यहा आई। कुछ दिन रही और जाते समय बोली—"आप लोगो के साथ कुछ दिन रह कर मुझे बडी खुशी हुई, लेकिन मै नही जानती कि इस सुख को पाने के लिए मेरा बारबार आपके यहा आकर रहना उचित होगा या नही।"

मै मुस्कराया और मैने कहा—"यह कठिनाई तो सहज ही हल हो सकती है। मुझे तुम्हे बहन बना लेना चाहिए या बेटी। इनमे जो बनना चाहो, वह तुम बनाओ।"

उसका नि सकोच उत्तर था—'मै बेटी बनना चाहती हू।'

प्रत्येक नारी के हृदय मे मा और पिता के प्यार के लिए जो भूख है, उसका यह सकेत-मात्र है। यदि सास-ससुर उसे अपने बेटे की पत्नी न मानकर उसे अपनी बेटी बना ले, तो आश्चर्यजनक सुख की समृद्धि होकर रहेगी।

५

मैंने वकालत कैसे शुरू की?

मार्च १९०० तक जावरा (मध्यभारत) के स्कूल मे पढने के बाद मै कई महीने तक बीमार रहा। अक्तूबर १९०० मे मेरे पिताजी ने मुझे अपने ननिहाल लाहौर मे जाने की स्वीकृति दे दी, ताकि मै मार्च १९०१ मे पजाब विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा मे बैठ सकू। आया तो मै यहा केवल ६ महीने के लिए था, लेकिन साढे चार वर्ष तक रह गया और मार्च १९०५ मे मै फारमन क्रिश्चियन कालज, लाहौर से ग्रेजुएट हो गया। १९०३ तक मुझे तनिक भी खयाल नही था कि मै कानूनी पेशा अख्तियार करूगा। यदि पेशे का चुनाव वास्तविक रूपमे मुझपर छोडा जाता, तो मै डाक्टर बनता। मैने जुलाई १९०३मे मैडिकल कालेज मे भर्ती होने की सोची भी थी, लेकिन पिताजी नही माने। उन्होने जावरा मे एक मित्र से सलाह ली और उनकी सलाह

के अनुसार मैंने १९०५ में बी० ए० की परीक्षा पास कर ली। इस बीच डाक्टरी पेशे का आकर्षण तो फीका पड चुका था और उसकी जगह कानूनी डिग्री हासिल करने की कुछ-कुछ इच्छा हो गई थी। यह इच्छा उत्पन्न होने की एक बडी विचित्र घटना है।

शायद १९०३-४ की बात है। एक दिन सुबह-सुबह यूनिवर्सिटी रॉयल कमीशन के सदस्य हमारे कालेज मे आये। इस कमीशन के एक सदस्य सर गुरुदास बनर्जी थे, जो बडे वकील और उन दिनो कलकत्ता-हाई कोर्ट के जज थे। समाचार-पत्रो में कमीशन की नियुक्ति-सबंधी घोषणा छपी थी और उसमे गुरुदास बनर्जी के विषय में लिखा गया था "हमारे ट्रस्टी और स्नेही गुरुदास बनर्जी, एम० ए०, डाक्टर ऑफ लॉ।" मै इन शास्त्रीय उपाधियो से बडा प्रभावित हुआ। मैंने अपने मन मे निश्चय किया कि मै एक दिन एम० ए० और डाक्टर ऑफ लॉ बनूगा। उस समय मेरी आयु केवल पद्रह-सोलह वर्ष की थी और मेरी यह अभिलाषा मुझे तबतक मन-ही-मन उद्वेलित करती रही जबतक कि मैंने इसे पूरा नही कर लिया। तदनुसार पिताजी ने जब मुझे कानूनी शिक्षा के लिए इलाहाबाद जाने को कहा, तो मै तत्काल वहा जाने को राजी हो गया।

उन दिनो सयुक्त प्रात (वर्तमान उत्तर-प्रदेश) मे कानूनी शिक्षा का तरीका बडा ही असतोषजनक था। प्रात में उस समय केवल एक ही विश्वविद्यालय था—इलाहाबाद विश्वविद्यालय। वह शिक्षा-सस्था नहीं थी, बल्कि ऐसी परीक्षा-सस्था थी, जो मात्र परीक्षाओ और उपाधियो के लिए पाठ्यक्रमो का निश्चय करती थी। कानूनी शिक्षा प्रात के कुछ मुख्य कालेजो मे नियत की गई कानूनी-कक्षाओ में दी जाती थी। इनमें मुख्य कालेज थे—म्यूर सैंट्रल कालेज, इलाहाबाद, कैनिंग कालेज, लखनऊ और आगरा कालेज, आगरा। कालेज अधिकारी इन कानूनी कक्षाओ को कालेज के सामान्य प्रबध के लिए अतिरिक्त आय का साधन समझते थे। अदालतो के वकील कक्षाओ मे पढाने आते थे, जिन्हें बहुत थोडी

तनख्वाहे दी जाती थी। इलाहाबाद मे चार सौ रुपये माहवार के एक प्रोफेसर और डेढ सौ रुपये के दो लेक्चरार थे। ये लोग सप्ताह मे तीन बार लेक्चर देते थे। प्रोफेसर समूचे वर्ष प्रात काल कक्षा लेता था और दोनो लेक्चरार शाम को। इसका कोई चारा भी नही था क्योकि उन्हे दिन के समय अदालतो मे भी काम करना होता था। इलाहाबाद मे छुट्टिया भी बहुत लबी होती थी, गर्मियो मे अढाई महीने की—अगस्त से लेकर अक्तूबर तक। जिन दिनो हाई कोर्ट बद होता था उन दिनो भी दस सप्ताह के लिए कोई लेक्चर नही होते थे। इस तरह कानून के विद्यार्थियो का बहुत-सा समय व्यर्थ जाता था। कोई तिमाही या छमाही इम्तहान भी नही होते थे। किसी भी स्वीकृत सस्था की कक्षा के नियत सख्या मे लेक्चरो की हाजिरी के बाद विद्यार्थी सीधे एल-एल० बी० मे बैठ सकता था। लेक्चरार एक समय मे पैंतालीस-पचास मिनट तक अपना लेक्चर देते थे और विद्यार्थी उनके नोट लिख लेते थे।

किसी भी युवक के लिए यह बडा ही कष्टकर प्रश्न होता है कि वह कौन-सा पेशा अख्तियार करे। मेरे सामने भी यही समस्या थी। माता-पिता ने मुझे लाहौर और इलाहाबाद भेजकर काफी कष्ट उठाया था और अब यह सर्वथा असभव था कि मै उनपर और अधिक बोझा बनकर रहू। मै घर लौट आया और मैने किसी भारतीय रियासत मे नौकरी की खोज शुरू की। मुझे कही नौकरी न मिली और मेरे आवेदन-पत्रो का भी कोई जवाब नही आया।

ब्रिटिश भारत मे तो नौकरी का प्रश्न ही पैदा नही होता था। न तो मै असाधारण योग्यता-सपन्न था और न ही मेरा कोई प्रभाव था। कानूनी पेशा अख्तियार कर लेना भी मेरे लिए सहज नही था। पहले मुझे कोई उपयुक्त स्थान चुनना था। सयुक्त-प्रात के प्राय सभी जिले मेरे लिए समान रूप से उपयुक्त थे, क्योकि सारे ही मेरे लिए अपरिचित थे और कही भी मेरा कोई सबधी न था। इस प्रकार जब मै बेकारी और अनिश्चय के दिन काट रहा था, तो भगवान ने पडित पृथ्वीनाथ के रूप

में मुझे सहायता भेजी।

पडित पृथ्वीनाथ कानपुर की जिला अदालत मे वडे वकील थे। सभी जातियो के लोग उनका सम्मान करते थे और उनसे प्रेम करते थे। उनका व्यक्तित्व वडा ही प्रभावशाली था। प्रात भर में अपने समय में वह वहुत वडे जिरह करनेवाले माने जाते थे। एक अग्रेज जज ने खुले-आम कहा था कि यदि कभी किसी हत्या के अपराध में मैं फस जाऊ, तो अपने जीवन को पडित पृथ्वीनाथ के हाथो सौंप दूगा। झूठे गवाहो और वदमाशो के लिए वह आतक थे। वह कानपुर वार एसोसिएशन के प्रधान थे। कानपुर की प्राय प्रत्येक सार्वजनिक सस्था में वह सक्रिय दिलचस्पी लेते थे। उनकी आमदनी वहुत थी और उसी प्रकार वह उदारतापूर्वक परोपकार के कार्यों में खर्च भी करते थे।

जुलाई १९०७ में जब मैंने वकालत की परीक्षा पास की थी, तो मैं पहली वार पडित पृथ्वीनाथ से मिला था। मेरी ही तरह वह भी काश्मीरी ब्राह्मण थे। लेकिन उनके साथ मेरी कोई रिश्तेदारी न थी। मैं कानपुर में अपने चचेरे भाई से मिलने गया था और उसी समय मैं एक स्थानीय दीवानी के जज से भी मिला, जिनके नाम मेरे पास एक परिचय-पत्र था। जज महोदय सहृदयापूर्वक मिले और उन्होंने पूछा कि भविष्य में अव तुम्हारी क्या करने की इच्छा है। मैंने कहा कि अभी तक तो कुछ नही सोचा। इसके वाद वह वोले कि सयुक्त-प्रात की जिला अदालतो का मुझे पर्याप्त अनुभव है और मेरी राय मे पडित पृथ्वीनाथ ही ऐसे योग्य व्यक्ति हैं जो इस पेशे मे आनेवालो को सीधी राह पर डाल सकते हैं। उन्होंने वहुत ज़ोर के साथ पडितजी से मुझे मिलने की सलाह दी। तदनुसार मैं उनसे मिला। पडित पृथ्वीनाथ ने इससे पहले भी मेरा नाम सुन रखा था। जज महोदय ने उनके विषय मे जो विचार प्रकट किये थे, मैंने उन्हें दुहराया। वह मुस्कराये और वोले कि अगर तुम कानपुर आने का निश्चय करो, तो मैं तुम्हारी अवश्य सहायता करूगा। उस समय यह विल्कुल ही साधारण-सी चर्चा हुई थी। कानपुर एक वडा नगर और उसम

रहना बडा खर्चीला था। उसपर सबसे अपरिचित होने के कारण मेरे लिए वहां जीवन प्रारंभ करना बडी गंभीर समस्या बन गई थी।

इसी सोच-विचार में महीनों बीत गये। मैं संदेह और चिंता के समुद्र में डूबता उतराता रहा लेकिन किनारा नजर नहीं आता था। अंतत मैंने उसे पार करने का निश्चय किया। जनवरी १६०८ में, जब मैं साढे बीस वर्ष का था, मैंने पंडित पृथ्वीनाथ को एक पत्र लिखा। कुछ महीने पहले उनके साथ हुई मुलाकात का जिक्र किया और पूछा कि क्या मैं कानपुर आ जाऊं। वापसी डाक से दो पंक्तियों का एक खत मिला। वह हमेशा बहुत सक्षेप में लिखते थे। खत में लिखा था—"अवश्य आओ, मुझे तुम्हारी सहायता करने में खुशी होगी।" इस खत में मेरी सारी कठिनाइयां हल हो गईं और ५२ रुपये ८ आना अपनी जेब में लेकर फरवरी १६०८ को मैं घर से कानपुर के लिए रवाना हो गया।

१६०८ में जब मैं कानपुर की बार में शामिल हुआ, तो यह प्रांत भर में सबसे जबरदस्त जिला अदालत मानी जाती थी। यह नगर चिरकाल से इस प्रांत का औद्योगिक केंद्र रहा है और साथ ही प्रांत भर में सबसे बडा नगर है। यहां का धनी और संपन्न व्यापारिक समुदाय अदालत में काम करनेवालों के लिए पर्याप्त आय का साधन है। यहां की अदालत में वकीलों की बहुत बडी संख्या थी और हर कोई बार एसोसिएशन का सदस्य भी नहीं था। जो हो, कुछ अभागे लोगों को छोडकर एसोसिएशन के हरेक सदस्य को कुछ-न-कुछ काम मिल ही जाता था। बार एसोसिएशन के सदस्यों के पारस्परिक संबंध भी बहुत अच्छे थे और पंडित पृथ्वीनाथ के नेतृत्व में बेंच और बार में पारस्परिक सम्मान और आदर की भावना विद्यमान थी।

इन सह-व्यवसायियों से शीघ्र ही मैं पंडित पृथ्वीनाथ के छोटे और सहायक वकील के रूप में परिचित हो गया। इससे एसोसिएशन के सदस्यों की नजरों में मेरा भी कुछ-कुछ दर्जा समझा जाने लगा। हर कोई मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट करता था।

मैंने कुछ अज्ञानतावश स्व-विज्ञापन के आधार पर अपनी वकालत शुरू की। एक मित्र के सुझाव पर मैंने 'अमानत की जब्ती'-सबधी कानूनी विषय पर एक लेख लिखा, जो जून १९०९ मे 'इलाहाबाद लॉ जर्नल' में छपा। कानपुर-बार के सदस्यो ने इसपर खूब टिप्पणिया की।

उन दिनो पडित पृथ्वीनाथ हरदोई (अवध) में एक बडे दीवानी मामले में लगे हुए थे। मैं सहायक के रूप में उनके साथ वहा गया और पद्रह दिन तक वहा रहा। इस मुकदमे मे मुझे पैसा तो नही मिलना था, लेकिन बडी मूल्यवान शिक्षा की गुजायश थी। मेरे लिए यह पहला ही मुकदमा था कि जिसमे गवाहिया थी और मैं बडे वकीलो द्वारा कलापूर्ण जिरह और फिर जिरह-पर-जिरह को सुनता रहा। मेरे लिए यही सबसे बडी शिक्षा थी। इस मुकदमे में रीति-सबधी एक प्रश्न उत्पन्न हो गया, जिसके द्वारा दोनो पक्षो पर लागू होनेवाले उत्तराधिकार के सामान्य हिंदू कानून में सशोधन हो जाता था। पडित पृथ्वीनाथ ने मुझे अपने लिए एक टिप्पणी तैयार करने को कहा, जो मैंने तैयार कर दी। मैं नही कह सकता कि वह टिप्पणी उनके लिए किसी प्रकार लाभदायक सिद्ध हुई या नही, लेकिन जहा तक मेरा सबध था, उसके कारण मैं अपने शेष जीवन के लिए कानून की उस दिशा का पूर्ण जानकार बन गया।

एक घटना यहा विशेष उल्लेखयोग्य है। भारतीय मुकदमेबाजी की मूल बातो के विषय में इसके द्वारा मुझे पहले-पहल परिचित होने का मौका मिला। दोनो पक्षो में बडी दिलचस्पी और बडे व्यय के साथ यह मुकदमा लडा जा रहा था, यद्यपि जिस सपत्ति के सबध में यह झगडा था, उसका कोई विशेष मूल्य नही था। दोनो पक्ष निकट सबधी यानी चचा-भतीजे थे। चाचाओ का दावा था कि वह निकटतम सबधी होने के नाते मृतक की सारी जायदाद के उत्तराधिकारी है और भतीजो का तर्क यह था कि पारिवारिक रीति-अनुसार वह चाचाओ के साथ उस सपत्ति के समान उत्तराधिकारी है। हम भतीजो की ओर से पेश हुए थे

और दोनो ओर से रिवाज का सबूत देने के लिए जबानी और लिखित बहुत-सी गवाहिया उपस्थित करनी पड़ी थी। अगर यह मुकदमा आखिरी हद तक ही लड़ा जाता तो सभव था कि दोनो ही पक्ष बुरी तरह तग आ जाते। फलत मैंने अपनी नई-नई सूझ-बूझ के अनुसार मुवक्किलो का समझौता कर लेने की राय दी। यह सुनकर उन्हे जो वेदना और दुख हुआ था वह मै आज भी नही भूला हू। मेरे मुवक्किल ने मुझसे कहा—"समझौता! आप समझौते की चर्चा करते है! यह जमीन नही है, ये हमारे पूर्वजो की हड्डिया है। मै भला समझौते और अपने दावे को तिलाजलि देने की कैसे सोच सकता हू!" तब मुझे पहली बार इस बात का अनुभव हुआ कि भारत मे एक मनुष्य अपने पूर्वजो की भूमि के साथ कितनी दृढतापूर्वक बधा हुआ होता है। अपने व्यावसायिक जीवन मे मुझे इस भावना की शक्ति और सत्यता का कई बार अनुभव हुआ है।

सबसे पहली पेशी का मुझे अनोखा अनुभव हुआ था और मेरे लिए तो वह मनोरजक भी थी। पडित पृथ्वीनाथ के कहने पर उनके एक मुवक्किल ने मुझे पद्रह रुपये फीस देकर फैसले मे पहले कुर्की की दरखास्त देने को कहा। यह मुकदमा एकदम मामूली था और निश्चय ही इसकी आज्ञा जारी हो जानेवाली थी। मैंने बडी सावधानी के साथ दरखास्त लिखी और अदालत मे पेश की। जज ने इस आशा के साथ मेरी ओर देखा कि मै उन्हे उस दरखास्त के बारे मे ब्यौरा दू। लेकिन मेरी तो जबान को काठ मार गया था। मै एक भी शब्द न बोल सका। जज महोदय ने शर्मीले युवक पर नजर डाली। उन्होने अर्जी पढी और जो प्रार्थना की गई थी उसके लिए आज्ञा जारी कर दी।

इसके बाद दूसरा अनुभव कुछ उससे बेहतर था। यह मेरा निजी मुकदमा था, यानी पडित पृथ्वीनाथ का इसमे कही दखल नही था। यह एक गरीब आदमी की फौजदारी अपील थी, जिस पर एक साधारण अपराध के लिए जुर्माना किया गया था। इसकी फीस पाच रुपये थी, लेकिन

फीस की रकम का प्रश्न तो मेरे लिए सर्वथा अविचारणीय था। मेरे लिए तो मुकदमे का होना ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। किस प्रकार मैंने इसकी तैयारी की, किस प्रकार मैंने इसके सब पहलुओं पर विचार किया, किस प्रकार मैंने मन-ही-मन बारबार अपने खयाल के मुताबिक इस मुकदमे में उठनेवाले अनेकानेक प्रश्नों पर बहस को दोहराया! लेकिन जिस जिला मजिस्ट्रेट के सामने यह अपील पेश हुई, वह मुझे सर्वथा हृदयहीन और कठोर-सा जान पड़ा। मेरे मुवक्किल के साथ जो भारी अन्याय हुआ था, उसका उसपर कुछ भी असर नहीं हुआ। उसने फैसला पढ़ा, मेरी ओर देखा, मैं बोला, और अचानक जो कुछ मुझे कहना था, उसका नब्बे प्रतिशत भूल गया और एकाएक चुप हो गया। नतीजा यह हुआ कि तत्काल अपील खारिज हो गई। दिन भर मैं बहुत ही परेशान रहा, लेकिन मुवक्किल ने इस बात को इतना महसूस नहीं किया। वह अपील खारिज हो जाने पर भी खुश था। जब वह २४ बरस बाद मुझे मिला, तो उसने मुझे मेरे इस सबसे पहले असली मुकदमे की याद दिलाई।

६

मेरा पहला मुवक्किल

४४ साल पहले की यह कहानी है। उस समय मैं निरा युवक था। भरी-पूरी जवानी थी और संगी-साथियों में काफी लजीला था। कानपुर की अदालतों में मैंने वकालत शुरू की ही थी और बड़ी मुश्किल से बारह महीने बीते थे। एक तंग और भद्दी-सी गली में किराये के मकान में मेरा दफ्तर था। दफ्तर के कमरे को मेजों, कुर्सियों तथा अन्य सामान से सजाने की मुझमें क्षमता नहीं थी और इसलिए मैंने पुराना भारतीय ढंग अपनाया। मेरे दफ्तर के सामान में कुल-जमा एक दरी, एक सूती कालीन, जो मुझे पिताजी ने दिया था, और एक मसनद—तकिया था।

रूप मे उसने आखिरी मालिक से यह जायदाद खरीदी है और फलत इस अधिकार के नाते वह इसका पूरा-पूरा मालिक है। रहन-जैसी किसी भी बात से उसने इन्कार कर दिया था। और सभी सरकारी इदराजो में उसे और यहा तक कि उसके पूव के मालिको को भी उस जायदाद का पूरा-पूरा मालिक दज किया गया था, जो १८२४ से लेकर मूल्य की दृष्टि मे बीस गुने से भी ज्यादा की हो चुकी थी।

इन दस्तावेजो के आधार पर मुझे मालूम हुआ कि उसका नाम बच्ची-सिह था। मैंने उससे पूछा कि इस मुकदमे से सबधित अन्य कागजात, जैसे, बधक-पत्र की नकल और दूसरे पुराने दस्तावेज तथा अधिकार-पत्र कहा है? उसने कहा कि इन दो पुलिंदो के सिवा उसके पास कोई दस्तावेज नही है, यहातक कि उसके पास बधक-पत्र की भी नकल नही है, जिससे यह मालूम हो सके कि उसके पूवजो का किसी भी रूप मे इस जमीन से कोई नाता था या उन्होने कभी किसीके पास इस जमीन को बधक रखा था। इसके अलावा दीवानी अदालत की कारवाई के पुराने कागज मिलने भी असभव थे, क्योकि जिला कानपुर में १८५७ के गदर के दिनो में सब सरकारी रिकार्डों को जला डाला गया था और ऐसी अवस्था मे दीवानी अदालतो या तहसील से इसके सबध मे कुछ भी पता नही लग सकता था।

इसपर मैंने धीरे-से कहा कि तुम्हारा मामला तो बहुत ही विकट नज़र आता है। कागजो के बिना हो ही क्या सकता है? तुम्हारे पास बधक-पत्र तक की तो नकल है नही! लेकिन वह था कि मेरी किसी भी बात पर ध्यान ही नही देता था। उसकी तो एक ही रट थी, कभी-कभी फुसफुसाते हुए, कभी रोते हुए और कभी ऊची आवाज में—"आप सबके मुकदमे लडते हो, लोग सभी तरह के मुकदमे लडते है, मेरा मुकदमा कोई नही लडता। आप मेरा मुकदमा क्यो नही लडते?" मैं बडे असमजस में था। उससे पिड छुडाने का रास्ता भी दिखाई नही देता था। तब एका-एक खयाल आया और मैंने उससे कहा कि तुम इन दो पुलिंदो को यही छोड

जाओ । मैं इन्हें एक बार और देखूगा । जब तुम फिर से आओगे तो इस-पर और चर्चा करेंगे । मौजूदा हालत में किसी तरह की फीस का प्रश्न ही नही उठता था ।

जब वह चला गया, तो पता नही क्या हुआ कि इस मुकदमे में मेरी रुचि बढ गई और वह मेरे दिमाग पर वह हावी-सा हो गया । मैं इन कागजो को कचहरी जाते हुए साथ ले गया । वहा बार-लायब्रेरी में मैंने उन्हें ध्यान के साथ बारबार पढा । अपने एक निकट के साथी से मैंने इसकी चर्चा की तो वह ठहाका मारकर हसते हुए बोले—"अरे, उसी बूढे बच्चीसिंह की कहते हो ! क्या वह पागल तुम्हारे पास भी गया था ? वह तो झक्की है और पिछले दस बरस से कानपुर की अदालत में वह अपने इस मुकदमे को लिये फिरता है । और हा, कोई भी नया-नया वकील उससे अछूता नही बचा, हर किसीके पास वह हो आया है । तुम उसकी चिंता न करो ! बस टाल दो उसे !"

लेकिन करने की अपेक्षा यह कहना आसान था । लाख चाहने पर भी मैं इस मुकदमे को छोड नही सका । इसके बाद ठीक से याद नही कि मैंने कितनी किताबें पढ डाली । मुझसे बडे वकील (प० पृथीनाथ) की लायब्रेरी में इस कानून के विषय का बहुत-सा साहित्य था । कचहरी की लायब्रेरी में ढेरो पुराने विवरण मौजूद थे । इन सब सदर्भ-पुस्तको को, जो भी मुझे मिल सकी, बहुत दिनो और सप्ताहो तक मैं उलटता-पलटता रहा । इन पुस्तको की अनुक्रमणिका की सहायता से मैं ज्यो-त्यो अपने मुकदमे से सबधित उन सब मुकदमो को देख गया, जिनका १९वी सदी में फैसला हुआ था । इसका परिणाम यह हुआ कि १८०० और १८६० के बीच में प्रचलित कानून और विधि से मैं पूरी तरह वाकिफ हो गया । इस बीच बच्चीसिंह भी लगातार मेरे पास आता रहा । जब उसने देखा कि मैं उसके मुकदमे में इतनी दृढता और लगन के साथ लगा हू, तो उसका मस्तिष्क कुछ शात हो गया और आचरण में भी वह उतना विक्षिप्त नही रहा । मैं समझता हू कि इससे पहले उसने जीवन में ऐसी

सहानुभूति का कभी अनुभव नही किया था।

लेकिन कोरी सहानुभूति से कुछ नही हो सकता था। प्रश्न यह था कि किया क्या जाय। लगता था कि बिना नीव के इमारत खडी करने-जैसा यह काम है। मैंने कानूनी किताबो और कानूनी विवरणो को केवल इसलिए पढा था कि पुरानी विधि से जानकारी हो जाय और इसके बाद मैंने तहसील में कई घटे और दिन बदोबस्त के उन विवरणो को पढने मे लगाये, जो १८५७ के बाद विशेषत इस गाव से ताल्लुक रखते थे। सयुक्त-प्रात के ज़िला कानपुर मे स्थायी बदोबस्त की मालगुजारी प्रचलित नही थी। हर ३० साल के बाद मालगुजारी बदोबस्त होता था और ज़िला कानपुर मे १६०१ से १६०५ के मालगुजारी बदोबस्त के सारे विवरण में बच्चीसिंह या उसके पिता का कही भी उल्लेख नही था। जिस व्यक्ति के अधिकार मे उस समय वह ज़मीन थी, उसका नाम उस जायदाद के मालिक के रूप मे दर्ज किया गया था। इससे पूर्व १८७०-१८७५ के बदोबस्त के विवरणो से बहुत-कुछ ज़ाहिर हो जाना था। मैंने अनेक अनुक्रमणिकाओ, रजिस्टरो, साराशो तथा अस्त-व्यस्त कागजो को देखा और इससे मुझे पता लगा कि १८५७ से पहले पुराने मालिक महाराजसिंह का नाम मालगुज़ारी के विवरणो मे से इस जायदाद के बधककर्त्ता के रूप में हटाकर बधक रखनेवाले का नाम इस जायदाद के पूरे मालिक के रूप मे दर्ज कर दिया गया था। बीस बरस बाद १८५७ मे नये बदोबस्त के समय महाराजसिंह ने मालगुज़ारी के विवरणो मे उस इदराज मे सशोधन और बधककर्त्ता के रूप मे अपना नाम दर्ज करने की दरख़ास्त दी थी। यह जायदाद उस समय जिसके अधिकार मे थी, उसने जवाब दिया था कि इस समय बधक है ही नही और १८४६ मे ज़िला जज की अदालत मे सुनवाई के बाद महाराजसिंह के खिलाफ जो खर्चे की डिगरी हुई थी, उसकी कुर्की कर ली गई है, और उस कुर्की में बधक-कर्त्ता के रूप में उसके अधिकार-पत्र और अन्य अधिकारो की नीलामी की गई। तदनुसार बधक रखनेवाले ने उन्हे खरीद लिया और इस प्रकार बधक का मामला पूर्णतया खत्म हो

गया । लेकिन यह कार्रवाई माल-अफसर की अदालत में बहुत-ही सक्षिप्त रूप में हुई थी और जान पडता था कि आखिरी फैसले के लिए जो तारीख नियत की गई थी, उस दिन मालिक की ओर से कोई भी हाजिर नही हुआ, और नायब तहसीलदार ने आज्ञा दी कि महाराजसिंह का नाम बंधककर्ता के रूप में दर्ज किया जाय । यह इदराज १८७५ में हुआ था, लेकिन कुछ बरस बाद किसी भी ढग से, जिसका मैं पता नही लगा सका, इस आज्ञा को पुन बदल दिया गया और महाराजसिंह और उसका परिवार सब इस रगमच से पूर्णतया गायब हो गये ।

जो हो, मालगुजारी बंदोबस्त के रिकार्डों में कई प्रकार की अन्य सूचनाए दर्ज थी, जैसे, १९ वी सदी में समय-समय बंधक-भूमि पर लगा मालिया और उस पर किसानो से लगान की वसूली । यह जाहिर था कि अगर ज़िला जज के इस फैसले को सही मान भी लिया जाता कि १८४९ में मूल और ब्याज का एक हिस्सा अभी बकाया था, तो भी पिछले ५७ बरसो में सारी स्थिति बदल गई थी । इसका मतलब यह था कि न केवल बंधक की सारी रकम एक अरसे में पूरी हो चुकी थी, बल्कि मालिक को देने के लिए एक बहुत बडी रकम बंधकवाले के पास जमा हो गई थी ।

दोनो पुलिंदो की जब अधिक जाच की गई, तो उससे मुकदमे के सबंध में एक और भेद मिला । यह साफ जाहिर था कि वह पुराने दस्तावेज है, लेकिन मैंने देखा कि एक तो उनमें सरकारी नकल है, जो अदालतो से सरकारी मोहर के साथ मुकदमा दायर करनेवाले को मिलती है और दूसरी गैर-सरकारी नकल थी, जो किसीके द्वारा किसी समय घर पर तैयार की हुई थी । फैसलो और डिगरियो की सरकारी नकलें कीमती दस्तावेज होते हैं । एक गैर-सरकारी नकल का कानूनी तौर पर कुछ भी महत्व नही होता और कोई भी अदालत उसे प्रमाण-रूप में स्वीकार नही करती । लेकिन यहा मामला यह था कि सादी नकल इस मुकदमे का पहला फैसला था और सरकारी नकल आखिरी फैसले की थी । पहले गैर-

सरकारी दस्तावेज़ मे इस मुकदमे का सारा ब्यौरा दर्ज था, यानी अदालत खलीफा और अपील के फैसले। इन दोनो फैसलो मे बधक-पत्र के आवश्यक विवरण भी थे—बधककर्ता और बधक रखनेवालो के नाम, तारीख और वह रकम जो कर्ज के रूप में दी गई थी। दूसरी नकल मे किसी भी अदालत ने इन विवरणो को फिर से देना आवश्यक नही समझा। अगर आप मिसल से इस सादी नकल को निकाल दे, तो इस बधक-सबधी दोनो पक्षो और तारीख आदि का कुछ भी पता न चले। इस दृष्टि से सिवा इस सादी नकल के दूसरा कोई सबूत उपलब्ध नही था।

दोनो दस्तावेज़ो में मूल पर व्याज की दर को भी स्पष्ट नही किया गया था। इस कठिनाई को मैंने ज्यो-त्यो पार कर लिया था, क्योकि सन १८०६ मे यह नियम जारी किया गया था कि कर्ज लेनेवाले और देनेवाले का निपटारा करने के लिए कोई भी अदालत १२ प्रतिशत सालाना से ज्यादा की मजूरी नही देगी। इसका मतलब यह हुआ कि १८३८ मे बधक-पत्र मे चाहे जो भी व्याज की दर दर्ज हो, पर अदालती मुद्दो के लिए १२ प्रतिशत की दर ही मान्य होगी।

इससे आगे एक दूसरी भयकर बाधा थी—मियाद के सवाल की। कानून बधककर्ता को ज़मीन छुडाने और ऋणदाता से वापस लेने के लिए ६० बरस की इजाजत देता है। ये ६० बरस १८९८ मे पूरे हो चुके थे। मैं यहा बता देना चाहता हू कि अगर बधक रखनेवाला या उसका उत्तराधिकारी अथवा प्रतिनिधि लिखित रूप मे ऋणी को बधक-कर्ता के तौर पर और ज़मीन का असली मालिक स्वीकार करता है, तो कानून मियाद की अवधि में वृद्धि करने की इजाजत देता है। इस लिखित स्वीकृति के लिए मैंने १८७५ के माल रजिस्टर मे सशोधित इदराज को बनाया, नायब जिसमे तहसीलदार ने हुक्म दिया था कि महाराजसिह को बधककर्ता और उस एक मुसम्मात को बधक रखनेवाली लिखा जाय, जिसके अधिकार मे उस समय वह ज़मीन थी। जब वह दस्तावेज़ तैयार किया गया था, इस पर महाराजसिह और पर्दानशीन मुसम्मात दोनो के

हस्ताक्षर हुए थे। मुसम्मात की ओर से गाव के पटवारी ने इस प्रकार दस्तखत किये थे—"मुक्तकौर वकलम शिवदयाल पटवारी।"

इस प्रकार अब मै मुकदमे की पूरी-पूरी तैयारी कर चुका था और कानून के अथाह सागर में कूद जाने को उतारू हो गया था। दूसरी ओर बेचारा बच्चीसिह कौडी-कौडी के लिए मोहताज था और निहायत किफायतशारी के साथ काम भी करना था। इसके साथ ही मै मुकदमे की रकम इतनी बडी भी रखने का निश्चय कर चुका था कि जिससे पहली ही अपील पर यह सीधे हाई कोर्ट में जा सके।

दोनो पुलिदो और १८७५ के इदराज की सरकारी नकल के आधार पर मैने बधक-पत्र को फिर से लिखा और पक्ष-समर्थन की तैयारी कर ली। मेरा पक्ष यह था कि व्याज की निश्चित दर केवल १२ प्रतिशत सालाना थी। मेरा कहना था कि जिला जज के फैसले को ही आधार-रूप में ग्रहण किया जाय, जबकि १८४६ में मूल और व्याज का थोडा-सा अश बकाया थे, लेकिन ज्यादा-से-ज्यादा दस बरस के अदर मूल और व्याज-सहित बधक की सारी रकम वसूल हो जाती है। उसके बाद मेरा कहना था कि पिछले ५० बरसो से जिन लोगो के कब्जे में यह जमीन थी, उनके पास एक बहुत बडी रकम फालतू रह जाती है। इस तरह अत में मैंने दावा किया कि यह ज़मीन बच्चीसिह (असली बधककर्ता के पुत्र) को वापस दिलाई जाय, और साथ ही किराये और मुनाफे का सारा हिसाब लगाकर वह हज़ारो रुपये का अतिरिक्त लाभ भी उसे दिलाया जाय। अवधि के बधन से बचने के लिए मैंने १८७५ के इदराज का आश्रय लिया, जो बधक रखनेवाले के द्वारा बधककर्ता के अधिकार-पत्र की स्वीकृति थी। ७१० रुपये के असली बधक-ऋण पर मैंने ५३ रुपये की अदालती फीस लगाई और न्याय-प्राप्ति के मुद्दे से मैंने दावे की कीमत ५२०० रुपये आकी। तदनुसार मैंने कानपुर के मातहत जज की अदालत में मुकदमा दायर कर दिया। मैने उन सब व्यक्तियो या उनके उत्तराधिकारियो अथवा कानूनी प्रतिनिधियो को प्रतिवादी बनाया था, जिनके अधिकार में यह जमीन सन १८२४ से लेकर

कभी भी रही थी। आखिरी नाम था उस लखपति उद्योगपति का, जिसके कब्जे मे वह जमीन इस समय थी।

कचहरी मे जब इस मुकदमे का समाचार फैला तो, बार-लायब्रेरी मे खूब फबतिया कसी गई। हर किसीने इसे कोरा पागलपन समझा। बच्चो-सिह तो पागल था ही और उसके नौजवान वकील के बारे मे भी यही खयाल किया गया। किसीने भी इसे गभीरतापूर्वक ग्रहण नही किया, क्योकि जाहिरा तौर पर वह बेबुनियाद था, यहा तक कि बहुत-से प्रतिवादियो ने पेशी पर हाजिर होने की भी परवाह न की। लखपति महाशय ने कानपुर-कचहरी के बडे-बडे कई वकीलो को तैनात किया था, लेकिन मेरा खयाल था कि बच्चोसिह की किस्मत का पासा पलट चुका है और ये बडे-बडे वकील इस मुकदमे के बारे में बिल्कुल बेफिक्र थे। न तो उन्होने और न उनके प्रतिवादी ने इस पर कोई ध्यान दिया। बधक-पत्र मौजूद नही था, और साफ ही इसके कारण कानूनी स्वीकृति भी नही थी और उनके मन मे स्पष्टतया इस दावे की मियाद निकल चुकी थी। इस बात का किसीको खयाल भी नही हो सकता था कि अधिकार-पत्र की मान्यता पर बधक रखने-वाले के ही दस्तखत होगे। मेरा यह भी खयाल है कि प्रतिवादियो मे किसीने तहसील मे जाकर इस मुकदमे के बारे मे किसी तरह के दस्तावेज देखने की भी तकलीफ गवारा न की थी। इसके अलावा उन्होने सबसे बडी एक और भी गलती की। दोनो पुलिदो की सावधानी के साथ जाच करने के बिना ही उन्होने कल्पना कर ली कि ये दोनो सरकारी नकले है और प्रतिवादियो के लिखित बयानो मे यह साफ तौर पर मान लिया गया कि जिन दो पक्षो का मैंने अपने दावे मे जिक्र किया था, उनमे कथित तारीख को एक बधक-पत्र लिखा गया था। बधक-पत्र की यह मान्यता आखिरकार बहुत-ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।

बधक और उसकी तारीख के तथ्य को मानने के अलावा प्रतिनिधियो ने इस दावे से कतई इन्कार किया था और अनुरोध किया था कि अगर कोई बधक है, तो भी वह सर्वथा समाप्त हो चुकी है और यह दावा पूर्णतया

निराधार और बेहूदा है।

इस मुकदमे की पहली पेशी कई दृष्टियो से वस्तुत उल्लेखनीय है। माननीय जज खुशमिजाज वयोवृद्ध सज्जन थे। वह बडे दयालु और विवेकी थे। जैसे-ही मुकदमा शुरू हुआ, उन्होने अपनी जानकारी के लिए इस्तगासा पढा। वह मुस्कराये। निश्चय ही उन्होने समझ लिया कि यह एक असाधारण मुकदमा है। उन्होने मेरे उन दोनो पुलिंदो को उठाया और बडे गौर से उन्हे पढा। फिर एकाएक मुझसे बोले—"वकीलसाहब, यह वाला पुलिंदा तो सरकारी नकल नही है। फिर आप इसे सबूत में कैसे पेश कर सकते है ?" मैं जानता तो था ही, लेकिन मैंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"जनाब, क्या आपको इसका पूरा यकीन है ? क्या मैं देख सकता हू इसे ?" उन्होने वह मुझे दिया और मैंने बात को बनाए रखने के लिए बहुत उत्सुकता के साथ उसे देखा और उसके बाद बहुत ही लापरवाही दिखाते हुए मैंने कहा—"तो इससे क्या ? जाहिर है कि यह दस्तावेज काल्पनिक नही है और यद्यपि यह अनधिकृत और गैर-सरकारी नकल है, तथापि यह बिल्कुल सही जान पडता है। इस मुकदमे की विशिष्ट अवस्थाओ को ध्यान में रखते हुए इसे कृपया सबूत के तौर पर रख लीजिये। मुझे विश्वास है कि दूसरे पक्ष को भी इस पर एतराज नही होगा।"

मेरे इतना कहते ही प्रतिवादी-पक्ष बेहद उत्तेजित हो उठा और बडे जोर का एतराज उठाया। इस पर जज ने कहा—"साफ है कि इसे मैं सबूत के तौर पर नही ले सकता। मैं इसे नामजूर करता हू।" जैसे-ही उस दस्तावेज को नामजूर किया गया, वैसे-ही प्रतिवादियो के वकीलो ने तत्सबधी जटिलता को महसूस किया। उन्होने अदालत से अपने पहले बयान में सुधार करने की और बधक-पत्र के तथ्य और तारीख की मान्यता को वापस लेने की मजूरी चाही, जो उनके कथनानुसार प्रस्तुत रद्द किये दास्तावेज पर ही आधारित थी। अब थी मेरी बारी। मैंने इसका बलपूर्वक विरोध किया। मैंने कहा—"बयानो में जिन बातो को स्वीकार किया जाता है, उनका दोनो

पक्षो की ओर से सबूत के तौर पर पेश किये दस्तावेजो के साथ कोई सबध न ी होना और इस मामले मे जो आमतौर पर स्वीकृति की गई है, वह पूर्णतया बिना बात की है। अगर मौजूदा मुकदमे मे प्रतिवादियो को अपनी स्पष्ट और असदिग्ध स्वीकृतियो को वापस लेने की इजाजत दी गई, तो यह बडा भारी अन्याय होगा।" मै जानता तो नही, लेकिन बहुत सभव है कि जज को मेरे पागल मुवक्किल और साथ ही उसके पागल नौजवान वकील पर दया आई और वह दृढ रहे। उन्होने प्रतिवादी-पक्ष को अपने बयान मे सशोधन करने की मजूरी नही दी। जितना कुछ वह मान चुके थे, वह बहाल रहा और अब मुझे रत्ती-भर भी इस बात की चिता नही थी कि मेरा वह मूल्यवान कागज मिसल पर रहता है या नही। मेरा मतलब हल हो चुका था।

बहुत थोडी जबानी गवाहिया थी, इसलिए थोडे ही दिन बाद बहस की बारी आ गई। बहस का सिलसिला काफी लबा था। मै नही जानता कि क्योकर मै उस सारे बोझ को सहन कर गया। निश्चय ही इसका कारण मेरा आत्म-विश्वास था। मुकदमे के विषय मे मेरी बेहद तैयारी थी और जज साहब चूकि बहुत ही धैर्यवान और साथ ही दयालु थे, इसलिए उन्होने नौजवान नये वकील की लबी बहस को बडी शाति के साथ सुना। मै समझता हू कि मैने उनका बहुत-सा समय नष्ट भी किया होगा, लेकिन मुकदमे की एक के बाद एक खाई को मै पाटता गया। आखिरकार मियाद के जटिल प्रश्न पर बहस करने के लिए मैने इलाहाबाद हाई कोर्ट के एक फैसले का आश्रय लिया। मेरा तर्क था कि अदालत को यह मानना चाहिए कि मुसम्मात की ओर से इस दस्तावेज पर दस्तखत करने के लिए चूकि पटवारी कानूनी तौर पर एक अधिकृत प्रतिनिधि था, और इसमे एक बडी भारी कानूनी मान्यता समाविष्ट है, इसलिए विधवा द्वारा यह मान्यता उसके उत्तराधिकारियो पर भी बधन-रूप मे लागू होती है। सारी बहस के दौरान मे जजसाहब मुस्कराते रहे और एक बार तो आख दबाते हुए उन्होने कहा भी—"पडितसाहब, आप तो कनकौआ कच्चे

धागे पर उडा रहे है ।" लेकिन मै रुका नही, बढता गया और अपने पक्ष में जो भी तर्क दे सकता था, देता गया । मुझे लगता था जैसे बच्चीसिह और उसके बच्चे मेरे चोगे के एक छोर को खीच-खीच कर कह रहे है—"कहते जाओ, कहते जाओ, रुको नही ।"

दूसरी ओर वे बडे-बडे वकील थे, जो हस-हसकर इस मुकदमे को बेकार करने की कोशिश में थे, लेकिन उनके प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना के बिना, क्योकि अब उन सबका स्वर्गवास हो चुका है, इतना तो अवश्य कहूगा कि उन्होने इस मुकदमे को केवल खिलवाड समझा था और वास्तव में यह नही समझा था कि इस मुकदमे के लिए अच्छी-खासी तैयारी और गभीर तर्क की आवश्यकता होगी । बहस की समाप्ति पर जज ने फैसला सुरक्षित रखा ।

इन माननीय जज की आदत थी कि बहुत सावधानी के साथ टिप्पणिया लिख लिया करते थे और उसके बाद फैसला देने से पूर्व हफ्तो घर पर स्वत सारी मिसल का अध्ययन किया करते थे । एक महीना बीत गया और फैसले के बारे में रत्ती-भर भी समाचार न मिला । मै बडे असमजस में था और आशा भी बहुत नही थी, क्योकि जज महोदय यद्यपि दयालु व्यक्ति थे, तथापि मुकदमे के दौरान में उनकी एक भी टिप्पणी उत्साहवर्द्धक नही रही थी । जो कुछ उन्होने उस बीच कहा था, वह मेरा पक्ष-समर्थन नही करता था ।

अचानक एक महीने के बाद मुझे उनकी अदालत में एक दूसरे मुकदमे मे पेश होना पडा । देखते ही वह अनायास सहज-भाव से बोले—"ऐसा लगता है कि आपकी पतग उडकर ही रहेगी ।" मै उनके सकेत को समझ गया और मेरा दिल उछलने लगा । थोडी-ही देर बाद फैसला सुनाया गया और मै आश्चर्य-चकित था । यही नही कि उस जायदाद पर अधिकार करने की डिगरी जारी की गई थी, बल्कि उसके साथ-ही सब प्रतिवादियो को सयुक्त रूप में बच्चीसिह को अतिरिक्त लाभो के रूप में बीस हज़ार रुपये की नकद रकम भी अदा करनी थी । सक्षेप में, यह सारी रकम लखपति उद्योगपति

को चुकानी थी। यह मुकदमे की डिगरी नही, विशुद्ध सोना था। यह कहना कि मै खुश था, असलियत को हलका करना है। सच तो यह है कि मै खुशी से नाच उठा। मेरी खुशी की सीमा न रही और जो-जो खयाल उस समय आये, उन्हे वर्णन करना असभव है। बार-लायब्रेरी में बस मेरी-ही-मेरी चर्चा थी, जैसे कुछ अपूर्व घटना हो गई हो।

इसके बाद इलाहाबाद हाई कोर्ट में प्रतिवादी पक्ष ने अपील की और वहा भी बच्चीसिह की किस्मत ने उसका साथ दिया। माननीय जजो के सामने जब मुकदमा पेश हुआ, तो उन्होने दावे के पुरानेपन पर बेहद आश्चर्य प्रकट किया, लेकिन आखिरकार मातहत अदालत के फैसले को स्थिर रखते हुए अपील खारिज कर दी। इस महान विजय से बच्चीसिह को कैसा लगा, उसे शब्दो में व्यक्त नही किया जा सकता। यहा मुझे एक दूसरे मुवक्किल की कही बात याद आ गई है। मैने उसे उसके पुरखो की जमीन के बारे में समझौता करने का मशविरा दिया था। मेरी सलाह पर उसने कहा था—"आप नही जानते कि आप कह क्या रहे है। ये जमीने नही है, मेरे पूवजो की हड्डिया है।" और बच्चीसिह इस मामले में ६० बरस के बाद अपने पूवजो की जमीन वापस ले रहा था। मै खुशी के उन आसुओ को चित्रित कर सकता हू, जो उसने और उसके बच्चो ने जीवन की इस महानतम घटना पर बहाये होगे।

उसे उसकी जमीन ही वापस नही मिली, उसकी बुद्धि भी लौट आई। इस फैसले से वह एक समझदार आदमी बन गया और इसके बाद जब भी कभी वह आया, वह उन जगली आखोवाला और फटे-पुराने चियडोवाला बूढा आदमी नही था। वह तो बिल्कुल ही एक दूसरा बच्चीसिह था—साफ सुथरे वस्त्र पहने, जिसके साथ चार नौकर थ, जिनमे एक हुक्का थामे रहता। अब वह ठाठ-बाट का आदमी बन गया था।

लकिन आप पूछेगे कि इस मुकदमे में आपको क्या मिला? उसने मुझे क्या दिया? मुझे वह मिला, जिसकी कीमत को आका नही जा सकता। उसने मुझे दी आत्म-निर्भरता। उसने दिया मुझे आत्म-विश्वास और उसी के कारण मै अपने अदर के वकील की खोज कर सका। मुझे इस बात का

दृढ विश्वास है कि वकालत के पेशे में मैंने भविष्य में जो भी सफलता पाई, उसकी नीव उस पागल बूढे की शुभ-कामनाओ और आशीषो पर दृढता तथा सचाई के साथ रखी गई थी। इस प्रकार बच्चीसिंह का मै बेहद ऋणी हू। आप कहेंगे यह सब तो महज भावुकता है। नकद क्या मिला ? मुकदमे का फैसला ही सबसे बडा इनाम था। फिर भी बच्चीसिंह जो दे सका, उसने मुझे दिया। मुकदमे को शुरू से आखिर तक की तैयारी के लिए बच्चीसिंह ने मुझे ३५ रुपये दिये थे और जब मातहत अदालत में वह जीत गया तो एक दिन बहुत-ही शर्माता हुआ वह मेरे पास आया और कृतज्ञता-भरे शब्दो के साथ उसने ३५ रुपये मुझे और दिये। अब आप ७० रुपये की इन दोनो रकमो के साथ मेरी इस कहानी को लिखने की खुशी को भी जोड लीजिये।

७ :

साहसी लड़की

मैं समझता हू कि किसी बच्चे के लिए इससे बढकर कोई दुर्घटना नही हो सकती कि वह अनाथ हो जाय। हममें से कइयो को दो विश्व-युद्धो के साथ-साथ गत २० बरसो के भीषण अनुभव भी हुए हैं और संसार के विभिन्न देशो में असंख्य यातनाओ और विस्तृत नर-संहार ने इस अनंत दुख में अभिवृद्धि ही की है। आज सभी जातियो के लाखो ऐसे बच्चे हैं, जो मानवी निर्दयता या गुनाहो के कारण पितृहीन या मातृहीन बन गये हैं। कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक कल्याण के संगठन इन असहाय बच्चो की देख-भाल के लिए अथक यत्नो में लगे हुए हैं और इसमें शक नही कि ये प्रशंसनीय भी हैं, लेकिन किसी बच्चे के जीवन में मा-बाप की जगह को कोई भी दूसरी वस्तु पूरा नहीं कर सकती।

इस बात का जवाब देना बहुधा कठिन हो जाता है कि उस अनाथ का जीवन अधिक कष्टकर होगा जिसके पास कुछ भी नही या उसका,

जो ग्राम बोलचाल मे या तो उत्तराधिकारी है या उत्तराधिकार-रहित है, जिस बच्चे की नाम को भी जायदाद नही होती, लेकिन जिसे दूसरो, यानी नातेदारो या गोद-लिये मा-बापो का या शिशु-गृहो मे विशुद्ध प्यार मिल जाता है, वह अक्सर भाग्यवान होता है। लेकिन दुर्भाग्य से जो बच्चा किसी धनी का उत्तराधिकारी बननेवाला होता है, वह ऐसे रिश्तेदारो का शिकार बनता है, जो अपने निजी मुद्दो से उसकी सपत्ति को हडपने की कोशिश करते है। वे ऊपरी तौर पर बच्चे के कल्याण की बडी चिता दिखाते है। वे उसके प्रति मा-बाप से भी ज्यादा प्यार दिखाते है, लेकिन इस सारे दिखावे की पृष्ठभूमि में एकमात्र नीच भावना यही होती है कि जैसे भी हो, बच्चे की सपत्ति को हडप लिया जाय। अदालतो में इस प्रकार के सरक्षको का मुझे निजी अनुभव है। इस तरह के बच्चो को देखभाल और सरक्षण के लिए राज्य ने गर्जियन एड वार्ड्स एक्ट (अभिरक्षित बालको के सरक्षण का कानून) बनाकर पर्याप्त प्रबंध कर रखा है, लेकिन, जैसाकि एक सुप्रसिद्ध लेखक ने कहा है, हिंदू-धारणा के अनुसार मृत्यु के बाद हिंदू के यहा उसे नरक-यातनाओ से बचाने के लिए पुत्र का होना आवश्यक है, जो दाह-क्रिया के समय अग्निदान तथा वार्षिक श्राद्ध आदि कर्म कर सके। इसके लिए वास्तविक पुत्र न होने पर किसीको गोद ले लिया जाता है, जिससे मरने के बाद मृतक की आत्मा को भटकना न पडे। फिर भी देखने में आता है कि गरीबो को इस तरह से आत्मा की रक्षा की जरूरत नही होती, बल्कि सपत्तिवाले आदमियो को ही मरने के बाद रक्षा की चिंता रहती है, तभी वे बच्चे गोद लेते है। इसी प्रकार अदालतो में भी यही देखने मे आता है कि जिस बच्चे की जायदाद होती है, उसके रिश्तेदार उसके सुख की बडी चिंता करते है तथा वे विद्वान न्यायाधीश भी, जो इस पैतृक अधिकार के बारे में अपना मत प्रकट करते है, अधिक चिंता करते है। सपत्तिहीन बच्चे के विषय मे कोई भी किसी न्यायाधीश को कष्ट नही देता। जो बच्चे जायदाद के उत्तराधिकारी बननेवाले होते है, उनके रिश्तेदार शहद की मक्खी के छत्ते की तरह उन्हें घेरे रहते है।

बच्चे के सुख की चिंता करनेवाले प्रतिस्पर्द्धी रिश्तेदारो में जो झगडे और सघर्ष होते हैं, वे अक्सर वडे ही दिलचस्प होते हैं। इनके अतिरिक्त जज लोग भी ऐसे पेशेवरो की सचाई के बारे में वडे सशयात्मक होते है। मुझे ऐसे एक मुकदमे की अभी तक याद है। ३५ या ४० वरस की बात है। जिला-न्यायाधीश की अदालतो में बच्चो के पिता के दूर के भाइयो के बीच यह मुकदमा चला था। एक तो उनमें बच्चे का फुफेरा भाई था और दूसरा मौसेरा भाई। जिला-न्यायाधीश ने फुफेरे भाई को बच्चे का सरक्षक नियत किया था और अपील में मौसेरे भाई की ओर से मैं पेश हुआ था। न्यायाधीश महोदय (मि० जस्टिस टडवाल) का रुख सर्वथा सहानुभूति-रहित था और उन्होने अत्यधिक रुखाई के साथ उल्लेख किया था कि आप तो व्यर्थ ही बीच में आ कूदे हैं और बच्चे के साथ आपका कोई रिश्ता नही है। इस टिप्पणी पर मुझे वडा आश्चर्य हुआ और मैंने सुझाव देते हुए निवेदन किया कि माननीय न्यायाधीश सभवत हिंदू-परिवार-प्रणाली को उपेक्षा कर रहे हैं। मैंने बताया कि रक्त-सबध के भाई को छोडकर, चार प्रकार के दूसरे भाई होते है—पिता के भाई के पुत्र, पिता की वहन के पुत्र, मा के भाई के पुत्र या मा की बहन के पुत्र, और हिंदू-परिवार में इन चारो प्रकार के भाइयो को निकटतम रिश्तेदार माना जाता है। इन्हें छोड किसी अन्य को बच्चे का हितैषी कैसे नियत किया जा सकता है? मेरा मुवक्किल ऐसे निकटतम सबधियो में से एक है। लेकिन न्यायाधीश टडवाल पर इस दलील का कोई असर न हुआ। सच बात तो यह थी कि वह कुछ भी सुनने को तैयार न थे। उन्होने कहा—"आप दोनो में बच्चे का कोई भी रिश्तेदार नही, आप लोग तो केवल गिद्ध हैं और महज अपने मतलब के लिए यहा आ जुटे हैं।" इस धारणा के बाद स्वाभाविकतया ही मेरे लिए और कुछ कह सकना मुश्किल था और अपील खारिज हो गई। इस पर भी मैं यह कहे बिना नही रहूगा कि न्यायाधीश टडवाल ने आवश्यकता से कुछ अधिक कठोरता जाहिर की थी, लेकिन अधिकाश मामलो मे वह स्थिति को काफी सही-रूप में समझ लिया करते थे। हर नाबालिग अदालत के सरक्षण का

अधिकारी माना जाता है। लेकिन बेचारा न्यायाधीश भी क्या कर सकता है? वह भी तो मानवी साधनों द्वारा ही काम करता है और ये साधन प्रायः अनावश्यक रूप में अपूर्ण होते हैं। ऐसे बीसियों मामलों का मुझे पता है, जिनमें नाबालिगों के अदालतों द्वारा नियत या कुदरती संरक्षकों ने अपने नाबालिग के हितों को अपने मतलब के आगे बुरी तरह कुचला है। लेकिन कुछ मामले ऐसे भी हुए हैं, जिनमें नाबालिग लडके और लडकियों दोनों ने मैदान में आकर स्थिति पर काबू पा लिया और अपने ही हाथों में उन्होंने अपनी सुरक्षा कर ली। ऐसे एक नाटकीय मामले में ऐसा नतीजा हासिल हुआ, जिसकी आशा तक नहीं हो सकती थी। वह घटना यह है।

दुर्भाग्य से ऐसी दो लडकियों, यानी बहनों, के माता-पिता की मृत्यु हो गई, जो एक बहुत बडी जायदाद की उत्तराधिकारिणी थीं। एक पुरातन-पंथी बिरादरी में उनका जन्म हुआ था और रहन-सहन का तरीका भी उनका वही पुराना था। उनके चाचा—पिता के भाई—उनके संरक्षक बने, और मुझे मान लेना चाहिए कि उन्होंने उनके लिए भरसक सब-कुछ किया भी। जब बडी बहन १५ बरस की हुई, तो उसके ब्याह के प्रश्न ने बहुत ही उग्र रूप धारण कर लिया। ऐसे रिश्ते के लिए उम्मीदवारों की बहुत बडी संख्या का होना स्वाभाविक ही था। उनमें अधिकांश बडी उम्र के थे और बडी उम्र के कारण कुदरती तौर पर विधुर थे। उनके पास जायदाद भी काफी थी। एक तो माने हुए वकील थे, दूसरे लखपती साहूकार थे। दोनों ही बिरादरी के अगुआ व्यक्ति थे और दुनियादारी के लिहाज से बिल्कुल उपयुक्त उम्मीदवार थे। चाचा ने उनमें से तीसी की उम्र के एक सज्जन को चुना और जिला-न्यायाधीश को मंजूरी के लिए दरखास्त पेश की। जिला-न्यायाधीश ने पितृभाव से इस मामले में बहुत दिल-चस्पी दिखाई, उम्मीदवारों की सारी सूची देखी, सब तरह की जांच-पडताल की और आखिर चाचा द्वारा चुने व्यक्ति की मंजूरी दे दी। जिन उम्मीदवारों के नाम रद्द कर दिये गये थे, वे, मैं समझता हूं, बेहद नाराज हो गये। यद्यपि

कानून की दृष्टि से इस मामले मे उनकी कोई आवाज़ नही थी, फिर भी उनमे से एक ने, अपने-आप अथवा नाबालिग के किसी रिश्तेदार की मार्फत, इलाहाबाद हाई कोर्ट में इस आधार पर अपील दायर कर दी कि जिला-न्यायाधीश की आज्ञा नाबालिग के हितो के विपरीत है और साथ ही प्रार्थना की कि लडकी के ब्याह के बारे में इसकी अपेक्षा उचित आज्ञा जारी की जाय।

जो हो, दूसरी ओर युवा कन्या के मन में कुछ और ही था। जहा तक मुझे याद है, वह सभवत प्राइमरी कक्षा तक पढ चुकी थी। उसने घर पर ही रामायण, महाभारत और भागवत आदि अनेक पुस्तकें पढी थी। वह श्रीकृष्ण और अर्जुन तथा अन्य अनेक प्राचीन महापुरुषो की विवाह-सबधी कहानिया जानती थी। दूर के भाईचारे में एक २२ वर्ष का नवयुवक था, जो ग्रेजुएट था और स्थानीय कालेज में पढता था। वह सब प्रकार से उपयुक्त था। लडकी ने उसके बारे में या तो कुछ सुन रखा था, या उसे कभी देखा होगा और उसके मन में उसके प्रति आकर्षण था। दुर्भाग्य की बात यह थी कि उसकी शक्ल-सूरत, व्यक्तित्व तथा ग्रेजुएट की उपाधि को छोड और कुछ भी उसके पक्ष में नही था। उसके पिता गाव के मुनीम थे और जो थोडी-बहुत जायदाद थी भी, वह उन बडे-बडे पूजीपतियो के मुकाबले में न होने के बराबर थी।

हाई कोर्ट में अपील पेश हो जाने और पेशी की तारीख लग जाने के बाद लडकी ने अपनी इच्छा से अथवा अन्य किसीके सुझाव पर सारा मामला अपने हाथो में ले लिया। उसने इलाहाबाद हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस के नाम अपने हाथ से हिंदी मे एक पत्र लिखा और उसमें अपनी सारी दुख-गाथा लिख दी। पत्र में उसने लिखा था कि "मैं बडी अभागिन हू। अपने माता-पिता के प्यार तथा सरक्षण से मैं वचित हू और इस समय इस विशाल दुनिया में सिवा आपके मेरा हित देखनेवाला और कोई नही है।" इतना लिखने के बाद उसने अपने विवाह-सबधी सारी चर्चा का उल्लेख किया था। उसने लिखा था—"जिला न्यायाधीश ने जिस व्यक्ति को चुना है, वह मुझे कतई पसद नही। जैसीकि मुझे सूचना मिली है, उसकी एक आख में फोला

है । इसके अलावा अन्य सव उम्मीदवार भी उम्र तथा अन्य दृष्टियो मे मेरे अयोग्य है ।" उसने अपने चुनाव का भी उल्लेख किया और अखीर में उसने प्रार्थना की कि यदि "चीफ जस्टिम महोदय स्वय व्यक्तिगत रूप मे अपील सुनेंगे तो मेरा उपकार होगा, क्योंकि केवल उन्ही पर मुझे भरोसा है, और अब तो मै उन्हे अपने पिता के समान समझती हू ।"

उन दिनो इलाहाबाद हाई कोट के स्थानापन्न चीफ जस्टिम सर सेमिल वाल्श थे । इस प्राथना-पत्र से उनका मन पसीज गया, लकिन उस पत्र की सचाई के वारे में उन्हे शक था । फलत उन्होंने इस पत्र की सचाई की सूचना के लिए उसे ज़िला मजिस्ट्रेट के पास भेज दिया । जिला मजिस्ट्रेट ने स्थानीय जाच के लिए उसे मातहत अफसर के पास भेजा । जव लडकी से पूछा गया तो उसने तत्परतापूवक स्वीकार किया कि वह उसीके हाथ का लिखा पत्र है, और साथ ही यह भी माना कि उसीने उसे चीफ जस्टिम के पास भेजा था । इस सूचना के वाद चीफ जस्टिस ने आज्ञा जारी की कि सबधित अपील उनके तथा एक अन्य यूरोपियन जज मि० जस्टिम राइक्स के सामने पेश की जाय ।

इस नौजवान साहसी लडकी के पास जब यह खबर पहुची तो उसने इस सिलसिले को आगे बढाया । उसने चीफ जस्टिस को एक और पत्र लिखा, जिसमें अपनी प्राथना की स्वीकृति के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा था कि मै इस पेशी के समय व्यक्तिगत रूप मे हाजिर होना चाहती हू । साथ ही उसने यह प्राथना भी की कि अदालत विभिन्न उम्मीदवारो की योग्यता का निणय कर सके, इसलिए मेरे चुनाव-सहित उन सवको भी पेशी के दिन अदालत मे हाजिर होने का आदेश दिया जाय । इस आधार पर, और चूकि यह एकदम युक्तिसगत प्राथना थी, इसलिए सर सेसिल वाल्श ने इसे मजूर करके तदनुसार आज्ञा जारी कर दी । मै कह सकता हू कि जिस ढग से यह मामला उनके सामने पेश किया गया, उससे वह बहुत ही प्रभावित हुए थे । प्रस्तुत प्रश्न एक युवा कन्या का था, जो अपने विषय में निजी राय व्यक्त करने की योग्यता रखती थी, और

उसके साथ ही उसके विवाह का प्रश्न था, जो उसके लिए जीवन में सर्वोच्च महत्व रखता था। इससे अधिक स्वाभाविक हो भी क्या सकता था कि वह अपने निर्णय के विषय में अपनी राय जाहिर करना चाहती थी ? जब पेशी का दिन आया तो अदालत का कमरा खचाखच भरा हुआ था। हाई कोर्ट के इतिहास में इससे पूर्व ऐसी घटना नही घटी थी। अदालत का कमरा ऐसा लग रहा था, जैसे थियेटर हाल हो, जहा मानवता का एक महान नाटक खेला जानेवाला था। डाक्टर तेजबहादुर सप्रू चुने गये वर की ओर से पेश हुए थे। वह तो हाजिर थे, लेकिन उनका मुवक्किल और उसके अन्य साथी हाजिर नही थे। उनकी गैर-हाजरी से साफ जाहिर हो गया था कि दाल में कुछ काला है। सब-के-सब सयानी उम्र के तो थे ही, इसलिए सभव है उन्होने इस आधुनिक 'स्वयवर' के अवसर पर वर-वधू पक्ष की रजामदी को ही इस साहस के कार्य का उचित अग मान लिया हो। जो हाजिर हुआ, वह था वही नवयुवक, जो चुस्त और भडकीली टाई लगाकर दूल्हा बना हुआ था और सचमुच वह आकर्षक भी दीख रहा था।

जैसे ही मुकदमे की पेशी हुई, सर सेसिल वाल्श ने मालूम किया कि क्या वह लडकी अदालत में हाजिर है ? वह मौजूद थी। वह वहा समय पर पहुच गई थी और एक पास के कमरे में बैठी हुई थी। सर सेसिल ने आज्ञा दी कि उसे अदालत में लाया जाय। वह अदालत के कमरे में आई। सादी किंतु बहुत साफ-सुथरी उसकी पोशाक थी। बडे शात और मजबूत कदमो तथा सयत भाव के साथ वह हाजिर हुई। जजो ने बेटी के समान उसका स्वागत किया। सर सेसिल ने उसे मच पर बुला लिया और अपने पास एक कुर्सी पर बैठा लिया। उन्होने जस्टिस राइव्स की सहायता से, जो हिंदुस्तानी भली प्रकार जानते थे, कई मिनट तक उससे धीरे-धीरे बात-चीत की। उसके बाद वह डा० सप्रू की ओर मुडे और कहा—"सर तेज, हमने इस लडकी की इच्छाओ की जानकारी हासिल कर ली है ? अब आप कहिये, आपको क्या कहना है और आपका मुवक्किल कहा है ?" दर्शक के तौर पर मैं भी अदालत में मौजूद था और मैंने देखा कि सर सप्रू

बडे ही परेशान से नजर आ रहे थे । उनकी दशा वस्तुत बडी ही दयनीय थी । उनका मुवक्किल गैर-हाजिर था और सचमुच उन्हे कुछ भी नही कहना था, उन्होंने कहा भी यही । कोई दूसरा पूरमा भी मैदान मे हाजिर नही था । जल्दी ही मुकदमा खत्म हो गया । सर सेमिल वाल्श ने जिला मजिस्ट्रेट के फैसले को रद्द कर दिया और आज्ञा जारी की कि इस नाबालिग लडकी का विवाह इस भाग्यवान युवक के साथ किया जाय । साथ ही उन्होंने सरक्षक को आदेश दिया कि जितनी जल्दी हो सके, विवाह कर दिया जाय । जब सारा फैसला लिखा दिया गया, तो युवक कुछ कहने को खडा हुआ । जजो की अनुमति पाकर वह बोला—"इस मामले के कारण मेरी बिरादरी मे बडा भारी विवाद उत्पन्न हो गया है और मुझे डर है कि आपके फैसले और हमारे विवाह के बाद हमें कही बडे भारी कष्टो का सामना न करना पडे । इससे भी अधिक यह कि बिरादरी के कुछ लोग हमे बुरी तरह सतायगे ।" जैसे ही हर सेसिल ने यह सुना, वह फैसला लिखने-वाले को ओर मुडे और आगे यह और लिखाया—"हम जिला मजिस्ट्रेट को आदेश करते है कि विवाह के बाद इस नव-दपति की रक्षा के लिए छ मास तक इनके निवास-स्थान पर सशस्त्र पहरा रखा जाय । साथ ही जिला मजिस्ट्रेट को यह आदेश भी किया जाता है कि वह सार्वजनिक रूप मे सबको जता दे कि यदि इस नव-दपति को किसी भी रूप मे सताया जायगा, तो हाई कोर्ट ऐसे आचरण पर कडी कार्यवाही करेगी ।" नवयुवक खुशी के मारे फूला नही समाया । वह अबोध बालिका शात-भाव से स्थिर बैठी थी, जैसे विश्व की सपूर्ण सौम्यता को कलाकार ने चित्रित कर दिया हो । जल्दी ही यह शादी हो गई और कहना न होगा कि यह शादी सब दृष्टियो से सुखद एव सपन्न थी ।

लेकिन इस कथा का उत्तरार्द्ध भी सुन लीजिये । १५ साल से ज्यादा बीत चुके थे और १६४१ के वर्ष में व्यक्तिगत सत्याग्रह के आदोलन के सिलसिले मे मुझे जेल जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इससे अधिक मेरा दूसरा सौभाग्य यह था कि मुझे नैनी सैंट्रल जेल मे उसी बैरक मे रखा गया,

जिसमें मौलाना अवुलकलाम आजाद थे। उन दिनो सैकडो काग्रेसी सत्याग्रही उस जेल में थे। सारा वातावरण भाई-चारे का था और वस्तुत हम सव एक सुखद परिवार के-से लगते थे। मौलानासाहव उन दिनों भारतीय राष्ट्रीय महासभा के प्रधान थे। कुदरती तौर पर सव काग्रेसी कैदियो के लिए उनकी वैरक मनोरजन तथा सूचनाओ आदि की दृष्टि से वडे आकर्पण का केंद्र वनी हुई थी। वरसात के दिन थे और दोपहर वाद का ममय वडा सुहावना लग रहा था। ठडी और धीमी-धीमी हवा चल रही थी और मौलानासाहव दूसरी वैरको के वहुत-से दोस्तो में घिरे वैठे थे। उमी वैरक का वासी होने के नाते मै भी वही था। पता नही कैसे कहानियो का सिलसिला शुरू हो गया। मेरी भी वारी आई तो मैंने उक्त कहानी सुना दी।

इतना मै ज़रूर कहूगा कि मैंने सुनाते-सुनाते उसमें थोडा नमक-मिर्च भी मिला दिया था, लेकिन नामो का उल्लेख नही किया था। सच तो यह है कि मै जानता भी किमीको नही था। कहानी सुनकर सव लोग वहुत खुश हुए और खूव हसी और मज़ाक हुआ। सुननेवालो में मेरे एक निजी मित्र थे, जो अपने ज़िले के वहुत सम्मानित नेता थे। वह भी चुपचाप इस कहानी को सुनते रहे, लेकिन मैंने महमूस किया कि वह इस हसी और मज़ाक में तत्परता के साथ हिस्सा नही ले रहे थे। जव सारी कथा पूरी हो चुकी तो उसके थोडी देर वाद मेरे वह मित्र वडे गभीर स्वर में मौलानासाहव मे वोले—"मौलानासाहव, आप यकीन कीजिये, मै परमात्मा की कसम खाकर कहता हू कि मैंने इम शादी के लिए कभी कोशिश नही की थी। जिला जज ने ही मुझे इम लडकी के साथ विवाह करने के लिए लाचार किया था और ज़िला जज और लडकी के चाचा के जोर देने पर ही मैंने उमके माथ शादी की रजामदी दी थी।" उनके इस कथन से जो गहरी चुप्पी पैदा हुई, उसका अनुमान पाठक स्वय कर मकते है और इम अप्रत्याशित घटना पर मुझे तो जैमे काठ ही मार गया। मेरी जिह्वा पर जैसे ताला पड गया! अपनी इस अक्षम्य मूर्खता पर मै वेहद पछताया। मुझे इम

बात का तनिक भी खयाल न था कि मैं ऐसे श्रोताओ मे वह कहानी कह रहा हू, जिनमे इस पुराने नाटक का एक मुख्य अभिनेता मौजूद है।

: ८ :

कुछ पुरानी स्मृतियां

अपने प्रारभिक दिनो में मुवक्किलो की दृष्टि मे मै बडा भाग्यवान था। कानपुर मे मैंने कानूनी पेशे का काय शुरु किया था। वहा के बारे मे मैं सवथा अपरिचित था, मेरा कोई मित्र न था। जिन प० पृथ्वीनाथ ने मुझे अपने आश्रय मे लिया था, वह मेरे वकालत शुरू करने के १२ मास के अदर ही शारीरिक रूप मे अयोग्य हो गये और चद महीनो मे स्वग सिधार गये। मै कानपुर-जैसे बडे औद्योगिक नगर मे सघर्प के लिए अकेला रह गया। सौभाग्य से मै एक विशप व्यक्ति का स्नेहभाजन बन गया और उन्हे मै जीवन-भर विस्मरण नही कर सकता। वह एक हसमख वयोवृद्ध थे। उनमे बेहद उत्साह था और जिदगी, मनुष्यो तथा शारीरिक मामलो के विपय में उनका असीम आशावादी दृष्टिकोण था। वह एक ऐसे आदमी थे, जो कभी हतोत्साह या निराश नही हुए। उनका नाम था राम-चद्र। उनका अपना काफी वडा कारोबार था और व्यापारी-क्षेत्र मे उनका कुछ प्रभाव भी था। मै नही कह सकता कि क्यो या कैसे वह आत्मीयता के साथ मुझमे रुचि रखने लगे।

मैं समझता हू कि उन्होने यह जानकर कि मेरे थोडे ही मित्र है, आप-से-आप मेरी सहायता करने का बीडा उठा लिया। वह अपने ही ढग के श्रद्धावान हिंदू थे और प्रतिदिन प्रात काल गगास्नान करने जाया करते थे। लौटते समय वह कुछ मिनटो के लिए अवश्य ही मेरे यहा आते और थोडी देर बैठकर जाते। मेरा खयाल है कि उन्होने अपनी मित्र-मडली मे मेरी प्रशसा भी की थी और कई बार वह अपने कुछ ऐसे मित्रो को ले आते थे, जिनका कोई-न-कोई अदालती काम होता था। उनका

अपना भी काफी अदालती काम हुआ करता था। वह सटोरिये थे और फलस्वरूप जन्मजात मुकदमेबाज थे। मेरा निजी खयाल है कि अपने व्यवहार में वह अत्यावश्यक रूप में ईमानदार थे, लेकिन वह इस सिद्धात में विश्वास नही करते थे कि सही लक्ष्य तक पहुचने के लिए सही साधनो का ही अनुसरण करना चाहिए। बल्कि उनकी धारणा इसके विपरीत थी। उनकी निजी आचार-नीति थी। यदि उनका मुकदमा सच्चा था तो वह समझते थे कि सभी क्रियात्मक उपायो से उसे जीतना न्यायपूर्ण है। इसलिए बही-खातो में एक या दो अतिरिक्त इदराज कर देने या मीयाद की झझट से पार पाने के लिए रसीद बना लेने को वह बहुत दोष नही मानते थे। जो वह वस्तुत करते थे, उसे उन्होने कभी नही माना था, लेकिन मेरी निजी शकाए होती थीं। अपनी नौजवानी की अक्ल से मैंने कभी-कभी उनकी भर्त्सना भी की थी, लेकिन रामचद्र मेरी बातो पर ध्यान ही नही देते थे। वह कहा करते थे—"पडितजी, इसमें हर्ज ही क्या है? इस व्यक्ति को मेरा रुपया देना है। उसे देना चाहिए, लेकिन वह देता नही, और आपके कहने का क्या यह मतलब है कि अपने बही-खातो में थोडी हेर-फेर से मै चद कानूनी कठिनाइयो मे भी पार न पा लू? ऐसा करने मे कोई बुराई नही है।" मैं रामचद्र से प्यार करने लगा था। उत्साह और आशा से वह कितने परिपूर्ण थे और मेरे हित की उन्हें किस कदर चिता रहती थी! एक मामले की मुझे खासतौर पर याद है। उन्होने एक काफी ठोस दावा मुझे सौंपा था। अदालत खफीफा में मै उसे हार गया। जैसे ही फैसला सुनाया गया, मेरा चेहरा फक रह गया और मै सचमुच ही बेहद निराश हुआ। हम अदालत से बाहर आये। एक असाधारण अवस्था थी। वकीलसाहब तो सुध-बुध खोये हुए और बुरी तरह निराश थे और उनका मुवक्किल हस रहा था और मजाक कर रहा था। उसमें दु ख का लेश भी नही था। मेरी इतनी गहरी हैरानी को देखकर उन्होने मुझे उत्साहित किया और मेरी पीठ थपथपाते हुए बोले—"पडितजी, इसके बारे में आपको दुख नही करना चाहिए। मुकदमेबाजी के ये तो उतार-चढाव

हैं। फिर यही तो इसका अंत नही, हम इसकी अपील करेंगे, वहा हम जीतेंगे। आप चिंता न कीजिये।" जब मैं यह पंक्तियां लिख रहा हू तो ४० साल पहले की वह तस्वीर हू-ब-हू मेरी आंखों के सामने आ गई है। हमने अपील दायर की। मैंने उनसे कहा कि वह मेरे साथ किसी बडे वकील को भी कर दे, पर वह हरगिज तैयार न हुए, बोले—'नही-नही, आप खुद ही कीजिये।" हमने जिला जज की पेशी में अपना बदला ले लिया।

यह ज़िला जज भी अपना खास व्यक्तित्व रखते थे। वह अंगरेज थे और उनका नाम आस्टन केंडल था। बडे विचित्र ढग से मैं शुरू-शुरू में उनकी निगाह मे आया था। अपनी वकालत के बारह महीनो के भीतर ही मैंने उनकी अदालत में एक अपील दायर की थी लेकिन अपने वाद-सार को बिल्कुल गलत समझते हुए मैंने आधाररहित कल्पना पर अपील का मसविदा तैयार कर दिया। सात ही दिन के अंदर-अंदर अपील लग गई, और जब मैंने मिसल देखी तो पता लगा कि मैंने सारा मामला ही गडबडा दिया है। एक तरह से यह अच्छा ही हुआ लेकिन अपील का मसविदा तो सर्वथा गलत था, वह संबंधित मुकदमे के स्वीकृत तथ्यों के सर्वथा विपरीत था। मैं अपील की बहस के लिए खडा हुआ और मैंने मुकदमे को सही दशा पर डाल दिया। श्री केंडल को सारी बहस सुनकर आश्चर्य हुआ और तब अपने सामने एक नौजवान नौसिखिये को देखकर वह धीरे से, किंतु हंसती हुई आंखों से बोले—'लेकिन अपील के मसविदे के बारे में आपको क्या कहना है? उसपर आप अपने तर्क को क्योंकर न्यायंग ठहराते हैं? आप अपील के किस आधार पर ज़ोर दे रहे हैं?' सौभाग्य से मैंने तत्काल कहा—'जनाब नं० ६ के आधार पर"। नं० ६ में लिखा था—'ऊपर लिखित और साथ-ही-साथ अन्य आधारों पर अपील को मंजूर किया जाय'। इस तात्कालिक उत्तर को उन्होंने पसद किया। वह मुस्कराये, मुझे बहस जारी रखने की मंजूरी दी और अपील का फैसला मेरे हक में किया। लेकिन उनका फैसला वस्तुत उल्लेखयोग्य था। उसकी शुरू की पंक्तियां आज ४२ बरस बाद भी मुझे याद हैं। उन्होंने इस ढग से शुरू किया

था—"इस अपील में अपील के मसविदा से ही उत्पन्न होनेवाली कठिनाई है, लेकिन मै एकदम नौजवान वकील के इस स्पष्टीकरण को स्वीकार करता हू कि यह नितात भ्रमपूर्ण तथ्यो के आधार पर तैयार की गई थी।" इत्यादि। मैं अपील में जीता ही नही, बल्कि मैं उनका कृपा-पात्र भी बन गया, और वह जज पाच वर्षों के लिए, जबतक कानपुर में रहे, मेरे धर्म-पिता बन गये। उनकी अदालत मे मुझे अपनापन-सा लगता था और वह भी मेरे प्रति अपने व्यवहार के में अत्यधिक सौम्य दिखाई देते थे।

श्री कैंडल की इच्छा थी कि मै प्रातीय न्याय-विभाग में नौकरी कर लू और उन्होने मुझे सलाह देते हुए कहा था कि आपकी नियुक्ति जल्दी-से-जल्दी हो जाय, इसमें मै सहायता करूगा। लेकिन पिताजी ने इस सुझाव को नामजूर कर दिया। मैंने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया और तदनुसार श्री कैंडल को भी सूचना दे दी।

श्री कैंडल के साथ बातचीत और व्यवहार के ढग को मैं जान गया था और अपने मामले को हमेशा ही ऐसे तरीके से पेश करने की चेष्टा करता था कि उन्हें वह पसद हो। उनमें एक सामान्य-सी दुर्बलता थी। वह किसी भी वकील के उस समय तक बहस शुरू करने को पसद नही करते थे, जबतक वह वस्तुत उसकी ओर ध्यान न दे लें और इन शब्दो से शुरुआत न कर दें—"अच्छा, तो अब आप कहिये।" मै यह जानता था और फलत हमेशा ही चुपचाप बैठा रहता था। मैं अपने ओठो को तबतक नही खोलता था, जबतक वह "अच्छा, तो आप कहिये" शब्दो को कहकर मेरी ओर मुखातिब नही हो जाते थे। अन्य जो वकील इस खास आतरिक भेद को नही जानते थे, वह झपट पडते थे और बहस कर शुरू कर देते थे। इसमे हमेशा ही उनका मामला उनके विपरीत जाता था।

इस प्रकार जब पेशकार ने रामचद्र की अपील पेश की, तो मै हमेशा की तरह श्री कैंडल के सामने चुपचाप बैठा रहा। प्रतिवादी की ओर से डा० सुलेमान इलाहाबाद मे आये थे। डा० सुलेमान समझ ही नही सके कि क्या होने जा रहा है। मुकदमा पेश हो चुका था और वादी का वकील सर्वथा

बेफिक्र बैठा हुआ था और कोई भी कुछ बोल नही रहा था। थोडी देर बाद श्री कैंडल ने मेरी ओर ध्यान दिया और कहा––"मै समझता हू कि जज ने अपने फैसले मे सब सबंधित न्याय-विषयक निर्णयो का समावेश कर दिया है।" मैंने कहा––"जी जनाब, केवल एक ही और है, जो अभी हाल ही मैं प्राप्त हुआ है।" वह बोले––"वह कौनसा सदर्भ है ?" इस पर मैंने उन्हें वह निर्णय-पत्र दे दिया। इससे अधिक मैंने कुछ नही कहा और किसी प्रकार की बहस भी मैंने शुरू नही की, क्योंकि उन्होने "अच्छा तो कहिये" शब्दो द्वारा मुझे सकेत नही दिया था। इसके बाद वह डा० सुलेमान की ओर मुखातिब हुए और बोले––"इस मुकदमे में एक कानूनी प्रश्न है। क्या यह ज्यादा सुविधाजनक नही होगा कि आप प्रतिवादी की ओर से बहस शुरू करे और उसके बाद प० कैलाशनाथ उसका जवाब दें। इससे समय की बचत हो जायगी।" मै तत्काल सकेत समझ गया और मन-ही-मन कहा कि मैंने मुकदमा जीत लिया। फलस्वरूप डा० सुलेमान ने, जो श्री कैंडल की मानसिक कार्यकारिता से अपरिचित थे, अपनी बहस शुरू की और दो घटे बोले। जज ने जाहिरा तौर पर बहुत ध्यान देकर सब कुछ सुना और मेरा यकीन है कि उन्होने सब तरह के सदर्भ दर्ज भी कर लिये और जब डा० सुलेमान कह चुके तो वह मेरी ओर मुखातिब हुए और बोले––"मै आपको सोमवार को बताऊगा कि मै आपकी बहस सुनना चाहता हू या नही।" मैंने कहा––"बहुत अच्छा, जनाब!" तत्पश्चात हम बाहर आ गये और मैंने रामचद्र से कहा कि मुकदमा तो हमने जीत लिया। सोमवार को अपील की मजूरी देते हुए उन्होने फैसला सुना दिया। इस तरीके से मेरे आशावादी मित्र रामचद्र सही साबित हुए। रामचद्र ६० बरस की उम्र तक जीते रहे। वह हमेशा पहले के समान उत्साह, पितृत्व-भाव और मेरे कल्याण की चिंता के साथ इलाहाबाद आया करते थे।

एक और मित्र थे, जिनका चरित्र भी निश्चित ही निराला था। वह थे एक ठाकुर, जिनका गठा हुआ और दोहरा बदन था, सूरत से वह बेहद काले थे, परतु थे बडे खुश-मिजाज। बडे ही अजीब

ढग से मै उनके सपर्क में आया। एक दिन मैं कानपुर-कचहरी की लाइब्रेरी में बैठा था। यह साहब आये और बोले—"मैं एक विचाराधीन मुकदमे में प्रतिवादी हू। क्या आप उसमें मेरी ओर से पैरवी करेंगे ?" मैंने उनके दूसरे वकीलो के बारे में पूछा और उन्होने बहुत बडे-बडे वकीलो के नाम लिये। मुझे इस बात से आश्चर्य हुआ कि वह एकाएक ऐसे वकील के पास क्यो आया है, जिसे वकालत शुरू किये अभी केवल दो बरस हुए हैं। मैंने उससे पूछा कि यह विचाराधीन मुकदमा किसकी अदालत में है ? उसने बताया कि सहायक जज की अदालत में। असल बात यह थी कि यह जज मेरे पिता के दूर के नाते में चचाज़ाद भाई थे। इन जज महोदय से अलग रहने मे मैंने विशेष सावधानी बरती थी, क्योंकि मुझे शुरू से ही चेतावनी दे दी गई थी कि इन जरियो से वकालत चलाने का अर्थ निश्चित रूप से असफलता होगा। लेकिन यह ठाकुर बहुत ही चालाक आदमी जान पडता था और मेरा खयाल है कि उसने सब तरह की जाच-पडताल कर ली थी। सभवत उसे यह पता लग गया था कि जजसाहब के साथ या तो मेरी रिश्तेदारी है या जज और मैं कम-से-कम एक ही बिरादरी के हैं। जो हो, मेरी आत्मा तो बिल्कुल साफ थी। फलत मैंने पूछा कि कितने का यह मुकदमा है। उसने बताया—"१२०० रुपये का।" मैंने अपनी नियत फीस ३० रुपये मागी। उसने तत्काल ३० रुपये मेरे हाथ पर रख दिये और मुकदमे से सबधित सब कागज मुझे सौंप दिये।

यह मुकदमा एक कर्ज देनेवाले ने जमानत की वसूली के लिए किया था। बधक बहुत पुरानी थी और बरसो पहले कर्जदार ने ५०८ रुपये का भुगतान किया था। वादी ने इस भुगतान को जमा दिखाई थी और बकाया की माग की थी। मेरे मुवक्किल का कहना था कि यह भुगतान चुकता रकम के तौर पर हुआ था और बधक पर कोई रकम बाकी नही है। इस मुकदमे का विचारणीय प्रश्न केवल यही था। ५०८ रुपये की बाकायदा रसीद मौजूद थी और इसके विषय में प्रश्न यह उत्पन्न हो गया कि यह रसीद चुकता भुगतना की है या आशिक भुगतान

को। दुर्भाग्यवश इसकी भाषा वडी अटपटी थी और उसके दोनो ही अर्थ लिये जा सकते थे। चुकता भुगतान के समथन मे और भी अधिकृत प्रमाण पेश किये गये थे। जब मुकदमे की पेशी का दिन आया, तो हमारी तरफ के सभी वडे वकील गैर-हाजिर थे। मुझे छानवीन करने पर पता लगा कि उन्होने मुवक्किल से कह दिया था कि जज वेहद खिलाफ है और इसीलिए मोहनसिंह नाम के इस व्यक्ति ने जज को अपने पक्ष मे करने के लिए मुझे वकील करने की तजवीज सोची थी। खैर, मुझे बहस करनी थी और जो कुछ मुझसे वन पडा, मैंने कहा। जज ने मेरे खिलाफ फैसला दिया और उन्होने अपने फैसले मे प्रतिवादी के आचरण पर काफी कडी टिप्पणी की। उन्होने प्रतिवादी की किताबो को सरासर जाली बताया और इस तरह यह मामला ठप्प होगया। वाद मे जब मोहनसिंह मेरे पास आया और उसने अपील दायर करने को कहा, तो मुझे वडा आश्चय हुआ। मैंने कहा कि यह वडी विकट समस्या है। फैसला वहुत ही सख्त लिखा गया है और जिला जज द्वारा न केवल इस अपील को खारिज कर देने की सभावना है, प्रत्युत यह भी हो सकता है कि वह झूठा और जाली सवूत पेश करने के अपराध मे फौजदारी का आदेश भी कर दें। ऐसी दशा मे वेहतर यही है कि आप किन्ही दूसरे वडे वकीलो के पास जाय। उसने कहा––"पडितजी, मैं अमुक-अमुक के पास गया था। हर कोई कहता है कि मुकदमे मे जान नही है, लेकिन मैंने मुकदमा लडने का इरादा कर लिया है और आप ही को इसे लडना है। आप अपील दायर कर दे।" यह अपील मेरे धर्म-पिता श्री कैंडल, जिला जज की अदालत मे दायर की जानी थी। तदनुसार मैंने अपील कर दी और जब उसकी मजूरी का दिन आया, तो मैंने श्री कैंडल के तरीको को जानते हुए वस यही कहा कि फैसला अनावश्यक रूप से एक-पक्षीय है। ५०८ रुपये की फैसलाशुदा रकम के लिए पक्की रसीद मौजूद है और "क्या आप कल्पना कर सकते है कि ५०८ रुपये की जैसी पक्की रसीद आशिक भुगतान मे दी जा सकती है?" श्री कैंडल पर इसका असर हुआ और उन्होने अपील की आज्ञा दे दी और दूसरे पक्ष को नोटिस

जारी करने का आदेश दिया। आखिरी पेशी की तारीख के लिए महीनों वाद वारी आई। इस वीच मोहनसिंह कानपुर के देहाती इलाको में मेरा अवैतनिक प्रचारक वन गया था।

एक दिन जव मैं अपने दफ्तर में वैठा था, तो मोहनसिंह वडी डरावनी मूछोवाले रईसी ठाठ-वाट के एक राजपूत के साथ कमरे में दाखिल हुआ। वह हरदम मूछो को वल देता रहता था और उसका वडा आकर्षक व्यक्तित्व था। मोहनसिंह ने उसका परिचय देते हुए कहा—"ये हैं ठाकुर उमेदसिंह, जो ग्वालियर रियासत के मुखिया राजपूत परिवारो में से एक के सदस्य हैं। इन्हें स्नेहभाव से हर कोई चिमनाजी कहता है।" फिर उसने कहा—"पडितजी, चिमनाजी वडे भारी सकट में हैं।" मैंने सहानूभूति दिखाई और पूछा कि मामला क्या है ? इसपर मोहनसिंह ने सारी कहानी सुनानी शुरू करदी। इस दौरान में चिमनाजी लगातार मूछो पर ताव देता रहा और समर्थन में कभी-कभी सिर हिला देता था। मोहनसिंह ने वताया कि चिमनाजी की दादी के कारण ही मारा कष्ट है। मुझे इससे वडा आश्चर्य हुआ। मोहनसिंह ने आगे वताया—"पडितजी, वह तो मरना ही नही चाहती, वह मरेगी भी नही। क्या आप इस वेइन्साफी का अनुमान कर सकते हैं ?" इस पहेली को सुनकर मुझे और भी हैरानी हुई। वह आगे वोला—"वह चिमनाजी की सौतेली दादी है। ४० साल हुए, उसका पति मर गया था। वह वुढिया ईर्ष्यावश चिमनाजी और उसके भाइयो की इतनी वडी जायदाद पर कब्जा किये वैठी है और मरने का नाम तक नही लेती। इसके अलावा वह इन सवको लगातार परेशान करती है और ये लोग उस जायदाद की ओर ललचाई आखो से देखते रह जाते हैं, लेकिन उसे पा नही सकते।" जिस दुखद ढग से उसने यह सारी कहानी कही थी, उसका वर्णन नही किया जा सकता। उसके वाद उसने कहा—"वरसो से वह इस जायदाद का नाश करने में लगी हुई है और वचारे चिमनाजी ने इस वरवादी को रोकने के लिए कई वार मुकदमेवाजी की है, लेकिन मतलव हल नही हुआ। हाई कोर्ट तक भी ये मुकदमे जा चुके हैं। हमने प० सुदरलाल और प० मोतीलाल को

वकील किया था, लेकिन किस्मत ने हमारा साथ नही दिया और हमेशा ही हम नाकाम होते रहे । बुढिया जायदाद पर साप बनी बैठी है । आप नही जानते कि अब उसने क्या किया है ? वह एक लडका गाव मे ले आई है और उसे अपने पति के पुत्र के रूप मे गोद ले लिया है । उसने मशहूर कर रखा है कि ४० साल हुए, उसके पति ने मरने से पहले उसे इस लडके को गोद लेने की जबानी इजाजत दी थी। एकदम सफेद झूठ है, यह पडितजी । लेकिन उसने कर दिखाया है । अब तो यह एक घातक प्रहार है और हम दत्तक-पुत्र की इस मार से अपनी रक्षा करने के लिए आपके पास आये है । उसकी सारी कहानी सफेद झूठ है ।"

जो हो, मामला तैयार करने की कुछ गुजायश तो मिली । लेकिन यह जायदाद दो लाख रुपये की थी । मैंने कहा कि मै अकेला ही इस सारी जिम्मेदारी को नही ले सकता। मोहनसिह बोला—"आप जिसे अपनी मर्जी से चाहे, साथ ले ले । हम तो यह मुकदमा आप ही को सौपते है ।" इसपर जबानी वसीयत की कहानी को झुठलाते हुए मैंने अभियोग लिखा और गोद लेने को कानून के विरुद्ध करार देने की माग की ।

प्रतिवादी ने बाद मे अपना लिखित बयान दाखिल किया । यह बुढिया रानी कहलाती थी और उसने अपनी सफाई पेश की थी । उसने जबानी वसीयत पर जोर दिया और गोद लेने को बिल्कुल सही बतलाया । मुकदमे के विचारणीय मुद्दे निकाल गये और उनपर विचार के लिए पेशी का इतजार किया जाने लगा ।

एक दिन रात के दस बजे के करीब मैंने किसीको अपने घर के किवाड पर दस्तक देते हुए सुना । रात को मै खुद ही घर की चौकसी करता था । मेरा नौकर दिन भर का काम पूरा करके जा चुका था । फलत मैंने किवाडे खोली और एक आदमी भीतर आया । वह बोला—"मुझे चिमनाजी ने भेजा है ।" मैंने पूछा—"किसलिए ? क्या हुआ ?" उसने कहा—"पडितजी, नानी मर गई । चिमनाजी ने आज सुबह शव को गगाजी पर ले जाते समय मुझे आपके पास यह जानने के लिए भेजा है कि अब क्या किया जाय ?"

"उस दत्तक-पुत्र का क्या हुआ ?" मैंने पूछा ।

"वह गाव में ही है ।" उसने कहा ।

"क्या गाववाले चिमनाजी के हक में है ?"

"जी हा, सभी उनके साथ है ।" उसने जवाव दिया ।

"तो फिर उस पुत्र को गाव से खदेड वाहर करो । अगर ज़ोर-फोर की ज़रूरत पडे, तो उसमें भी हर्ज नही । उसके वाद सारी जायदाद पर कब्जा कर लो ।"

"वहुत अच्छा !" कहकर उल्टे पाव वह रवाना हो गया । वाद में पता लगा कि मेरी सलाह का अक्षरश पालन किया गया । वेचारे दत्तक-पुत्र को मार डालने की धमकिया देकर भगा दिया गया और गाव के लोगो की मदद और अनुमति से चिमनाजी ने सातो वडे-वडे गावो-समेत सारी जायदाद पर अधिकार कर लिया । इसके वाद हमने रजिस्टरो में सुधार करने की तहसील में दरखास्त दी । चिमानाजी ने कहा कि आपको तहसीलदार की अदालत में भी चलना होगा । मैंने कहा—"वहा मेरे जाने की कोई जरूरत नही है । इस कार्रवाई में कोई मुखालिफ तो है नही और जो होना चाहिए, उसका आदेश हो जायगा ।" लेकिन उसने जवाव दिया—"पडितजी, आप कह क्या रहे हैं ? आप क्या समझते हैं कि हम आपको यो ही छोड देंगे ? आप नही जानते कि क्या हुआ है ? पचास मे भी ज्यादा वरसो से हम इस जायदाद के लिए वुरी तरह तरस रहे थे । भगवान ही जानता है कि हमने इसके लिए कितने दुख उठाये हैं और कितना रुपया मुकदमेवाजी में वरवाद किया है । चाहे जिस अदालत में कोई मुकदमा हो, भले ही उसमें मुकावला हो या नही, आप उसमें पेश होगे । आपके विना हम इच भर भी इधर-से-उधर नही होगे ।" हुआ भी ऐसा ही । मुझे याद नही कि वह मुझे कितने ही ऐसे मुकदमो में ले गया, जिनमे मेरी जरूरत भी नही थी और हमेशा तारीफो के पुल वाधा करता था । एक वार एक गाव में तहसीलदार की पेशी में मुझे हाज़िर किया गया । यह इकतरफा मामला था और उसमें केवल नियमित कार्रवाई

ही को जानी थी। जव पेशी खत्म हुई तो उसने हाथी पर मेरा जलूस निकालकर मुझे अपने गाव तक ले जाने का अनुरोध किया। वहा मेरा शानदार स्वागत किया गया और मै परिवार के सम्मानित अतिथि के रूप मे रात भर वहा रहा। उस दिनो तहसीलदार लोग दौरे के दौरान मे इस तरह कार्रवाइयो को सुना करते थे। मुझे याद है कि एक मामले मे हमें पेडो तले घटो इतजार करना पडा था और आखिर रात के नो वजे एक खेमे में मुकदमे की पेशी हुई थी।

उसके एक दूसरे काफी वड मुकदमे मे मुझे एक सवक भी हासिल हुआ था। उसमे मुझे यह शिक्षा मिली थी कि प्राचीन भावनाए और विश्वास किस प्रकार मानवीय क्रियाओ को प्रभावित करते है। चिमनाजी की नानी ने एक पडौसी ज़मीदार की प्रार्थना पर उसे दस एकड भूमि वाग लगाने के लिए भेंट दे दी थी। यह भूमि विल्कुल वेकार थी। भेंट लेनेवाला अच्छा शौकिया आदमी था। उसने देश-भर मे कई तरह के फलो के पेड मगाकर जमा किये। वहुत-सा पैसा खर्च किया और जव वुढिया मरी, तो उस ज़मीन पर एक भरा-पूरा फलो का वगीचा लग चुका था। हिंदू-कानून के अधीन यह भेट वेमानी और नानी की मृत्यु के वाद अर्थहीन थी। चिमनाजी ने मुझे जमीन वापसी के लिए दीवानी दावा दायर करने की सूचना दी। यह वहुत-ही सीधा मामला था और इसका जवाब कोई नही था। जज ने चिमनाजी के हक मे डिगरी दे दी, लेकिन प्रतिवादी को इस बात की छूट दी कि वह १२ मास के अदर-अदर अपने पेडो को हटा ले। प्रतिवादी ने जिला जज के यहा अपील कर दी। विद्वान जज हिंदू थे। पेशी के समय उन्होंने मुझसे कहा—"निस्सदेह, आप अपनी खाली जमीन का स्वामित्व पाने के अधिकारी है, लेकिन आप इन लाभकारी खडे पेडो के वदले कुछ मुआवजा क्यो नही दे देते? केवल ईंधन के लिए इन्हें काट डालना तो वहुत ही वुरा होगा।" यह कहकर उन्होंने ५ हजार रुपये की रकम का सुझाव पेश किया, जो मेरी राय में वहुत वाजिब था। मैने अपने मुवक्किल से वाहर जाकर सलाह करने

की आज्ञा चाही, लेकिन जब मैंने चिमनाजी से बात की, तो वह इस बात को कतई मानने को तैयार नहीं हुआ। मैंने बगीचे की खूबसूरती और उपयोगिता का बखान किया तो उसने कहा—"आप इसकी चिंता न करें। यह बाग ज्यों-का-त्यों हमारे पास आयेगा। शायद आपको पता नहीं कि हरे फूलदार पेड़ को काटना कितना पाप है, और मुझे यकीन है कि प्रतिवादी कदापि ऐसा नहीं करेगा। इसलिए हम क्यों कोई रकम दें? यह बगीचा हमारे ही लिए तो है और जैसे-का-तैसा हमें मिलेगा।" मैं इसका क्या जवाब देता? मैं अदालत के कमरे में लौट गया। मैंने चतुराई के साथ जज को सूचित किया कि मुझे बड़ा खेद है कि मेरे मुवक्किल के पास मुआवजा देने के लिए नकदी नहीं है। जज महोदय ने जब यह सुना तो उन्हें बड़ा बुरा लगा, लेकिन वह कर कुछ नहीं सकते थे। उन्होंने डिगरी को ज्यों-का-त्यों बहाल रखा। लेकिन चिमनाजी का कहना शब्दश सही साबित हुआ। एक बरस की समाप्ति पर उसे सारे-के-सारे पेड़ों सहित वह ज़मीन मिल गई। प्रतिवादी ने भी एक पवित्र हिंदू को जो करना चाहिए, वही किया। इस प्रकार चिमनाजी ने मेरा बड़ा ही मान किया और बरसों तक मैंने उसकी और उसके पुत्रों तथा भतीजों की मित्रता के सुख का लाभ लिया।

पाठक यह जानना चाहेंगे कि मोहनसिंह की अपील का क्या बना? वह तो मैंने जीत ही ली थी और किसी खास चतुराई के बल पर नहीं, बल्कि निरंतर धैर्य एवं दृढ़ता के सहारे मैं उसमें और सैकड़ों अन्य मुकदमों में सफल हुआ था।

: ९ :

अपराध और अपराधी

अपराध और अपराधियों के बारे में लिखते समय मैं कुछ अजीब-सी बेचैनी महसूस कर रहा हूं। पुराने ज़माने में कानून-भंग करने-वालों के साथ बहुत-ही बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। सैकड़ों अपराधों

के लिए मृत्यु-दड ही एक सजा थी। वारेन-हेस्टिग्स के काल मे, हमारे भारतीय इतिहास मे नदकुमार इसी तरह की बबरता का शिकार बना था। लेकिन अब तो जनमत मे बडी जागरूकता उत्पन्न हो गई है और इन दिनो अपराधी को अत्यन स्नेह, सहानुभूति और दयापूण व्यवहार का अधिकारी माना जाता है।

प्रचलित सिद्धात यह है कि अपराधी को दड देने की अपेक्षा उसके प्रति दया प्रकट करनी चाहिए। उसके बारे में यह ख्याल किया जाता है कि वह किसी मानसिक रोग या मनोवैज्ञानिक पीडा का मरीज है और उसने जो किया, उसके लिए वह जिम्मेदार नही था। इसलिए उसे कुछ सहानुभूति, उचित पोषक भोजन, व्यक्तिगत देख-रेख और शिक्षा तथा मनोवैज्ञानिक ढग के इलाज की आवश्यकता है। मनोविज्ञान के विशेषज्ञ उसकी परीक्षा करते है और अनत धैय के साथ उसके पुराने इतिहास का निरीक्षण करते है। हर कोई यह कहता है कि जेल को सुधार-स्थान बनना चाहिए। जेल में उसका अस्थायी रूप से रहने का मतलब यह होना चाहिए कि वह एक अच्छा नागरिक बन गया है।

अन्य देशो में ऐसी समितिया है, जो मुक्त कैदियो की बाद में देख-भाल करती है। ये समितिया जेल से उसकी रिहाई के बाद उसे रोजगार दिलाने और उसे अपने पाव पर खडा होने मे आवश्यक सहायता देने के लिए बनाई जाती है। जब वह जेल में अपनी सजा काट रहा होता है, तो उसे कई तरह की सुविधाए दी जाती है। वह अपने परिवार के लोगो, अपने नातेदारो और अपने मित्रो को पत्र लिख सकता है और उनसे मिल भी सकता है। यदि वह जेल-नियम के अनुसार आचरण करता है, तो उसे पैरोल (अस्थायी रिहाई) पर भी छोडा जा सकता है। सार यह कि समाज और राज्य दोनो ही उसके सुधार के लिए बहुत-ही चिंतित होते है।

यह अत्यत विरोधाभास की स्थिति है और सामान्य जनो के बारे में तो इसका ख्याल भी नही किया जा सकता। लाखो-करोडो स्त्री पुरुष,

जो अच्छे नागरिक है, वडा कष्टमय जीवन विता रहे हैं। वडी वुरी अवस्थाओ में रहते है, उनके सिरो पर महज एक छप्पर का ही आश्रय है। कभी-कभी वे कौडी-कौडी के मुहताज हो जाते है। वे भी मानव-प्राणी है, उनमें भी मातृत्व की प्यार-भरी भावनाए हैं, लेकिन वे अपने वच्चों को पोपक भोजन नही दे पाते। वे उन्हें शिक्षा नहीं दे सकते, पूरे कपडे भी नही पहना सकते। इसपर भी लोग कानून के अनुसार और अपराधहीन विशुद्ध जीवन विताते हैं।

समाज उनके वारे में रत्ती भर भी चिंता करता जान नही पडता। कोई भी उन्हे सहायता देने का खयाल नही करता। सहृदय स्त्री-पुरुषो की ऐसी समितिया भी हमारे देश में नही है, जो आवश्यकता के समय उनकी सहायता कर सकें। मैं समझता हू कि समाज वस्तुत इन लोगो से यह कहता है—"अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारी चिंता की जाय, तो हमारे ध्यान को आकर्षित करने की शर्त यह है कि तुम अपराध करो, जिससे तुमको पकडकर मजिस्ट्रेट के सामने हाजिर किया जा सके। वहा उससे किसी भी अपराध के लिए छ मास से लेकर पाच वरस की कोई भी कैद की सज़ा हासिल करो और तव तुम देखोगे कि हम किस तरह तुम पर कृपा-वृष्टि शुरू करते हैं। हम तुम्हारे रहने को साफ-सुथरा कमरा देंगे, तुम्हें काफी अच्छी खाट भी दी जायगी, दिन-प्रति-दिन तुम स्वस्थ रहो, इसकी देखभाल के लिए डाक्टर-कपाउडर मौजूद होगे, और अगर कही तुम्हें कोई भयकर वीमारी हो गई हो, तो तुम्हे उचित खुराक मिलेगी और साथ ही रात-दिन चिंता के साथ इलाज भी होगा।

"अगर तुम अपढ होगे, तो तुम्हें पढाने के लिए भी कुछ प्रवन्ध होगे और तुमको किसी-न-किसी दस्तकारी की भी तालीम दी जायगी। तुम एक अच्छे दर्जी या एक अच्छे वढई या एक अच्छे लोहार भी वन जाओगे, जिससे, जव तुम जेल से निकलो, तो अच्छी कमाई करने के लायक हो जाओ, और तुम देखोगे कि इसी मतलव की समितिया तुम्हे एक अच्छा घर वनाने के लिए,हर प्रकार की मदद करने को तैयार है। लेकिन,

याद रखो कि यह सब तभी होगा, जब तुम पहली ाही शर्त को पूरा करोगे। पहले सजायाफ्ता बनो और तब तुम देखोगे कि तुम्हे मदद पहुचाने के लिए हर कोई कितना चिंतित है । हम तत्परता-पूवक तुम्हार पक्ष मे यह कहेगे कि यद्यपि मजिस्ट्रेट ने तुम्हे कैद की सजा दी है, तथापि यह कतई तुम्हारा दोष नही था । तुम तो वस्तुत रोगी थे और सभवत असावधानी के कारण तुमने वह कार्य किया, जो तुमको मजिस्ट्रेट के पास ले गया और उसने तुमको जेल में नही भेजा, बल्कि उसने तुमको इलाज की जगह पर भेजा है ।"

कुछ दिन हुए, मै पजाब के एक जिले मे गया था, उस शहर के अस्पताल में सबसे बढिया और आकर्षक मुझे जेल का अस्पताल लगा । वह बहुत ही खूबसूरत बना हुआ था, हवा और रोशनी का उसमे बढिया प्रबन्ध था, बीमारो के लिए वहा बहुत-से बिस्तर थे और उनकी देख-भाल के लिए समझदार कार्यकर्ता भी थे । लेकिन उस चहार-दीवार के बाहर नगर के कथित स्वतत्र शहरियो के लिए नाममात्र की चिकित्सा-सुविधाए थी । उनके अस्पताल की बडी बुरी हालत थी । अस्पताल मे रखे जाने-वाले बीमारो का कमरा बडा गदा और तग था । बीमारो को अपने लिए निजी खाना मगाना पडता था । मुफ्त खुराक का कोई प्रबध नही था । नर्स भी वहा कोई नही थी । हर चीज़ जितनी बुरी हो सकती है, वहा थी और इतने पर भी ये लोग स्वतत्र नागरिक थे और इसलिए उनके बारे में कोई चिता करनेवाला नही था ।

यही विचार बच्चो के बारे मे भी कई बार मेरे मन में आये है । हम उन्हे बाजारो और गलियो मे देखते है । वे गदे और मैली दशा मे मारे-मारे फिरते है, उनकी देखभाल भी कोई नही करता । लेकिन ऐसे बहुत-से लोग है, जो अपराधी बच्चो के कल्याण की चिता करते है । यहा फिर वही पहली शर्त हर बच्चे पर लागू हो जाती है कि वह पहले किसीकी जेब काटे, तब वह शिशु-न्यायालय मे ले जाया जायगा और जिस क्षण वह वहा पहुचेगा, उसके प्रति दया के द्वार खुल जायगे । वह एक अच्छे-से घर मे रखा जायगा । वहा उसे स्वास्थ्य-सबधी शिक्षा देने के लिए

शिक्षक होगा, और संभव है कि वह बढ़िया स्काउटर भी बन जाय। उसे किसी दस्तकारी की शिक्षा दी जायगी, पढ़ाया-लिखाया भी जायगा, आदि-आदि। जब वह अठारह बरस की आयु के बाद उस घर से निकलेगा, तो वह सच्चे मानों में अच्छा नागरिक बनने योग्य हो जायगा। लेकिन इस सबके लिए पहली शर्त हमेशा यही होगी—पहले गिरहकट बनो।

यह सब अजीब मज़ाक-सा लगता है। मैं समझता हूं कि हम सदा असामान्य स्थितियों से क्षुब्ध होकर काम करते हैं। अपराधियों और गुनहगारों के साथ इतना दुलार दिखाने और उनके सुधार की आवश्यकता तथा उनके प्रति कोमल-व्यवहार दर्शाने में बड़ा भारी खतरा निहित है। उनके दुष्कृत्यों के कारण जिन्हें हानि पहुंचती है, उनके बारे में कोई सोचता तक नहीं। संभव है, उन्होंने एक परिवार का सबकुछ चुरा लिया हो। चोर को सज़ा मिलती है और वह उस घर में जाता है, जिसका आज के दिन ग़लत नाम जेल है और समाज उस परिवार के विषय में तनिक भी चिंता नहीं करता, जिसे उसने लूटा था। हानि सहन करनेवाले को उसकी क्षतिपूर्ति के लिए किसी सार्वजनिक कोष से एक दमड़ी तक नहीं दी जाती। सज़ायाफ्ता के प्रति हमारी सहानुभूति उमड़ पड़ती है और हम उसका सुधार करने की चिंता करने लगते हैं, लेकिन उसके शिकारों को हम पूर्णतया भूल जाते हैं, उनके प्रति कोई भी सहायता का हाथ नहीं बढ़ाता। मैं खुद भी मृत्यु-दंड के खिलाफ हूं, लेकिन हत्यारों के बारे में तो यह सारी चर्चा की जाती है, परंतु उन बच्चों के विषय में एक शब्द भी सुनने को नहीं मिलता, जिन्हें उन हत्यारों ने पितृहीन या मातृहीन कर दिया था, यह बड़े ही दुख की बात है।

पिछले कुछ बरसों के दौरान में, जब सभी जगह खाने-पीने की भारी कमी थी और लाखों परिवार ख़रीदने की सामर्थ्य न होने के कारण उचित खुराक भी नहीं प्राप्त कर सकते थे, मैं बंगाल की जेलों में देखा करता था कि वहां सप्ताह में दो बार हर क़ैदी को बढ़िया भोजन दिया जाता था।

उसके भोजन मे चावल और दाल, भाजिया और चटनी तथा मीठे तेल में बनी मछली या मास होता था। बगाल के मध्यवर्ग के ७० प्रतिशत परिवार उन दिनो ऐसा भोजन प्राप्त करने मे असमर्थ थे।

यह सब कहने का मेरा मतलब यह नही कि कैदियो को भूखो मारा जाय, लेकिन लगता है कि जो-कुछ हम कर रहे हैं, वह आवश्यकता से ज्यादा है। निस्सदेह अपराधियो को सजा देते समय उनकी परिस्थितियो मे भेद करने का काम मजिस्ट्रेट का है। मान लीजिये, एक आदमी है, जो अपने परिवार के भूखे बच्चो के लिए एक रोटी चुराता है। ऐसे व्यक्ति को समझा-बुझाकर या चेतावनी देकर भी छोडा जा सकता है। लेकिन दूसरा है, जो केवल लोभवश ही ऐसा करता है या अपनी किसी आयोजित योजना को पूरा करने के लिए दूसरे लोगो के सिर फाडता है, वह वस्तुत किसी ठोस दड का अधिकारी है। उसे यह महसूस कराना होगा कि *अपराध करने से लाभ नही होता और कानून पालन करने के लिए ही* बनाये जाते हैं।

भारत के प्रत्येक भाग मे मैंने कई जेलो को देखा है और मैंने अक्सर सोचा है कि हम अपराधो और दुष्कर्मो के प्रति उदारता दिखाकर बडा भारी खतरा उठा रहे हैं। जहा पुराने जमाने मे कैदियो के साथ बहुत ही बेरहमी और बबरता के व्यवहार की रीति थी, वहा आज के दिन मुझे यह अजीब-सा लगता है कि एक आदमी, जो तकलीफो मे पडा है, वह सहज ही खयाल कर ले कि कोई अपराध कर लेना फायदेमद होगा, क्योंकि अपराधी बन जाने पर कुछ महीना, या एक अथवा दो बरस के लिए भारतीय गणतत्र का मेहमान बनने का मौका हो जायगा और उस मेहमानी के दौरान मे पूरी रक्षा के साथ सुखकर और नियत्रित जीवन के दिन कटेंगे। इसपर दयावान सरकार अच्छे खाने, रहन और चिकित्सा आदि प्रबन्ध भी करेगी। वर्तमान में जेलो का इतना सुखकर बनाने मे निश्चय ही बडा भारी खतरा है। जब मैं जेल मे था, तो मैंने कइयो को बारबार वहा आते देखा था, क्योकि उन्हे जेल का जीवन ज्यादा लाभकर लगता था।

१०

अदालतों में झूठी गवाहियां

अदालतो में झूठी गवाही देने की बुराई बहुत बढी हुई है । हर वकील उसे जानता है । कुछ अनुदार लोग तो यहा तक कहते है कि बहुत मे वकील बेईमानी से इसको बढावा भी देते है और झूठी गवाही देने के भागीदार होते है । झूठी गवाही देने की कोई सीमा दिखाई नही देती । उदाहरण के लिए मुझे ही एक ऐसे निर्लज्ज मामले का अनुभव है, जिसमें दीवानी के एक मुकदमे में दोनो फरीको के बीच यह झगडा था कि दो जीवित व्यक्ति—एक पुरुष और एक स्त्री —पति-पत्नी थे अथवा मा-बेटे । दोनो ही जीवित थे और किमी भी फरीक की ओर से उन्हें अदालत में पेश नही किया गया था । बहुत से लोग आये और जिस ओर से उन्हे पेश किया गया था, उसके पक्ष में कमम खाकर गवाही दे गये । जज ने दोनो ओर की गवाहिया सुनकर एक ओर के गवाहो को तरजीह दी और उमीके अनुमार फैमला दे दिया । अपील सयोग से न्यायाधीश सुलेमान तथा इलाहाबाद हाई कोर्ट के एक और जज के सामने आई । मैंने कहा कि निचली अदालतो में जज ने बचपन की-मी बात की है और उन परिस्थितियो में उमका एक दर्शक बने रहना मूर्खतापूर्ण रहा है । मैंने सुझाया कि अगर वह दोनो व्यक्तियो को बुलाकर मीधे तरीके मे कुछ प्रश्न पूछ लेता तो बिना किसी कठिनाई के सच्चाई निकल आती । इस बात का न्यायाधीश सुलेमान पर, जो प्राचीन-काल के सुलेमान की भावना से प्रेरित होकर कार्य कर रहे थे, काफी असर हुआ और उन्होंने उस मामले को मातहत अदालत को इस आदेश के माथ लौटा दिया कि दोनो व्यक्तियो मे सीधे सवाल कर लिये जाय । मुझे अच्छी तरह याद है कि बिना किसी खास दिक्कत के सचाई सामने आ गई ।

× × ×

एक और भी मुकदमा था, जिसकी अपील १९१९ में इलाहाबाद हाई कोर्ट

के उन दिनो के नये आये हुए मुख्य न्यायाधीश सर ग्रिमवुड मेअर्म ने एक अन्य जज के साथ सुनी थी। अब भी वह दृश्य मेरे मामने आ जाता है, जो सर ग्रिमवुड ने प्रणय के उम मामले मे हुई लम्बी-चौडी गवाहियो को पढकर प्रस्तुत किया था। दोनो दल मुमलमान थे। वादी एक नौजवान था। वह उम नवयुवती के अपनी औरत होने का दावा करता था, जो उस मुकदमे मे प्रतिवादी न० १ थी। उमने अपनी बीवी के माथ-वालो पर, जो अन्य प्रतिवादी थे, यह दोप लगाया कि वे उमे (बीवी को) उससे दूर रखने में मदद कर रहे हैं। वादी का कहना था कि उम नवयुवती के साथ अमुक रात को ६ वजे इस्लामी तरीके पर एक काज़ी, वकीलो और गवाहो के सामने उसकी शादी हुई, जिसमे बहुत से रिश्तेदार और दोस्त शरीक हुए थे। प्रतिवादी ने इस प्रकार की शादी से बिल्कुल इन्कार कर दिया। इसके बजाय उसने कहा कि उमी दिन रात के ६ बजे शहर के दूसरे हिस्से में, एक दूसरे मकान के अदर प्रतिवादी न० २ के साथ एक काजी, वकीलो और गवाहो के सामने उसका विवाह हुआ था, जिसमें बहुत से रिश्तेदार और दोस्त शरीक हुए। उसने जो हाल बताया, सही-सा था। उस औरत ने कहा कि यह बिल्कुल ठीक है कि उसकी मा वादी के साथ ही शादी करना चाहती थी, लेकिन वह खुद इस विचार से ही नफरत करती थी, हालाकि उसे खामोश रहना पडता था। बाद को जब उसने देखा कि मामला बढता जा रहा है और शादी की तारीख तक तय हो गई है, तो वह अपनी चाची के पास दौडी गई और उससे अपनी मदद करने के लिए कुछ करने को कहा। उसने अपनी चाची को यह भी बता दिया कि शादी करने के लिए उसने प्रतिवादी न० २ को अपने दिल मे जगह दे रखी है, वही उसकी पसद का नौजवान है। इसलिए चाची को शादी का इनजाम करना ही होगा, वरना वह आत्महत्या कर लेगी। चाची ने उसपर तरस खाया और उसका नतीजा जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह हुआ कि उसी तारीख को दूसरी जगह प्रतिवादी न० २ के साथ उसकी शादी हुई। इस प्रकार ये दो मुकाबले की कहानिया दो शादियो

के बारे में थी, और विश्वास कीजिये कि दोनो ओर से ५० से भी अधिक गवाहिया अदालत में अपनी आखो के सामने इस या उस शादी होने के प्रमाण में हुई। उन गवाहियो के निष्पक्ष होने के सबंध में देखने से ही कोई मुद्दा कायम नही किया जा सकता था। उनमें से बहुत से लोग दोनो के ही रिश्तेदार और मित्र थे। ऐसे मामले में मैं स्वय जज होना पसद न करता और मेरा यह खयाल है कि गवाहिया इस मुकदमे का अतिम निर्णय कराने में सहायक नही हुई, बल्कि सब मिलाकर अन्य घटनाए ही काम आई। जब नीचे की अदालत में मुकदमा चल रहा था, उस स्त्री के बच्चा पैदा हो गया। उसका पिता वादी न० २ था और उस समय तक, जबकि सर ग्रिमवुड मेअर्स के सामने अपील पहुची, एक और बच्चा हो गया। हाई कोर्ट के जजो ने साफ कह दिया कि मुकदमे में कुछ भी सही-गलत हो, वे उन बच्चो को किसी तरह भी जायज घोषित नही कर सकते।

× × ×

अदालतो में झूठी गवाहियो को छाटना बेकार है, किंतु एक दृष्टि से उनमें से कुछ वास्तव में शानदार होती है। कुछ तो हिमालय की चोटियो की तरह होती है। भोवाल सन्यासी का मामला एक अच्छा उदाहरण हो सकता है। परतु मैं और भी कुछ ऐसे मामले जानता हू, जो सूझ-बूझ के मधुर और मनोरजक खेल तथा मनुष्य की कल्पना-शक्ति की बडी भारी मिसालें कही जा सकती है। मैं यहा दो मामलो का उल्लेख करूगा। एक इलाहाबाद हाई कोर्ट में मेरी वकालत के शुरू के दिनो में १९१६ या १९१७ का है और दूसरा कुछ बाद का। दोनो में एक ही प्रश्न उठा था। पहले मुकदमे का थोडा परिचय देना आवश्यक होगा।

यह मामला एक अच्छी-खासी रियासत के सबध मे था, जो राजा की मौत के बाद कोई लडका न होने के कारण उनकी विधवा के हाथ आई थी और उसके मरने के बाद वह जायदाद कुछ दूर के घरवालो को पहुचनी थी। इस प्रकार के दूर के उत्तराधिकारियो को अलग करने के लिए गोद

ले लेने का एक तरीका होना है । एक वालक के साहमी पिता ने रानी का अपने पुत्र को गोद लेने के लिए इस आशा से फुमलाया कि उसका वच्चा गोद ले लिया जायगा तो उसका पिता और स्वाभाविक सरक्षक होने के कारण वह वहुत वर्षों तक जायदाद का लगान, किराया आदि वसूल करके मुनाफा उठाता रहेगा । लडका गोद ले भी लिया गया, लेकिन फौरन ही कानूनी तथ्य के आधार पर झगडा शुरू हो गया । काफी लवी मुकदमेवाजी हुई और अत मे हाई कोट ने गोद लेना वहाल रखा । पिता ने खुशिया मनाई । इसी वीच रानी की मृत्यु हो गई और लडका गोद लेने की तारीख से ही जायदाद का स्वामी वन गया और उसका पिता वास्तविक अधिकारी । मुकदमे के दौरान मे इस वालक के विवाह का कोई सवाल ही नही था, किंतु दुर्भाग्यवश वह अकस्मात वीमार पड गया और कुछ ही दिनो मे मर गया । वाप की सारी आशाओ पर पानी फिर गया और वे विरोधी, जिनसे गोद लने के मामले मे वह इतने दिनो तक लडा था, अव स्वत जायदाद के मालिक वननेवाले थे । इस विपदा का हटाने के लिए कुछ-न-कुछ तो किया जाना चाहिए था । वच्चे के दाह-सस्कार के वाद, कहना चाहिए कि एक 'युद्ध-परिपद' वन गई, जिसे यह विचार करना था कि उस सकट को दूर करने के लिए क्या उपाय काम में लाये जाय । विचार किया गया कि एक यही तरकीव कारगर हो सकती है कि उस अविवाहित वालक को एक विधवा तैयार की जाय और यह जाहिर किया जाय कि उस (वालक) की मृत्यु के वाद जायदाद स्वाभाविक रूप से उसकी उस विधवा को पहुच गई है । उस समय कोई लडकी निगाह मे न थी, किंतु यह तो एक मामूली-सी वात थी । फौरन ही यह तय किया गया कि एक नाम सोच लिया जाय और सयुक्त प्रात के जाव्ता माल के अनुसार गाव के अधिकारियो से उसकी सूचना फौरन करा दी जाय । लीलावती नाम छाट लिया गया और गाव के अधिकारियो से, जो षड्यत्र मे शामिल थे, फौरन खाना-पूरी कर देने को कह दिया गया । तीन ने तो उसी रात यह रिपोर्ट कर दी कि नवयुवक

राजा की मृत्यु हो गई है और वह अपने पीछे अपनी विधवा लीलावती को छोड गया है । चारो ने अगले दिन इसकी सूचना कर दी ।

स्वभावत विपक्षी दल में इस काड से तहलका मच गया । न कोई विवाह हुआ था और न कोई लीलावती ही थी । सारा-का-सारा मामला काल्पनिक था और इस आशय की दरख्वास्तें दे दी गई । नियमानुसार माल अदालत को मामले की सरसरी जाच करने के लिए कहा गया, ताकि गाव के सरकारी कागजो में ठीक अमल-दरामद हो सके ।

अब पिता को एक लीलावती प्राप्त करने को कहा गया । किसी लडकी को लीलावती बनाना ज़रूरी हो गया । यहा यह बताना पडेगा कि इस व्यक्ति के दो विवाह हुए थे । उसकी पहली स्त्री से वह लडका हुआ था, जो गोद ले लिया गया था और जिसका यह किस्सा है । उसकी पत्नी तब मर गई थी । उसने दुबारा शादी कर ली थी और उससे कहा जाता है कि चार बच्चे हुए थे । इस स्त्री की एक अविवाहित छोटी बहन थी । सर्वसम्मति से यह निर्णय किया गया—और उसमें उसके पिता की भी राय थी—कि इसी लडकी को जब जरूरत पडे, लीलावती बनाकर खडा किया जाय । इस प्रकार काम आराम से चलता रहा । गवाहिया प्रस्तुत कर दी गई । मुझे ठीक से याद नही है कि लीलावती को कभी अदालत में पेश किया गया हो—शायद नही किया गया था । अत में माल अदालत ने कह दिया कि उन्हें सदेह है, इसलिए वह उसके नाम का इदराज नही करेगी । यह पहली अदालत में हुआ । इस सबमें कुछ समय लग गया । इस बीच लीलावती बडी हो गई और उसके पिता को उसकी शादी की फिक्र हुई । उसने कह दिया कि वह अपने दामाद पर अहसान करने को भी इस दिलचस्प नाटक में अपनी कन्या को लीलावती का पार्ट अदा करने के लिए अविवाहित नही रख सकता । खुशामद के बाद भी वह अपने विचार से नही डिगा और उस लडकी का विवाह यथा नाम तथा गुणवाले शैतान-सिह से हो गया ।

अब विवाह के बाद एक अन्य लीलावती की आवश्यकता हुई, क्योंकि

एक बडी अदालत मे माल की कार्रवाई चल रही थी और किसी समय भी लीलावती को अदालत मे हाजिर करने के लिए कहा जा सकता था। इसलिए एक और छोटी लडकी को छाटा गया। उसमे भी कुछ न बना। अपील भी माफिक न हुई और जायदाद की वापसी के लिए वह दीवानी दावा दायर करना जरूरी हो गया। दुर्भाग्य अकेला कभी नही आता। इस बीच लडके का पिता मर गया। सट्टेबाज मामले में आ गये और उन्होने सोचा कि मामला खत्म हो गया और अगर कुछ कारगर उपाय न किये गये तो सारा लगा-लगाया रुपया वेकार जायगा। मुझे यह पता नही कि उन्होने यह कैसे किया, लेकिन उन्होने गोद गये लडके की सौतेली मा को लीलावती बनने को राजी कर लिया और उसने ऐसा ही किया। स्वर्गीय नाबालिग स्वामी की विधवा की हैसियत मे उसने सपत्ति पर दावा दायर कर दिया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जब लडका मरा था तो उसकी उम्र १५-१६ वर्ष की थी और लीलावती भी उसी उम्र की बनाई गई थी। यह मुकदमा लडके की मृत्यु के ४-५ साल वाद शुरु हुआ था, किंतु यह स्त्री, चार बच्चो की एक अधेड उम्र की औरत थी। वह तमाशे की नायिका बनने को राजी हो गई, लेकिन खिलाडी निराश न थे। मुकदमा शुरू हुआ। दूसरी तरफ भी सट्टेबाज लोग थे। असली उत्तराधिकारी तो गरीब लोग थे, जो भूखे-नगे थे और एक नामी सट्टेबाज़ ने थोडा-सा रुपया और करीब ३०० एकड भूमि देकर उन्हे खरीद लिया था। दीवानी मुकदमे मे जैसे हुआ करता है, बहुत वक्त लगा। करीब १०० गवाहिया हुई। इनमे से ६० तो वादी की ओर से हुई, जिन्होने शपथपूर्वक कहा कि लडके का विवाह हुआ था। कुछ ने तो यहा तक कहा कि वे उसकी बारात में गये थे और पाणिग्रहण के समय उपस्थित थे, आदि-आदि। दूसरी ओर, प्रतिवादियो ने इस आशय की साक्षिया दी कि विवाह हुआ ही नहीं, लडका बहुत छोटा था, किसीने भी विवाह की बात नही सुनी। स्कूल के अध्यापक ने गाव के स्कूल का वह रजिस्टर दिखलाया, जिसमें जिस दिन विवाह हुआ बताया गया था, लडका हाजिर था। स्कूल के रजिस्टर मे जहा तक

मेरा खयाल है, हाजिरी झूठी बनाई हुई थी। जो हो, वहा हाजिरी थी। प्रतिवादियो ने लीलावती की शारीरिक परीक्षा के लिए भी प्रार्थना की, जिससे देखने पर उसकी उम्र की शनाख्त हो सके और यदि आवश्यकता हो, तो आतरिक जाच भी की जाय। यह प्रार्थना-पत्र स्वीकार कर लिया गया और एक डाक्टरनी कमिश्नर की हैसियत से इस कार्य के लिए नियुक्त हुई। वह मकान के अदर गई, फौरन ही लौट आई और अपनी रिपोर्ट दे दी। उसने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि मकान के अदर उसने एक स्त्री को देखा, जिसका नाम लीलावती बताया गया। वह स्त्री सिर से पैर तक ढकी हुई थी और उसका केवल मुह और हाथ खुले हुए थे, जो दिखाई पडते थे। उसने लिखा कि बडी शिष्टता के साथ उसने उस स्त्री से कपडा हटाकर थोडी अपनी बाह, पेट और शरीर के अन्य भाग दिखाने को कहा, किंतु उस स्त्री ने दृढता के साथ वैसा कुछ करने से इन्कार कर दिया। इतना ही नही, उसने धमकी दी कि वह डाक्टरनी को पीट देगी। डाक्टरनी ने बताया कि वह उस स्त्री का चेहरा और हाथ देखकर सिर्फ राय ही कायम कर सकती है। चेहरे से वह अधेड उम्र की जान पडती थी और हाथो से पता चलता था कि वह शारीरिक परिश्रम करने को बहुत आदी है। मुझे ध्यान पडता है कि मामले में वही निर्णायक पहलू हुआ और परिणाम यह निकला कि पहली अदालत में लीलावती हार गई और इलाहाबाद हाई कोर्ट में की गई अपील मे भी, जिसमें मै उसके विरुद्ध डाक्टर सप्रू के साथ छोटा वकील था, वह असफल रही। उस समय छोटी उम्र का होने के कारण सारा मुकदमा मुझे हमेशा याद रहनेवाला और यकीन न करने-जैसा लगा।

× × ×

दूसरा मामला, जो कुछ वर्ष बाद सामने आया, एक लडकी से सबधित था, वह अनाथ हो गई थी, लेकिन उसके पास काफी सपत्ति थी और वह सपत्ति उसके पिता के भाई—चाचा—के सरक्षण में थी। इस चाचा ने उसका विवाह पडोस में ही समान प्रतिष्ठावाले परिवार में एक नवयुवक के साथ

कर दिया। लडकी बहुत बडी सपत्ति की उत्तराधिकारिणी थी, इसलिए उससे हर कोई विवाह करने को आतुर था। मुझे सदेह है कि उसका विवाह निश्चित करते समय उसके चाचा ने निजी लाभ के लिए वर के पिता से अवश्य कुछ सौदेबाजी की होगी। लेकिन उसके चाचा से भी शायद मामला 'हीरे से हीरा काटने' का हुआ और भारी सपत्ति के साथ उस लडकी को अपनी पुत्र-वधु बनाकर वह व्यक्ति सौदे से मुकर गया। चाचा अपनी मूर्खता पर रोता रह गया। यही उन घटनाओ की शायद भूमिका बना, जिनका मैं उल्लेख करने जा रहा हू।

मामला यो शुरू हुआ कि उसके चाचा ने अपनी नाबालिग भतीजी और उसकी जायदाद के सरक्षण के लिए जिला जज के यहा दरख्वास्त दी। दरख्वास्त में लिखा कि उसका पति नाबालिग—स्कूल का विद्यार्थी—और उसका (लडकी का) ससुर उसकी उपेक्षा तथा सपत्ति का बेहद बुरा प्रबध कर रहा था, साथ ही मुनाफे का गोल-माल भी किया जा रहा था। इसलिए कानूनी सरक्षण जरूरी था और उस लडकी की देख-रेख करने के लिए उसका चाचा ही उपयुक्त व्यक्ति था, जो विवाह से पूर्व भी देख-भाल करता था।

जिले के उस नगर मे, जहा यह दरख्वास्त दी गई थी, जज की अदालत नही थी। जिला जज पद्रह दिन मे एक बार वहा इस प्रकार की दरखास्ते सुनने जाया करता था। इस प्रकार एक शनिवार को एक ओर चाचा, उसका बेटा और वकील तथा प्रतिपक्ष मे दूसरी ओर लडकी का ससुर और उसका वकील उस मुकदमे के सिलसिले मे जिला जज के सामने खडे हुए। ज्यो ही मुकदमा शुरू हुआ, चाचा के वकील ने दुखी आवाज मे जज से कहा कि अब दरखास्त की सुनवाई की आवश्यकता ही नही रह गई, क्योकि दुर्भाग्यवश लडकी का देहात हो गया है। प्रसगवश मैं कह सकता हू कि इस देहात का कानूनी अर्थ यह हुआ कि सपत्ति लडकी के पिता के कुटुब को लौटनी चाहिए और सबसे निकट का उत्तराधिकारी उसका चाचा था।

चाचा के वकील की वात सुनकर जज ने स्वभावत सवाल की निगाह मे दूसरी तरफ देखा और तुरत ही ससुर ने कहा कि तीन दिन हुए, जव मैं घर मे आया हू । उस समय पुत्र-वधु विल्कुल ठीक थी, उसकी मृत्यु के सवध में यह वात विल्कुल झूठ है । जज चक्कर में पड गया और मामले को १५ दिन आगे की तारीख लगा दी । साथ ही यह आदेश भी दे दिया कि लडकी को अदालत में उपस्थित किया जाय ।

पखवाडा वीता । अदालत वैठी । ससुर उपस्थित न हुआ, लेकिन उसके वकील ने एक तार पढकर सुनाया, जिसमें ससुर तथा पुत्र-वधु के वीमार होने की सूचना थी और अदालत मे आगे की तारीख डालने का निवेदन किया गया था । इससे जज का सदेह वढा । उसने तारीख तो स्थगित कर दी, लेकिन यह आदेश दिया कि अगली पेशी में लडकी को अवश्य उपस्थित किया जाय, चाहे ससुर आ सके या न आ सके । इसके वाद दोनो पक्ष फिर चले गये ।

अगली पेशी पहली पेशी से ठीक चार सप्ताह वाद पडी । चाचा अपने वेटे के साथ हाजिर था । दूसरी ओर ससुर के स्थान पर खुद लडकी का पति अपने मामा के साथ उपस्थित हुआ । मुकदमा शुरू होते ही जज ने पूछा कि लडकी हाजिर है ? वकील ने जवाव दिया कि वह आ गई है और अदालत के अहाते में ही एक पालकी में वैठी हुई है । जज ने चाचा से कहा—"तुम्हारी भतीजी वहा वाहर है । जाओ, उससे मिल आओ ।" चाचा अपने पुत्र के साथ वाहर गया और दो मिनट में ही यह चिल्लाते हुए लौट आया—"वह मेरी भतीजी नही है । मेरी भतीजी तो एक महीना हुआ तभी मर चुकी है । अदालत के साथ भारी षड्यत्र किया गया है और मेरी भतीजी के स्थान पर कोई और लडकी लाई गई है । वाहर पालकी में वैठी लडकी तो कोई विल्कुल अजनवी है ।" जज वडे चक्कर में पड गया । उसे वडा गुस्सा आया । उसने एक आदेश लिखा, जिसमें कहा कि इस प्रकार की स्थिति सिर्फ भारत में ही पैदा हो सकती है, और कहीं नही । उसने यह भी लिखा कि इस रहस्यपूर्ण मामले

मे वाहर पालकी मे बैठी लडकी के मबंध मे कुछ भी निर्णय करना असभव है, लेकिन वह लडकी के पति को उसका सरक्षक नियुक्त करता है, भले ही वह लडकी कोई भी हो और मामले को यही छोड दिया।

स्थिति कुछ वर्षों तक इसी तरह रही। चाचा कोई और कदम न उठा सका। इस बीच लडकी की सम्पत्ति का उपभोग पति के परिवार-वाले करते रहे।

अत में छ वर्ष के वाद चाचा ने सपत्ति की वापसी के लिए दीवानी अदालत में एक दावा दायर किया। दावे में कहा गया कि भतीजी मर चुकी है और उसकी मृत्यु के वाद हिंदू कानून के अनुसार सपत्ति उसे मिलनी चाहिए और वह उसे पाने का पूर्ण अधिकारी है। उसने सरक्षण के मुकदमे का उल्लेख किया भी और कहा कि मुकदमे के चार सप्ताह के दौरान मे लडकी के पति ने दुवारा विवाह कर लिया और नई स्त्री अमुक गाव के एक व्यक्ति लक्ष्मीनारायण की लडकी है। उसने पूरा विवरण दिया। अब वही नई स्त्री दुनिया के सामने भतीजी के रूप मे प्रकट की जा रही है।

जवाब मे चाचा के दावे को गलत बताया गया और कहा गया कि लडकी हर तरह से सही-सलामत है और जीवित है, और यह दावा अदालत के साथ भारी धोखा-धडी है। इस तरह दोनो तरफ से बाते कही गई।

जिला जज के सामने वह एक हास्यजनक दृश्य बन गया, जज की आज्ञा से जब गवाह लिये जा रहे थे तो लडकी को बाहर एक पालकी मे बिठाया हुआ था और वादी की ओर से रिश्तेदार, दोस्त और परिचित, हर गवाह जा-जाकर बाहर पालकी में झाकता और लौटकर अदालत मे शपथपूर्वक कहता कि यह वह लडकी नही है, जिसे वे जन्म से ही जानते है। वह तो कोई और है। कुछ गवाह ऐसे भी आये, जिन्होने ज़ोर के साथ कहा कि वह लडकी लक्ष्मीनारायण की कन्या है और वे उसे बचपन से पहचानते है। तब बहुत सारे गवाह लडकी के ससुराल के गाव और पास-पडोस के आये। उन्होने शपथपूर्वक कहा कि उन्होने लडकी की बीमारी का समाचार सुना

था और वे हाल-चाल पूछने भी गये थे। तब उनने कहा गया कि लडकी मर गई। बहुत से लोगो ने कहा कि उन्होंने शव अपनी आखो मे देखा था। दूसरो ने तो यहा तक कह दिया कि वे शव-यात्रा में भी गये थे और कुछ मील दूर नदी के किनारे उनके सामने शव जलाया गया था। दूसरी तरफ़ पति, ससुर, रिश्तेदार और बहुत से लोग आये, जिन्होंने हलफ लेकर कहा कि उस परिवार मे कोई मृत्यु नही हुई और यह लडकी वही है, जिसे चाचा ने बडे ठाठ-बाट से शादी करके दिया था। अब रहा लक्ष्मीनारायण। उसने कहा कि उसके तीन लडकिया थीं, सब जीवित हैं और उसने सबका हिसाब बता दिया। मुझे याद है, उसने कहा था कि वे तीनों लडकिया भारत के तीन अलग-अलग शहरो मे हैं और अपने-अपने घरो में खुश हैं।

मातहत जज के दिमाग की कैफियत का अदाज़ा आसानी से लगाया जा सकता है। उसने मामले को सुलझाने का भरसक यत्न किया और इस परिणाम पर पहुचा कि चाचा अपना मामला सिद्ध नही कर सका और लडकी की मृत्यु साबित नही हो सकी, इसलिए उसने मुकदमा खारिज कर दिया।

इलाहाबाद हाई कोर्ट में अपील की गई और वादी की ओर से मुझे वकील किया गया। मुकदमे की मिसल बहुत बडी थी। दोनो तरफ से गवाहो की सख्या भी बहुत अधिक थी। जितना मैं मामले पर विचार करता, उतना ही अधिक मुझे यह महसूस होता कि मेरा मुवक्किल (चाचा) ही ठीक था। मेरे मस्तिष्क मे दो मुद्दे थे। पहला था जिला जज के सामने सरक्षण के मामले में ससुर का व्यवहार और दूसरा, जिसकी ओर किसी का ध्यान ही नही गया था, यह था कि लडकी का इस मुकदमे में एक गवाह की हैसियत से बयान नही लिया गया था। अपील दो विद्वान और अनुभवी जजो के सामने पहुची। एक हिंदू थे, न्यायाधीश लालगोपाल मुखर्जी तथा दूसरे पारसी, न्यायाधीश बी० जे० दलाल। मैंने उक्त दो मुद्दो पर ध्यान केंद्रित कराने का भरसक प्रयत्न किया, किंतु न्याया-

धीश मुखर्जी के सामने बात आगे न बढी । कभी-कभी वह एक हठी जज बन जाते थे और उनसे कोई बात मनवाना कठिन हो जाता था । उनका मस्तिष्क मेरे विरुद्ध बहुत जल्दी बन गया । न्यायाधीश दलाल की ओर से कुछ आशा बधी थी । बहुत दिनों के बाद अत में न्यायाधीश दलाल ने मुझसे साफ-साफ कहा--"आपने जो कुछ भी कहा है उसका मुझपर प्रभाव पडा है, मैं यह मानता हू, लेकिन मेरे सामने एक कठिनाई है । अगर आपकी बात ही सच है तो आपका मामला दायर होने में इतनी देर होने का आपके पास क्या उत्तर है ? सरक्षण के मुकदमे और इस दावे के बीच छ वर्ष से भी अधिक का समय हो गया । मुझे ऐसा लगता है कि आप एक मास के भीतर ही दीवानी अदालत में पहुचकर सपत्ति पर अपना दावा दायर करते ।" मिसल में इसका जवाब देने के लिए कुछ था भी नही । मैं यही कह सका कि मेरा मुवक्किल मालदार नही है और दीवानी मुकदमा करने के लिए धन की आवश्यकता होती है—वह तो एक खर्चीला सौदा है । लेकिन न्यायाधीश दलाल को इस उत्तर से सतोष नही हुआ । उन्होंने अपना नोट देते हुए लिखा कि उनके साथी जज का विचार तो प्रारभ से ही मेरे खिलाफ था और उनके पास भी अपने साथी से असहमत होने के लिए कोई विशेष बात नही है । परिणाम यह निकला कि खुली अदालत में फैसला सुनाया गया और अपील खारिज हो गई ।

फैसला सुनने के बाद मेरे विरुद्ध काम करनेवाले एक छोटे वकील ने मुझसे कहा—"डाक्टरसाहब, आप मुकदमा जीत गये ।" मैं आश्चर्य मे पड गया । पूछा--"कैसे ?" उसने शातिपूर्वक कहा—"मैं ठीक ही कह रहा हू । आपको पता नही कि क्या हुआ है ।" मैंने कहा—"मुझे कुछ नही पता ।" उसने कहा---"मेरे मुवक्किल के परिवार में यह दशा हो गई है कि लडकी का पति मर गया, लडकी का ससुर चल बसा और लडकी के कोई औलाद नही है । वह किसी बच्चे को गोद भी नही ले सकती, क्योंकि उसका पति अकस्मात मर गया और उसे गोद लेने की अनुमति प्रदान नही कर गया । वह खुद भी बहुत बीमार है और तपेदिक की तीसरी मजिल पर पहुच

करनेवाली है और सपत्ति आपको मिल
। इस प्रकार मुकदमा आप ही जीते हैं ।"
ा, उससे मुझे कुछ दुख हुआ, लेकिन मुझे
-बूझ के अनुसार कार्य करते हैं, लेकिन
ा दिखा देता है ।

× ×

घटना का ध्यान हो आया है । यह भोवाल
लदन में सुनाई गई थी । यह तो सब-
ार की पत्नी ने उसके दावे को अस्वीकार
नही माना था । उसने दृढता के साथ
हो चुकी है और दावेदार कोई छली
ग कलकत्ते के हाई कोर्ट में वह नाकामयाव
कौंशिल की जुडीशल कमेटी के सामने
की लबी सुनवाई के वाद अपील खारिज
ील के खारिज होने के कुछ ही दिन वाद
ार गया और मुझे वताया गया कि
र ने यह सूचना अपने प्रतिपक्षी को एक
दे दी—"न्याय हो गया ।" उसका
झ सकते हैं ।

११ .

अंगूठे के निशान ने बचाया

भारत में मुकदमेबाजी का सबसे सफल साधन तथा सब तरह के छल-कपट करने का जरिया उत्तराधिकार-कानून है, जो ज्यादातर लोगो को पसद नही है। पुराने जमाने मे गाव का समाज सभी वर्णों के परिवारो का होता था। लेकिन हर वर्ण के परिवारो का समूह आपस मे रिश्तेदारी से बधा होता था, क्योकि उन सबके एक ही पूवज होते थे और वह समान पूर्व-पुरुप होता था। लडकियो की शादी दूसरे गाव मे होती थी, और वे अपने जन्म के परिवार से सपूर्णत अलग हो जाती थी तथा वे और उनकी सतानें पिता की जयदाद की उत्तराधिकारिणी होने से वचित कर दी जाती थी। इसका कारण किसी खास रिश्तेदार को वहिष्कृत करने की इच्छा नही था, वल्कि इसका उद्देश्य था समाज की एकता को बनाये रखना। उत्तर-प्रदेश मे अग्रेज शासको ने इस पुराने रिवाज मे हस्तक्षेप किया और लडकियो तथा उनकी सतानो को पिता के धन का उत्तराधिकारी माना। यह अधिकार किसी सख्त रिवाज के अनुसार ही रद्द किया जाता था, जिसको जज खुले आम कठोर और अस्वाभाविक बनाते थे। जजो द्वारा बनाये इस कानून को कमजोर बनाने मे जनता कभी-कभी सफल हो जाती थी और हर प्रकार से ऐसे उत्तराधिकार के दावे को रद्द करवाती थी। अग्रेजो की अदालतो ने लडकियो को नजदीकी उत्तराधिकारी माना, लेकिन वहनो को नही माना। धोखा देने का एक आम तरीका यह होता था कि लडकी को मृत व्यक्ति की वहन वताया जाता था और उसके लडकी होने के दावे को अस्वीकार कर दिया जाता था। अगर वाप अपनी जवानी में मरा तथा माता गभवती हुई, तो वताया जाता था कि माता के पिता की मृत्यु के वाद लडका हुआ, जो सप्ताह या महीने के वाद मर गया। लेकिन गनिम मालिक वही था, इसलिए लडकी वहन के उत्तराधिकार का दावा कर सकती थी। इस तरह के कितने

वहाने वनाये जाते थे ।

फिर उस विधवा का सवाल लीजिये, जिसका पति सयुक्त हिंदू परिवार में रहकर ही मरा हो । हिंदू समाज धीरे-धीरे इस नियम का माननेवाला होने लगा था कि परिवार चाहे सयुक्त हो या न हो, विधवा को परिवार में अपने पति का हिस्सा मिलना चाहिए, जिसका जीवन भर वह उपभोग करे । वगाल में यही नियम है, लेकिन उत्तर-प्रदेश में जजो ने इस नियम के प्रचार-प्रसार को रोक दिया और पुराने नियम के अनुसार तय किया कि सयुक्त हिंदू परिवार में निपूती विधवा को पति का हिस्सा नही मिलना चाहिए । उस विधवा के पति का हिस्सा दूसरे पुरुषो के हिस्सो में वाट दिया जाता और उसे परिवार के साथ रहने तथा उनके आसरे रहकर ही जीवन-यापन का अधिकार दिया जाता । इस नियम से उत्तर-प्रदेश में वहुत मुकदमेवाजी हुई । हर मुकदमे में सयुक्त और विभाजित परिवार का वहाना मुकदमेवाज अपनी सुविधानुसार करने लगे और इन वहानो को धोखे-वाजी तथा झूठी गवाही दिलाकर सत्य सावित किया जाने लगा । गवाही में भेद होने से अक्सर सचाई का पता लगाना मुश्किल हो जाता था । अपनी वकालत के दिनो में मेरे पास ऐसे सैकडो ही मुकदमे आये । लेकिन उनमें से कुछ तो सचमुच ही वडे विचित्र थे, विशेष रूप से एक मुकदमा तो वडा ही मनोरजक था । अदालत में एक लवे अर्से से वह चल रहा था, लेकिन अत मे सवसे वडी अदालत—लदन की प्रिवी कौंसिल ने अपना निर्णय एक अगूठे के निशान पर ही दे दिया । यह किस्सा यहा वयान करने योग्य है

उत्तर प्रदेश के एक देहात मे दो भाई रहते थे और वे सचमुच एक सयुक्त परिवार के थे । उनकी जमीन-जायदाद कई गावो में फैली हुई थी और दो जिलो में पडती थी । प्रवध की सुविधा के खयाल से सयुक्त परिवार की मर्यादा को कायम रखते हुए भाइयो ने यह तय किया कि एक भाई एक जिले की जमीन का प्रवध करे और दूसरा भाई दूसरे जिले की । इन दो जिलो की जायदाद का मुनाफा लगभग वरावर था और इसलिए

हर तरह से यह प्रबध प्रशसनीय और सुविधाजनक था । एक भाई के एक लडका था, दूसरे के सतान नही थी ।

सन १९१८ ई० के जाडे के मौसम मे जब प्रथम विश्व-युद्ध समाप्ति पर था, सारे उत्तर-भारत मे इन्फ्लुएजा ने महामारी का भयानक रूप धारण कर लिया था । उसी बीमारी से मतान-हीन भाई की मृत्यु हो गई । उसकी स्त्री एक पुलिस अफसर की लडकी थी । दशहरा के त्यौहार पर वह अपने पिता के घर गई थी । उसका पति बाद मे उसके पास पहुचा । उसे इन्फ्लुएजा हो गया और वह एक-दो के दिन भीतर ही मर गया । कहा जाता है कि विधवा स्त्री ने उस समय यह तय किया कि वह अपने पति के घर में रहकर परिवार की सपत्ति का, जो उसके पति के हाथ में थी, प्रबंध करेगी ।

जहा तक दूसरे भाई का सबध था, हिंदू कानून ने उसे भाई की मृत्यु के बाद सारी जायदाद का मालिक बना दिया और भाई की विधवा गुजर-बसर करने मात्र की उत्तराधिकारिणी रह गई । उसका पति के हिस्से पर कोई अधिकार न रह गया, क्योकि उसका पति सयुक्त परिवार में मरा था और उसके कोई लडका नही था । उस जीवित भाई के आश्चय का अदाजा लगाइये, जबकि कई महीने बाद एक दिन अचानक उसे पुलिस अफसर का तार मिला । उसमे विधवा के पिता ने यह खुशखबरी दी थी कि उसके भाई की विधवा के नैहर मे लडका हुआ है । तार भेजनेवाले ने लडके के चाचा को इस परिवार-वृद्धि पर बधाई दी थी । यह समाचार दूसरे भाई को वज्रपात-जैसा मालूम हुआ । इसकी पहल कोई खबर नही थी । हिंदू परिवार-प्रथा के अनुसार बच्चा होने मे दो-तीन महीने पहले कुछ उत्सव मनाया जाता है और होनवाली खुशी की खबर रिश्तेदारो को इस तरह मिल जाती है । इस मामले मे भी साधारणत भाई और उसके परिवार को यह खबर बच्चे के जन्म से पहले ही मालूम होनी चाहिए थी । यह भी आशा की जाती थी कि पुलिस अफसर सावधानी के रूप मे तथा गलतफहमी को दूर करने के खयाल से बच्चे के जन्म से पूर्व ही इसकी सूचना

उस भाई को दे देता, ताकि अगर उसकी इच्छा होती तो वह बच्चे के जन्म के समय वहा उपस्थित हो जाता। लेकिन ऐसा कुछ नही किया गया और यह तार एकाएक आ पहुचा। बच्चे के चाचा को धोखेबाजी का सदेह हुआ। पुलिस अफसर के कई लडके थे और उसने सोचा कि यही हो सकता है कि यह महाशय अपने एक पोते को नाती बनाकर हटाना चाहते है। लडका पोता तो रहेगा ही, अतर यही होगा कि वह पुत्र का पुत्र न होकर स्त्री का पुत्र बन कर रहेगा। लेकिन इस थोडे परिवर्तन से लडके को अपने बाप के हिस्से पर दावा मिलने का हक होगा, और वह इतनी बडी भू-सपत्ति का हकदार हो जायगा।

चाचा ने बच्चे को नकली करार दिया, और कहा कि उसे फरेब के लिए खडा किया गया है। साथ ही यह दलील पेश की कि उसके भाई की विधवा भाई के मरने के समय गर्भवती नही थी।

इसमें बडे दावे थे। समझौता सभव नही था। तुरत मुकदमे-बाजी शुरू हो गई। मुकदमे की सारी बात बच्चे की 'असलियत' पर निर्भर करती थी। इसका सबूत देना विधवा के सिर पर आ गया। उसने सबूत में जो बयान दिया वह अद्भुत था। उसने कहा कि पति की मौत के बाद ही उसे गर्भवती होने का ज्ञान हुआ। फिर भी वह अकेली अपने घर में ही रहती थी, साथ में कुछ नौकर थे और उसने अपना घर छोडने की चिंता न की। उसका पिता दूसरे जिले में पुलिस-अफसर था। उसकी एक सहेली थी। वह एक ईसाई महिला थी, जो उसके पास अक्सर आया करती थी। एक दिन उस सहेली ने कहा कि लडके की पैदाइश पर शक किया जायगा और खानदान में झगडा उठेगा, इसलिए यह बेहतर होगा कि गर्भवती माता को अपने गर्भ का कुछ सबूत रखना चाहिए। विधवा ने बताया कि यह सलाह उसके दिमाग में बुद्धिमानी की जची और उसने अपनी सहेली से कहा कि वह उसे ऐसा प्रमाण दिलाने की कोशिश करे। इस पर उस ईसाई महिला ने पास के शहर की एक ईसाई प्रचार-मडली की लेडी डाक्टर से सपर्क किया और और उसको

यहा बुलाया । वह लेडी डाक्टर आई और उसने गर्भवती मा की जाच की । उसने कहा कि स्थिति सामान्य है । उनके कहने पर लेडी डाक्टर ने अपनी जाच का सर्टिफिकेट दस्तखत करके दिया और उसपर गभवती माता के अगूठे का निशान लगवा दिया । जब प्रसव का समय नजदीक आया, तो विधवा ने पिता के घर जाना बेहतर समझा । पिता मे कहा कि वह उसके पति के भाई को इस खुशखबरी की सूचना भेज दे । लेकिन किसी-न-किसी कारण से खबर भेजने मे टाल-मटोल हो गई और बच्चा पैदा होने से पूव खबर न भेजी जा सकी । यही उसका किस्सा था । प्रसव होने की गवाही दाई ने दी और दूसरे लोगो ने भी गवाही दी, जो वहा उस समय मौजूद थे ।

दूसरी ओर, मृत व्यक्ति के भाई और उसके गवाहो ने यह बयान दिया कि बच्चे के जन्म होने से पूर्व किसीको इसकी खबर न थी । अगर यह बात सच होती तो जन्म से पूर्व सूचना तथा कई तरह की रस्में पूरी की गई होती । यह दलील भी पेश की गई कि डाक्टरी सर्टिफिकेट सदेहात्मक परिस्थिति मे दिया गया है और वह एक काफी अनुभवी तथा फरेबी दिमाग की उपज है । फिर दो औरतो का मिलकर सर्टिफिकेट लिखवाने का किस्सा और भी यकीन के लायक नही है ।

लेडी डाक्टर से जज के सामने प्रश्न किये गये । उसने सर्टिफिकेट को सही बताया । लेकिन मै नही कह सकता कि दोनो पक्षो मे से एक ने भी लेडी डाक्टर को उस विधवा माता पर नजर डालने के लिए कहा जिसकी उसने जाच की थी और सर्टिफिकेट दिया था । यह भी नही कह सकता कि उसने सर्टिफिकेट को सही बताते हुए कहा था कि उसने एक औरत की जाच की थी, जिसने अपना वही नाम बताया था, जो सर्टिफिकेट में लिखा था ।

विद्वान जज सचमुच विधवा के बयान से प्रभावित नहीं हुआ । उसने सोचा कि यह बात बहुत सदेह से भरी है और ऐसे मौके पर हिंदू परिवार मे साधारणत जो-कुछ किया जाता है, उसके बिल्कुल खिलाफ

है । मै दावे के साथ कह सकता हू कि जज ने यह खयाल किया कि यह मामला पुलिस-अफसर के फरेबी दिमाग की करतूत है । जो हो, उसने यकीन नही किया और भाई के हक में फैसला न दिया । इस पर इलाहाबाद हाई कोर्ट में अपील की गई और प्रधान न्यायाधीश सर ग्रिमवुड मेयर्स और न्यायाधीश पिग्गट के इजलास में यह मुकदमा सुनवाई के लिए आया ।

दोनो तरफ बडे अनुभवी वकील रखे गये और सुनवाई में गवाह के बयान पर काफी बहस हुई । बहस के अत में सर ग्रिमवुड मेयर्स ने कहा कि दोनो में से एक पक्ष ने भी लेडी डाक्टर के बयान की सचाई पर सदेह नही किया था । निस्सदेह लेडी डाक्टर का चरित्र बहुत ऊचा था और उसने उस क्षेत्र में काफी नाम कमाया था । प्रधान न्यायाधीश ने इस विचित्र सबूत पर आलोचना की कि दो में से एक पक्ष ने भी और न जज ने ही लेडी डाक्टर से यह कहा कि वह मा पर नजर डाले और बताये कि क्या वह वही औरत है, जिसकी उसने जाच की थी और सर्टिफिकेट दिया था । जब अनुभवी न्यायाधीशो को यह मालूम हुआ कि वह लेडी डाक्टर अब भी उसी मिशन अस्पताल में डाक्टर है, तो उन्होने सबसे अच्छा यह समझा कि उसको हाईकोर्ट में बुलाया जाय और फिर उसीके द्वारा मा की जाच करा-कर उसका बयान ले लिया जाय । यही तय हुआ, मा तथा लेडी डाक्टर दोनो को हाईकोर्ट में बुलाया गया ।

नियत तारीख आई । हाई कोर्ट में बडी भीड थी और सचमुच वातावरण बहुत गर्म था । दोनो तरफ काफी दबी हुई उत्तेजना भरी थी । लेडी डाक्टर हाई कोर्ट में आई । वह शील-सम्मान की प्रतिमूर्त्ति थी और जब उसने अपना बयान दे दिया तो प्रधान न्यायाधीश ने उसे नीचे के कमरे में जाने का आदेश दिया, जहा मा बैठी हुई थी तथा उनको देखकर आने के बाद फिर बयान जारी करने को कहा । वह नीचे गई और कुछ मिनटो के बाद जब वह ऊपर आई, तो वह बहुत गभीर थी । प्रधान न्यायाधीश ने पूछा कि उसने उस औरत को पहचाना या नही ।

यहा बुलाया। वह लेडी डाक्टर आई और उसने गर्भवती मा की जाच की। उसने कहा कि स्थिति सामान्य है। उनके कहने पर लेडी डाक्टर ने अपनी जाच का सर्टिफिकेट दस्तखत करके दिया और उसपर गर्भवती माता के अगूठे का निशान लगवा दिया। जब प्रसव का समय नजदीक आया, तो विधवा ने पिता के घर जाना बेहतर समझा। पिता से कहा कि वह उसके पति के भाई को इस खुशखबरी की सूचना भेज दे। लेकिन किसी-न-किसी कारण से खबर भेजने में टाल-मटोल हो गई और बच्चा पैदा होने से पूर्व खबर न भेजी जा सकी। यही उसका किस्सा था। प्रसव होने की गवाही दाई ने दी और दूसरे लोगो ने भी गवाही दी, जो वहा उस समय मौजूद थे।

दूसरी ओर, मृत व्यक्ति के भाई और उसके गवाहो ने यह बयान दिया कि बच्चे के जन्म होने से पूर्व किसीको इसकी खबर न थी। अगर यह बात सच होती तो जन्म से पूर्व सूचना तथा कई तरह की रस्मे पूरी की गई होती। यह दलील भी पेश की गई कि डाक्टरी सर्टिफिकेट सदेहात्मक परिस्थिति में दिया गया है और वह एक काफी अनुभवी तथा फरेबी दिमाग की उपज है। फिर दो औरतो का मिलकर सर्टिफिकेट लिखवाने का किस्सा और भी यकीन के लायक नही है।

लेडी डाक्टर से जज के सामने प्रश्न किये गये। उसने सर्टिफिकेट को सही बताया। लेकिन मै नही कह सकता कि दोनो पक्षो मे से एक ने भी लेडी डाक्टर को उस विधवा माता पर नजर डालने के लिए कहा जिसकी उसने जाच की थी और सर्टिफिकेट दिया था। यह भी नहीं कह सकता कि उसने सर्टिफिकेट को सही बताते हुए कहा था कि उसने एक औरत की जाच की थी, जिसने अपना वही नाम बताया था, जो सर्टिफिकेट में लिखा था।

विद्वान जज सचमुच विधवा के बयान से प्रभावित नहीं हुआ। उसने सोचा कि यह बात बहुत सदेह से भरी है और ऐसे मौके पर हिंदू परिवार में साधारणत जो-कुछ किया जाता है, उसके बिल्कुल खिलाफ

कराने की दरख्वास्त दे । जो हो, दोनो तरफ के वकीलो के दिमाग ने चाहे जो कुछ भी सोचा हो, जाच की दरख्वास्त नही दी गई और वह वात वही-की-वही रह गई । दोनो न्यायाधीशो में से एक ने भी अगूठे के निशान को विशेषज्ञ के पास जाच के लिए भेजने की नही सोची और उन दोनो ने अपना फैसला नही दिया ।

वाद में एक दिन जव सारे सवूत पर वहस हुई, जिसमें दोनो न्यायाधीशो के निजी विचार अगूठे के निशान की समानता के सवध में भी सम्मिलित थे, न्यायाधीशो ने निचली अदालत का फैसला वदल दिया और वच्चे के हक में निर्णय दिया ।

फिर लदन की प्रिवी कौंसिल में अपील की गई और वहा जुडीशियल कमेटी ने मुकदमे को जल्दी में देखकर फैसला कर दिया । सारे सवूत की अवहेलना कर, श्रेष्ठ न्यायाधीशो ने अपना छोटा-सा फैसला देते हुए कहा कि सारे मुकदमे का दारोमदार अगूठे के निशान पर था । दोनो पक्षो का कहना था कि लेडी डाक्टर का चरित्र सदेह से परे है, तव अगूठे के निशान की समानता होने पर ही मुकदमा खत्म हुआ ।

१२ :
अविश्वसनीय, किंतु सच

वस्तुत सभी तरह की कहानिया आमतौर पर, और जासूसी कहानिया तो खासतौर पर, चाहे वे रहस्यभरी हो, या काल्पनिक, एक वडे भारी मुद्दे को पूरा करती है । लाखो अनगिनत पाठक उनसे मनोरजन और सुख-लाभ करते है और उनमें आश्चर्य की भावना जग जाती है । लेकिन कभी-कभी मुझे खयाल हो आता है कि जो आदमी अपनी सारी जिदगी अदालतो में गुजारता है, कुछ समय वाद उसके लिए इस तरह का साहित्य कोई खास रुचिकर नही रह जाता, क्योकि उपन्यास या कहानी का कोई भी लेखक, भले ही उसकी कल्पना-शक्ति कितनी ही महान

यह भी पूछा कि क्या वह वही औरत है, जिसको उसने सर्टिफिकेट दिया था ? लेडी डाक्टर ने बहुत शाति तथा दृढतापूर्वक कहा—"नही, मै नही कह सकती। मैने उस औरत को कुछ ही मिनटो के लिए देखा था। तबसे कई वर्ष बीत गये है। मेरी याददाश्त के अनुसार जिस औरत की मैने जाच की थी, वह हृष्ट-पुष्ट थी। बहुत स्वस्थ दिखती थी और शारीरिक रूप में वह बहुत अच्छी हालत में थी। जिस औरत को मैने अभी देखा है, वह बहुत दुबली है और यह साफ जाहिर है कि वह चिंता से सूख रही है। मुझे बहुत दुख है, मै यह बिल्कुल नही कह सकती कि यह वही औरत है या नही, जिसकी मैने जाच की थी।" इस पर अदालत मे सनसनी फैल गई। लेकिन लेडी डाक्टर ने अपना बयान जारी रखा और कहा—"लेकिन एक बात के बारे में मै निश्चित रूप से और दावे के साथ कह सकती हू। जिस औरत की मैने जाच की थी उसके अगूठे का निशान मैने अपने सामने ही सर्टिफिकेट पर ले लिया था।" ज्योही लेडी डाक्टर की जाच खत्म हुई, प्रधान न्यायाधीश ने कहा—"नये सबूत के कारण मुकदमा सहल हो गया है। अब यह मुकदमा अगूठे के निशान के सही होने पर निर्भर करता है।" इसके बाद न्यायाधीश पिग्गट स्वय नीचे गये और एक कागज पर उस महिला के अगूठे के तीन या चार निशान ले आये।

इजलास मे लौट आने पर अनुभवी जजो ने एक बडा दिखानेवाला शीशा मगाया, अगूठे के निशानो को देखा और पूर्ण जाच के बाद प्रधान न्यायाधीश ने कहा—"हम लोग तो सचमुच इस मामले मे साधारण जानकारी रखते है, और यह चीज विशेषज्ञो की है। लेकिन जहा तक हम लोगो की जाच का सवाल है, अगूठे के नये निशान सर्टिफिकेट के निशान से मिलते है।" मुझे अब याद नही है कि क्या कारण हुआ, दोनो मे से एक पक्ष ने भी विशेषज्ञ द्वारा अगूठे के निशान की जाच की दरख्वास्त नही दी। बहुत सभव है कि जिस पक्ष को न्यायाधीश के विचार से समर्थन प्राप्त हुआ हो, उस पक्ष के वकील उतने से ही सतुष्ट हो गये और दूसरे पक्ष के वकील ने सोचा कि यह काम सबूत पक्ष का था कि वह अगूठे के निशान की जाच विशेषज्ञ द्वारा

कराने की दरख्वास्त दे । जो हो, दोनो तरफ के वकीलो के दिमाग ने चाहे जो कुछ भी सोचा हो, जाच की दरख्वास्त नही दी गई और वह बात वही-की-वही रह गई । दोनो न्यायाधीशो में से एक ने भी अगूठे के निशान को विशेषज्ञ के पास जाच के लिए भेजने की नही सोची और उन दोनो ने अपना फैसला नही दिया ।

बाद में एक दिन जब सारे सबूत पर बहस हुई, जिसमें दोनो न्यायाधीशो के निजी विचार अगूठे के निशान की समानता के सबध में भी सम्मिलित थे, न्यायाधीशो ने निचली अदालत का फैसला बदल दिया और बच्चे के हक में निर्णय दिया ।

फिर लदन की प्रिवी कौंसिल में अपील की गई और वहा जुडीशियल कमेटी ने मुकदमे को जल्दी में देखकर फैसला कर दिया । सारे सबूत की अवहेलना कर, श्रेष्ठ न्यायाधीशो ने अपना छोटा-सा फैसला देते हुए कहा कि सारे मुकदमे का दारोमदार अगूठे के निशान पर था । दोनो पक्षो का कहना था कि लेडी डाक्टर का चरित्र सदेह से परे है, तब अगूठे के निशान की समानता होने पर ही मुकदमा खत्म हुआ ।

१२ :
अविश्वसनीय, किंतु सच

वस्तुत सभी तरह की कहानिया आमतौर पर, और जासूसी कहानिया तो खासतौर पर, चाहे वे रहस्यभरी हो, या काल्पनिक, एक बडे भारी मुद्दे को पूरा करती हैं । लाखो अनगिनत पाठक उनमें मनो-रजन और सुख-लाभ करते हैं और उनमें आश्चर्य की भावना जग जाती है । लेकिन कभी-कभी मुझे खयाल हो आता है कि जो आदमी अपनी सारी जिंदगी अदालतो में गुज़ारता है, कुछ समय बाद उसके लिए इस तरह का साहित्य कोई खास रुचिकर नही रह जाता, क्योकि उपन्यास या कहानी का कोई भी लेखक, भले ही उसकी कल्पना-शक्ति कितनी ही महान

क्यो न हो, सचाई मे हमेशा ही दूर रहता है। कल्पित की वनिस्वत मच्ची घटना ज्यादा आश्चयजनक होती है और इम कथन मे विरोधाभाम भी दिखाई दे मकता है, लेकिन यह नितात सत्य है कि मानव-कल्पना मानवीय प्रक्रिया की मीमाओ तक कभी पहुच ही नही सकती और न कोई कल्पनाशील लेखक मानव-मन की कायकारिता और मानव-भावनाओ के अतर्द्वंद्व की गहराई तक पूरी तरह मे कभी पहुच मका है। अखबारो मे प्राय किसी खाम मुकदमे के तथ्यो का मक्षेप ही प्रकाशित हो पाता है, लेकिन मुकदमा जब अदालत में पेश होता है और दैनिक कारवाई मे लगातार एक के बाद दूसरा व्यक्ति ऐमी एक वात को प्रमाणित करने के लिए पेश होता है, जिमे विपरीत दिशा में अमभव ही कहा जाता, तो सच्ची कहानी अनत सामने आ जाती है। इतने पर भी वह असभव ही लगती है, अनर केवल यह होता है कि वह घटना हुई जरूर थी। जब किसी सही या कल्पित गलती को ठीक करना हो, अथवा किसी न्यायालय का आसरा वेकार मावित हो जाने पर गलत मावित हुआ व्यक्ति, इम दैवी आज्ञा को भूल कर कि 'वदला लेने का काम ईश्वर का है', गलती करनेवालो से वदला लेने का भार खुद अपने ऊपर ले लेता है, तो मानव-क्रोध और क्षोभ की भावनाए वेहद वढ जाती है और तव लोभ, सत्ता-प्रेम और स्त्री-प्रेम के भिन्न मुद्दो के कारण ऐसे-ऐमे काय, अपराध या भूले की जाती है, जिनका खयाल तक नही किया जा सकना। फारमी की कहावत है कि 'जर, जमीन और जोरू' ही मव अपराधा और वुराइयो की जड है। इस दृष्टि से मपत्ति-व्यवस्था के नाश से कम-मे-कम यह तो लाभ हागा कि वुरे कामो की एक मुख्य वुनियाद नष्ट हो जायगी।

अपनी वकालत के चालीस वर्षा मे मैंने कानूनी रिपोर्टो मे कई आश्चयजनक कहानिया पढी है, लेकिन कानूनी रिपोर्टें भी वहुधा कोरे कानूनी प्रश्नो की व्याख्या तक ही मीमित रहती है। विशुद्ध मचाई जानने के लिए व्यक्तिगत अनुभव और लोगो व उनके मामलो की निजी

जानकारी होना जरूरी है। जब मैं बीते बरसो का खयाल करता हू, तो मुझे कई ऐसी घटनाए याद आती है, जो वास्तव में अगर घटी न होती, तो उनपर कोई विश्वास ही न करता। उदाहरण के लिए आज से ३०-३५ बरस पहले की नीचे लिखी इस घटना को ही देखिये, जो उत्तर-प्रदेश के ग्रामीण जिलो के एक कस्बे में घटी थी।

एक हिंदू परिवार था, जिसके पास काफी बडी जमीन-जायदाद थी। परिवार में दो भाई थे, अलग-अलग थे, पर पास-पास के मकानो में रहते थे। इनमें से एक अपनी पत्नी और पुत्री को छोडकर मर गया। हिंदू-कानून के अनुसार उसकी सपत्ति का उत्तराधिकार उसी विधवा स्त्री और विधवा की मृत्यु के बाद उसकी पुत्री और पुत्री के बच्चो को प्राप्त होता, परतु पुत्री के यदि बच्चे न होते, तो वह सपत्ति मृत व्यक्ति के भाई और उसके बेटो को मिलती। वह पुत्री अपने पिता की मृत्यु के समय अविवाहित थी। बाद मे उसकी मा और उसके चाचा ने पास के जिले के एक प्रतिष्ठित परिवार में उसे ब्याह दिया। यह सबध हर तरह से उचित था और साधारणतया यह आशा की जाती थी कि यह विवाह सुखदायी और सफल साबित होगा। अब देखिये, किस तरह मानव-मुद्दो और प्रक्रियाओ की पेचीदगिया अपना काम करती है।

जाहिरा तौर पर चाचा भविष्य में होनेवाली घटनाओं को होने नही देना चाहता था। उसे शक था कि जैसे ही उसकी भतीजी अपने घर में बसने लगेगी, उसकी मा उसकी तरफ खिच जायगी और इस प्रकार मृत भाई की जायदाद का किराया व मुनाफा उसकी भाभी को मिलने लगेगा, परिणाम-स्वरूप वह खुद और उसका परिवार इस सबसे वचित हो जायगे। यह तो थी भावी आशका, लेकिन वर्तमान अभी उस के अनुकूल था, उसकी भाभी पूरी तरह उसके बस में थी। यद्यपि वह निजी मकान में रहती थी और किसी प्रकार के अनौचित्य का कोई कारण भी न था, फिर भी न जाने कैसे उसने अपनी भाभी को वश में कर लिया था। अब उसके सामने यह समस्या खडी हुई कि किसी तरीके से अपने भाई

की जायदाद के उत्तराधिकारी को स्वाभाविक पथ से हटाया जाय। देखिये कि इसके लिए उसने क्या-क्या किया। लडकी अपने पति के घर मे रहती थी। दोनो युवा पति-पत्नी मे बहुत प्रेम था। एक त्यौहार पर लडकी को अपनी मा के घर बुलाया गया और फिर किसी-न-किसी बहाने से उसे वहा एक साल से ज्यादा रोका गया। पत्नी और पति तथा पति के रिश्तेदारो के बीच के सब पत्र रोक लिये जाते थे। पति का कोई भी पत्र पत्नी तक नही पहुचने दिया जाता था। उसका क्षुब्ध और निराश होना स्वाभाविक ही था। इस पर हर रोज उसकी मा, उसका चाचा और हरएक आदमी उसके कान भरता रहता कि उसका पति और पति का परिवार उसकी उपेक्षा कर रहे है। इसके अलावा उसे यह भी कहा जाता कि यह विश्वस्त खबर मिली है कि तेरे पति ने तुझे छोडकर दूसरी शादी करना तय कर लिया है। आप सहज ही सोच सकते है कि ऐसी असहाय मनोदशा मे वह लडकी किस पीडा के साथ अपने दिन और रात गुजार रही होगी। अपनी मा का विश्वास करने के अलावा उसके पास और चारा ही क्या था ?

उधर जिस शहर मे पति का परिवार रहता था, लडकी के चाचा ने अपने कुछ रिश्तेदारो और दोस्तो की मदद से झूठी अफवाह उडवा दी कि लडकी अपनी मा के घर मे भ्रष्ट होकर गर्भवती बन चुकी है और उसकी इस शर्म को छिपाने के लिए ही उसे वहा रोका गया है। पति एक नवयुवक था। वह और उसके घरवाले परेशान थे, और उन्हे कोई रास्ता भी नही सूझता था। पति बार-बार पत्र लिखता, पर कोई नतीजा न होता। उसके खतो का कभी कोई उत्तर मिला नही। वह कई बार अपनी सास के घर भी गया, सास ने बडी आव-भगत की और बडे प्यार के साथ उसका स्वागत किया, खिलाया-पिलाया, एक-दो रोज वह वहा ठहरा भी, पर उसे अपनी पत्नी का कोई चिह्न तक दिखाई नही देता था। पति-पत्नी को आपस मे मिलने का कोई मौका ही नही दिया जाता था। मेरा खयाल है कि वह लडका इतना शर्मीला था कि बहुत सीधे सवाल

भी नही पूछ सकता था। लेकिन मा किसी-न-किसी झूठे बहाने से, जैसे, लडकी बीमार है और बिस्तरे पर पडी है, या किसी और बहाने से लडकी की अनुपस्थिति का कारण समझा देती। नतीजा यह होता कि हर बार वह नवयुवक निराश ही लौट जाता।

इस प्रकार उस नवयुवती की आत्मा की हत्या करके और उसे पूर्णत दुखी बनाकर चाचा ने मा के साथ साज़िश करने की ठान ली, ताकि उसकी सपत्ति को अपने और अपनी सतान के लिए हथिया लिया जाय। इस इरादे से एक निश्चयात्मक कदम उठाया गया और वह कदम था एक ऐसे रजिस्ट्रीशुदा अधिकार-पत्र पर हस्ताक्षर कराना, जो अपने किस्म का एक अजीब ही दस्तावेज़ था। मेरा ख़याल है, उसने अपने इस कपट के बारे में ज़रूर ही कानूनी सलाह ली होगी और मैं सिर्फ यह कह सकता हू कि उसके सलाहकारो ने अपनी बुद्धिहीनता का भी एक बेजोड परिचय दिया था। इस अधिकार-पत्र के अधीन मा ने अपनी सारी सपत्ति अपनी पुत्री को सौंप दी थी। हिंदू-कानून के अनुसार उसे यह अधिकार प्राप्त था। अधिकार-परिवर्त्तन का कारण देते हुए उसने स्वीकार किया कि वह विधवा हो चुकी है और उसने सयम तथा भक्ति का जीवन व्यतीत करने का सकल्प कर लिया है। इसलिए उसने यही सबसे अच्छा समझा कि उसकी पुत्री को तुरत ही अपने पिता की सपत्ति पर अधिकार प्राप्त हो जाय। यहा तक तो ठीक ही हुआ। इसके बाद उस अधिकार-पत्र में उस लडकी की बारी आई और बीस बरस की उस जवान लडकी से यह घोषणा करवाई गई कि अभी तक चूकि उसे अपने जीवन में बहुत दु ख मिला है, उसने निश्चय कर लिया है कि वह ससारी झगडो में न पडेगी, न ज़मीन-जायदाद की देख-भाल के पचडे में ही पडेगी। इसलिए कि वह अपना जीवन सादगी और सयम से बिताना चाहती है, उसने निश्चय कर लिया है कि अपनी सारी सपत्ति कुटुब के मान्य देवता को समर्पित कर देना ही उत्तम है। इतना सब कर चुकने के बाद उसने यह भी ऐलान किया कि उसके चाचा ने उसकी देवार्पित सपत्ति के व्यवस्थापक बनने की उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। इस-

लिए उमने अपने चाचा को, और उमके वाद चाचा के पुत्रो को, पीढो-दर-पीढो इम काम के लिए नियुक्त कर दिया है। हरएक जानना है कि इम प्रकार को व्यक्तिगत धार्मिक भेट के दुरुपयोग को बहुत अधिक मभावना बनो रहनो है, ओर शायद हो कभो जायदाद का किराया या मुनाफा देवना को सेवा के काम में लाया जाता हो। इम प्रकार चाचा ने मोचा कि उसने एक ही चोट मे मा और वेटो दोनो मे छुटकारा पा लिया और अपने तथा अपने वेटे-पोतो के लिए जायदाद हथिया ली।

अव नाटक का नया दृश्य आरभ होना है। लडकी का पति इतनी कम उम्र का था कि खुद कुछ न कर मकता था किंतु सौभाग्य ने उसका एक भाई था जो उसमे अधिक अनुभवी था और जो लखनऊ के प्रातीय दफ्तर मे कमचारी था। जब इस भाई ने अपने शहर मे लडकी के चरित्र-भ्रष्ट होने की अफवाहे सुनी, तो उसे वडी हैरानी हुई। उमका खयाल था कि उसक भाई को स्त्री वहुत सच्चरित्र और सुशील लडकी है। वह विश्वास न कर सकता था कि ऐमी लडकी मा के घर मे दुश्चरित्र वन सकती है। वह इस सारे मामले को कुछ शक की निगाह से देखने लगा। उसने कालटन नामक एक रिटायर्ड पुलिस सुपरिन्टेडेट से सलाह ली, जो रिटायर होने के वाद अनियमित ढग से लोगो को कानूनी सलाह दिया करता था। जहा तक मेरा खयाल है पुलिस विभाग मे अपनी नियुक्ति से पूर्व वह स्वय वकील रह चुका था। उसका वेटा बैरिस्टर था और मेरा घनिष्ठ मित्र था। श्री कालटन ने सलाह दी कि वह मामला कचहरी का नहीं है, वल्कि सीधी कारवाई का है। अत लडके के भाई और श्री कालटन लखनऊ से मवसे निकट के रेलवे स्टेशन पर पहुचे और वहा मे सोलह मील की दूरी पर लडकी के चाचा के गाव के लिए रवाना हुए। वे दोनो एक इक्के मे वहा पहुचे। गोरे के आगमन ने सारे गाव मे खलबली मचा दी। इक्का चाचा के घर पहुचा और उसमे से रिटायर्ड पुलिस सुपरिन्टेडेट लडके के भाई के साथ उतरे और उन्होने वडे नाटकीय ढग मे लडकी के बारे मे पूछा कि वह कहा है और क्यो उसे उनके

पति के घरवालो की इच्छा के विरुद्ध रोक रखा गया है। एक साथ हलचल और गडबडी का मच जाना स्वाभाविक था। चाचा वाहर निकलकर आया और गोरे आदमी की मौजूदगी में वहुत ही नरम वन गया। थोडी देर वाद लडकी की मा आई और उसके हाव-भाव से भी वडी नम्रता झलक रही थी। कार्लटन ने इस वात पर जोर दिया कि लडकी को तुरत पेश किया जाय और वह लडकी भी घर के अदर से निकलकर वाहर कमरे मे आई। तव कार्लटन ने कहा कि वे लडकी को लेने आये हैं, उसे उसी वक्त भेजना पडेगा। मा ने वहुत विरोध किया। कहने लगी कि यह असभव है। नये कपडे और उचित रस्म अदा किये विना कैसे मैं इस तरह अपनी वेटी को भेज सकती हू ? रीति के अनुसार लडकी के लिए नये कपडे और कुछ गहने नये वनवाने होगे और आज का दिन भी अशुभ है अगला शुभ दिन चार दिन वाद आयगा। इसलिए लडकी को तुरत भेजने का सवाल ही पैदा नही होता। कार्लटन ने हठ पकड ली और उसने लडकी से पूछा कि क्या वह चलने को तैयार है। लडकी ने तुरत उत्तर दिया कि वह तैयार है। उससे पूछा गया कि उसे किस कपडे की जरूरत है, तो उसने कहा कि उसे किसी चीज़ की जरूरत नही, "मैं इसी साडी में चलने के लिए तैयार हू, मुझे और कुछ नही चाहिए।" जव कार्लटन ने कहा—"आओ, चलो!" तो वह वडी तत्परता के साथ तुरत इक्के में जा वैठी। चाचा और मा हैरान रह गये, न वे कुछ कह सके और न कुछ कर सके। इक्का चल दिया और लडकी प्रसन्न और प्रफुल्ल अपने पति के घर पहुची।

वहा उनसे विगत अठारह महीने की घटनाओ के वारे में पूछा गया। उसने अपने पति तथा पति के परिवार की ओर से की गई अपनी उपेक्षा की वहुत शिकायत की। उन लोगो ने उसे विश्वास दिलाया कि वे उसे हमेशा चिट्ठी लिखते रहे। उसने कहा कि मुझे कभी कोई चिट्ठी नही मिली। वदचलनी की सव अफवाहें विल्कुल वेवुनियाद थी। फिर उसने उस अधिकार-पत्र के वारे में वताया, जिसपर हस्ताक्षर करने के लिए

उसे लाचार किया गया था। कानूनी सलाह ली गई और अधिकार-पत्र को रद्द करने तथा सम्पत्ति की वापसी के लिए दावा किया गया। मा का तो अब प्रश्न ही नहीं उठता था, क्योंकि वह अपनी संपत्ति अपनी पुत्री को सौंप चुकी थी।

मेरे खयाल में यह एक ऐसा मामला था, जिसमें दो मत होने संभव ही न थे, लेकिन ज़िंदगी बहुत कुछ सिखाती है। चाचा ने अधीरतापूर्वक कहा कि वह अधिकार-पत्र भतीजी की पूरी-पूरी मंशा से लिखा गया है और वह उससे बंधी हुई है। चाचा को एक ऐसा न्यायाधीश भी मिल गया, जिसने कुछ गवाहों की शहादत लेकर मुकदमा खारिज कर दिया।

इलाहाबाद हाई कोर्ट में अपील की गई और मुझे लड़की की ओर से नियुक्त किया गया। आमतौर पर अदालत में मैं अपनी भावनाओं को अपने ऊपर हावी न होने देना ही सदा से उचित समझता आया हूं, किंतु इस मौके पर इस निर्मम दुष्टता ने मुझमें इतना क्षोभ भर दिया, जिसे छिपाना मेरे लिए संभव न था। मेरा खयाल है कि यह क्षोभ बिल्कुल सच्चा होने से न्यायाधीशों को भी छू गया। किसी प्रकार के लंबे-चौड़े विवाद का न वहां प्रश्न था और न आवश्यकता ही। मैंने मात्र सचाई बयान कर दी और फिर उस अधिकार-पत्र को पढ़ सुनाया। न्यायाधीश सन्न रह गये। यह सब कितना अजीब और कितना अस्वाभाविक था! पेशी थोड़ी देर में खत्म ही हो गई और न्यायाधीशों ने चाचा के वकीलों को बड़ी लताड़ सुनाई। अपील मंजूर की गई और न्यायाधीश के पास मामला दुबारा भेज दिया गया, ताकि इस दौरान में चाचा द्वारा प्राप्त किराये और मुनाफे की रकम निर्धारित की जा सके। इस मुकदमे ने एक न्यायाधीश, स्वर्गीय श्री लालगोपाल मुखर्जी पर इतना प्रभाव डाला कि जब मुकदमा दुबारा सामने आया और मालूम हुआ कि न्यायाधीश ने रकम की रकम में फिर गोल-माल किया है, तो न्यायाधीश मेरी इस बात से तुरन्त सहमत हो गये कि यह एक ऐसा मामला है,

जिसमें मुआवजा ऐसा मिलना चाहिए जो चाचा-जैसो के लिए पाठ रहे। प्रत्येक अनुमान चाचा के विरुद्ध होना चाहिए और लडकी को ज्यादा-से-ज्यादा लाभ पहुचाना चाहिए। इस प्रकार वह मुकदमा खत्म हुआ।

: १३ :

मानव-जीवन दांव पर

शासन-अधिकारियो की आचरण-संबधी शिकायतो की न्याय-विभागीय जाच के लिए सार्वजनिक माग देखकर मुझे कभी-कभी बडा अचभा होता है। लेकिन यह भी कोई कम सतोष की बात नही कि अगर ऐसी किसी जाच-कमेटी का अध्यक्ष न्याय-विभाग का उच्च-अधिकारी हो, तो जनता के विश्वास में भारी वृद्धि हो जाती है, क्योकि जाच-पडताल के लिए सार्वजनिक न्याय-विभागीय जाच की विधि ही सर्वोत्तम मानी जाती है। सारी कार्रवाही जनता के सामने होती है, सभी सबधित दल गवाहो की छान-बीन और उनसे जिरह कर सकते है। इसके अलावा हर सबधित व्यक्ति को घटना-विषयक अपना बयान देने का मौका मिलता है, और अगर किसी रूप में उसका नाम उपस्थित प्रश्न में आ जाता है, तो वह अपनी सफाई पेश कर सकता है। इस पर भी, अदालतो में वकालत के अपने लबे अनुभव के आधार पर कह सकता हू कि जाच की इस विधि का अनिवार्यत यह नतीजा नही होता कि जाच-अधिकारी ने बिल्कुल सही तथ्य को ही खोज निकाला है। फिर भी यह सच है कि इस तरह की जाच से सही परिणामों पर पहुचने की सुविधा हो जाती है। गवाहो को देखने और सुनने के अलावा अदालत को एक और बडा भारी लाभ होता है। वह ऐसे अनुभवी वकीलो की युक्तियो को सुनती है, जो हर बयान के मजबूत और कमजोर नुक्तो को उसके सामने पेश करते है। लेकिन इन सब लाभो के बावजूद वकीलो का यह सामान्य अनुभव है कि

किमी तथ्य के मामूली मे प्रश्नो तक के बारे मे न्याय-विभागीय निष्कर्ष कभी-कभी इतने भीषण रूप मे भिन्न होते है कि मामान्य आदमी के आश्चर्य की सीमा नही रहती। मान लीजिये, एक फामी के दड के खिलाफ आप दो या दो से ज्यादा जजो की वैंच के सामने अपील पर बहम करते हैं। सारा मामला तीन या चार गवाहो की विश्वस्तता और उस मामले की परिस्थितियो के निष्कर्षों पर ही निर्भर करता है, लेकिन हम देखते है कि अत्यधिक अनुभवी जज भी ऐंमे परिणामो पर पहुचते है, जो सर्वथा विपरीत होते हैं।

एक के बाद एक अदालत मे अपीलो का जो क्रम चलता है, उनमे न केवल यह कि न्याय-विपयक मतो के कारण सघर्ष उत्पन्न होता है, वल्कि कभी-कभी न्याय का खून भी होता है। मुझे ऐसे भीषण अनुभव भी हुए है, जिनमे आदमियो की जान के साथ जुआ खेला जाने लगा था। अगर कही एक ही जज को उन मामलो का फैमला करना होता, तो निश्चित था कि वे फामी पर लटक जाते। किंतु घटनावश मामला एक और जज के सामने चला गया, जहा वे फासी के तख्ने से ही नही बचे, वल्कि पूर्णतया रिहा भी हो गये। ऐसे दो मामलो का मै यहा उल्लेख करूगा, जिनमें एक तो मेरी वकालत शुरू करने के दिनो मे हुआ था और उसने मेरे दिल पर इतना गहरा आघात किया था कि उसका आतक मेरे समूचे वकालत के जीवन पर छाया रहा।

१९१४ की गर्मियो के दिन थे और मै अभी इलाहाबाद हाई कोर्ट में नया-नया ही गया था। एक दिन मैंने चार्ल्स रास आल्स्टन को एक अदालत मे फौजदारी अपील करते देखा। यह अपील हाई कोर्ट के दो बहुत ही अनुभवी जजो, श्री जस्टिम विलियम टडवाल और श्री जस्टिस मुहम्मद रफीक के सामने पेश हुई थी। आल्स्टन भारत के गण्य-मान्य वकीलो मे थे। दीवानी कानून मे तो उनका बहुत ही व्यापक ज्ञान था। फौजदारी मामलो मे भी वह अग्रणी थे और अदालत के सामने अपने मामले को आश्चयजनक कानूनी चतुराई के साथ पेश करते थे।

किसी मामले के महत्वपूर्ण नुक्ते को वह सहज-ज्ञान से ही पकड लेते थे और उनके बोलने तथा व्यक्त करने के ढंग से उनकी वकालत का प्रभाव बहुत बढ जाता था। बोलते समय वह थोडे शब्दो का प्रयोग करते थे, लेकिन उनका बोला हुआ प्रत्येक शब्द सुचारू रूप से चुना होता था और सुननेवालो को लगातार प्रभावित करता था। जो मामला उन्होंने अदालत के सामने पेश किया था, वह था तो छोटा ही, लेकिन उसके तथ्य बडे अजीब थे।

एक गाव के बाहरी हिस्से में एक कुआ था और एक दिन सवेरे ही सारे गाव में यह बात फैल गई कि एक औरत अपनी चौदह बरस की लडकी के साथ कुए में गिर पडी है। बहुत से लोग वहा एकत्र हो गये और उन्हें कुए से निकालने का तत्काल यत्न किया गया। किसी तरह की मदद पहुचने से पहले ही लडकी तो मर गई थी, लेकिन मा को जीवित ही निकाल लिया गया। उसके कुए से बाहर आते ही लोगो ने उससे पूछा कि क्या हुआ था। कहा जाता है कि उसने फौरन वही, बिना किसी सकोच के, कुए के किनारे पर खडे दो आदमियो की ओर इशारा किया और बोली—"इन्ही दोनो ने मुझे और मेरी लडकी को मार डालने के लिए कुए में धकेल दिया था।" समाचार पाते ही पुलिस घटनास्थल पर पहुच गई और जाच के बाद उसने दोनो आदमियो को हत्या के अपराध में गिरफ्तार कर लिया। इस्तगासे का कहना था कि यह औरत भिखारिन थी और गाव में अपनी लडकी के साथ बडी दयनीय दशा में जीवन बिता रही थी। दोनो अभियुक्तो के साथ एक दिन इसका कुछ झगडा हो गया था और उसी सवेरे उसने गुस्से में यह ऐलान किया था कि इन्होने मेरा जीना दूभर कर दिया है और वह इस गाव को छोडकर चली जायगी। इतना कहकर उसने अपने थोडे-से सामान को इकट्ठा किया और गाव से रवाना हो गई। दोनो अभियुक्त उसका पीछा कर रहे थे। इसके बाद बताया गया कि जब वह कुए के पास से निकल रही थी तो उन्होंने उसको और उसकी बेटी को मार

डालने की इच्छा से कुए में धकेल दिया। वास्तविक घटना के बारे मे प्रत्यक्ष गवाह कोई नहीं था, लेकिन गाव मे जो झगडा हुआ था, उसके एक या दो गवाह जरूर थे।

सैशन जज ने अभियुक्तो को दड देते हुए अपने फैसले मे लिखा— "इस औरत को गवाही के कटहरे में देखकर और उसकी स्पष्ट-वादिता तथा उसके सरल आचरण से मैं इतना प्रभावित हुआ हू कि उसकी गवाही के हर शब्द पर मुझे यकीन था और उसकी गवाही के समर्थन के बिना भी अभियुक्तो को सज़ा देने के लिए तैयार था।" जब वह वस्तुत सज़ा सुनाने की सीमा पर पहुचा, तो उसने अत मे लिखा— "यद्यपि मैं इस औरत की गवाही पर यकीन करता हू, तथापि इस तथ्य को अपनी आखो से ओझल नहीं कर सकता कि इस अपराध को साबित करनेवाली यह एकाकी गवाह है। इसलिए, विचार मे हत्या के अपराध के लिए मृत्यु-दड को कम करके आजीवन कारावास की सज़ा देना अधिक उपयुक्त जान पडता है।"

आल्स्टन ने इसी सज़ा के खिलाफ अपील दायर की थी। उन्होने बहुत सक्षेप में, किंतु बडे शक्तिशाली ढग से अपना मामला पेश किया था। उनका तर्क था कि झगडे की बात तो निश्चय ही सभव है, और यह भी हो सकता है कि जब यह औरत गुस्से मे गाव से बाहर जा रही थी, तो ये दोनो आदमी उसका पीछा कर रहे हो। लेकिन उसने सुझाव दिया था कि क्रोधी स्वभाव की औरतो का अपने-आपको कुआ मे गिरा लेना भी असामान्य नहीं है। ऐसी दशा मे यह भी तो सभव है कि इस औरत ने क्रोध और आवेश मे अपनी बनतर आपो-आपको और अपनी लडकी को कुए में गिरा लिया हो, और जब वह कुए से बाहर निकाली गई, और उसने दोनो अभियुक्तो को वहा देखा, तो उन्हे देखते ही डर कर उसने इन्ही पर इल्ज़ाम लगाना बेहतर समझा हो। लेकिन दोनो विद्वान जजो पर इसका तनिक भी प्रभाव न पडा, बल्कि वे तो क्रोध मे उबल उठे। मैंने जजो को इतने आवेश मे कभी नहीं देखा था। श्री जस्टिस टडवाल

तो आपे मे वाहर हो गये और ऊचे स्वर में वोले—"मिस्टर आल्स्टन, आपके मुवक्किल वडे निर्दयी, जगली, घृणा के पात्र हैं। मैं आपको वतलाता हू कि उनकी मशा क्या थी। वे उम औरत का पीछा नही कर रहे थे।' वल्कि उसकी लडकी पर अधिकार करना चाहते थे। इमीलिए उन्होने मा का जीवन दूभर कर दिया था। जव उसने इन्कार किया तो वे जान-वूझकर उसे ही नही, वल्कि दोनो को मार डालना चाहते थे।" और-तो-और, न्यायाधीश सैशन जज पर भी मृत्यु-दड न देने के लिए विगडे। उनका खयाल था कि जज अपने कर्तव्य-पालन में मतर्क नही रहा और इसके लिए वह दोपी है। जहा तक मुझे याद है, ये जज-महोदय प्रातीय न्याय-विभाग में थे, और उन दिनो हाई कोर्ट में जजो का यह आम खयाल था कि भारतीय न्याय-विभाग के अफसरो को जव नौकरी के अतिम दिनो में तरक्की देकर ज़िले का सैशन जज वनाया जाता है तो ये लोग मृत्यु-दड देने में सकोच करते हैं। जस्टिस टडवाल के कहने का वास्तविक आशय यही था।

दोनो जजो ने वार-वार यही विचार प्रकट किया कि वे इस थोडी सजा को स्थिर रखने में सहमत नही हो सकते। ऐसे भीषण मामले में तो मृत्यु-दड ही उचित है। इसमें सदेह नही कि वे खुद ही यह सजा दे देते, लेकिन कानून के अनुसार वे ऐसा नही कर सकते थे। किसी फौजदारी अपील में भारतीय हाई कोर्ट को अपील खारिज करने का ही नही, वल्कि सज़ा को वढाने तक का भी अधिकार है, लेकिन फौजदारी के कानून के अनुसार जव किसी सज़ा को वढाने की तजवीज की जाती है, तो अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप में सूचना देनी पडती है और ऐसी वृद्धि के लिए कारण प्रकट करने का समुचित अवसर प्रदान करना पडता है। है तो यह कोरी औपचारिकता ही, लेकिन इसका होना जरूरी होता है। फलत जजो ने इस आदेश के साथ आज्ञा निकाली कि अपील करनेवालो के नाम नोटिस जारी किया जाय और वे कारण वतायें कि उन्हें मृत्यु-दड क्यो नही दिया जाना चाहिए। अभियुक्त जेल में थे। उन्हें जेल में नोटिस मिल

ही जाना था, और इसका दूसरा मतलब यह भी था कि यह मामला कुछ समय के लिए स्थगित हो गया ।

लगभग दो सप्ताह बाद की बात है । मै एक और अदालत मे बैठा था—यह थी श्री जस्टिस चेमियर और श्री जस्टिस पिग्गट की अदालत। दोनो बडे पुराने और अनुभवी जज थे । तभी मैने सुना कि पेशकार ने इसी अपील की पेशी की आवाज दी । फौरन ही मेरे कान खडे हो गये ।

सरकारी वकील श्री मैलकमसन खडे हुए और बडे सहज स्वर मे बोले—"श्रीमान कही कोई भूल हुई जान पडती है। ऐसा लगता है कि गलती से यह मुकदमा आपके सामने पेश हो गया है । अदालत न० २ के सामने इस पर पूरी तरह बहस हो चुकी है और अब सिर्फ दड के निर्णय का प्रश्न शेष है । समय बचाने की दृष्टि से क्या श्रीमान यह आदेश कर सकेगे कि इस मुकदमे को उस अदालत के सामने पेश कर दिया जाय ?"

ज० चैमियर ने मि० मैलकमसन से कहा—"क्या यह तरीका नही है कि जब एक अदालत दड-वृद्धि का नोटिस जारी करती है, तो आखिरी फैसले के लिए मुकदमा दूसरी अदालत मे पेश किया जाता है ?"

मैलकमसन बोले—"नही जनाब, ऐसा कोई तरीका या रीति नही है । हर रोज ऐसा होता है । वही अदालत नोटिस जारी करती है और वही अतिम निर्णय भी सुनाती है ।"

चेमियर बोले—"अगर ऐसा नही है तो,मै समझता हू कि ऐसा होना चाहिए । खैर, जो कुछ हो चुका, उसे छोडिये । अब तो मुकदमा हमारे सामने पेश हो गया है । हम ही इसे सुनेगे और इसका फैसला करेगे ।"

विद्वान जजो ने अपील सुनी और गवाहियो को भी देख गये । तथ्य भी थोडे ही थे और गवाहिया भी बहुत थोडी थी । बस एक घटे के अदर-अदर उन्होने यह फैसला लिखाया कि अभियुक्तो के विरुद्ध हत्या का अपराध साबित नही होता और वे उन्हे रिहा करने की आज्ञा देते है ।

यह सब मेरी उपस्थिति में हुआ था और मेरे कानो ने इस फैसले

को सुना था। न्याय-सबधी इस बुद्धिमानी पर मैं आश्चर्यचकित था और साथ ही मैंने दो मनुष्यो की जानो से होते खिलवाड को भी अपनी आखो मे देखा था। कई दिन तक इस फैसले का मुझ पर असर रहा। इसके अलावा जब मैंने खुद भी फौजदारी का काम आरभ किया, तो जिन मुकदमो में सामान्य कैद की सजा होती थी, उनकी अपील करने में मैं सकोच करता था, क्योकि सजा में बढती का सवाल मुझे सदा परेशान कर देता था। लेकिन इतने पर भी एक ऐसे ही मामले के खिलाफ मुझे अपील करनी पडी और मुझे वैसी ही यातना में से निकलना पडा।

एक दिन शाम के वक्त एक डाक्टर मेरे दफ्तर में आया। वह प्रातीय चिकित्सा-विभाग में नौकर था। बडा खूबसूरत जवान था। उसने बताया कि हमारे परिवार के पास कुछ जमीन है। इन जमीनो के काश्तकारो के साथ पिताजी का कुछ झगडा हो गया था और उन्होंने गोली चलाकर उनमें से एक को घायल कर दिया। इस अपराध में उन्हें तीन वर्ष कैद की सजा मिली है। इतना कहकर उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं उसके पिता की अपील कर सकूगा? जैसे ही मैंने सजा सुनी, मैंने पूछा—"कोई मरा?" उसने उत्तर दिया—"घायल आदमी मर गया।" पहला खयाल जो मुझे आया, और जिसे मैंने प्रकट भी किया था, कि इस अपील के लिए इन्कार कर दू। जिस गोली चलाने का नतीजा एक जान की क्षति हो, वह हत्या ही तो है और तीन बरस की कैद की सजा तो बहुत ज्यादा नही है। लेकिन वह बडी आशा-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखता रहा और बोला कि आप कम-से-कम सैशन जज के फैसले को तो पढ लें। मैंने पढा। यह साफ था कि सैशन जज जिस नतीजे पर पहुचे थे, उससे उन्हें साफ रिहा कर देना चाहिए था। अभियुक्त ने आत्मरक्षा के अधिकार की सफाई दी थी। कानून इस बारे में साफ कहता है कि अगर जान पर बन आये या जान का खतरा हो, तो आप शक्ति का प्रयोग कर सकते है, लेकिन प्रयुक्त शक्ति परिस्थिति की अनिवार्यताओं से बढकर नही होनी चाहिए। जज इस नतीजे पर पहुचा था कि अभियुक्त अपने ऐसे काश्तकारो में घिर गया था, जिनके पास लाठिया थी,

और जो उसे मार डालने की धमकिया दे रहे थे। ऐसी दशा मे अभियुक्त केवल अपनी बदूक के इस्तेमाल से ही अपनी रक्षा कर सकता था, क्योकि उस समय उसके हाथ मे दूसरी कोई वस्तु नही थी। लेकिन गोली दागते हुए उसने सब महत्वपूर्ण अगो की उपेक्षा की और टागो के निचले भाग को अपना निशाना बनाया। बहुत सभव था कि यह घाव जान-लेवा भी साबित न होता, बशर्ते कि घायल आदमी थानेदार के घटना-स्थल पर पहुचने और स्वय उस जगह को देख लेने तक महज मूर्खतावश पुलिस कास्टेबल के साथ अस्पताल जाने से इन्कार न कर देता। ऐसा होने से १२ घटे से भी अधिक का समय लग गया और वह आदमी केवल रक्त बहते रहने के कारण ही मर गया। इस आधार पर अभियुक्त की यह सफाई, कि उसने आत्म-रक्षा मे ही गोली चलाई थी, कानून की नज़र मे न्याय्य थी, लेकिन सैशन जज ने यह स्वीकार करते हुए कि परिस्थिति-वश निजी रक्षा का अधिकार उत्पन्न हो गया था, अपेक्षाकृत लापरवाही के साथ लिखा था कि गोली दागते हुए अभियुक्त ने उचित सावधानी नही बरती और इसलिए वह निजी रक्षा के अपने अधिकार को लाघ गया। तदनुसार वह हत्या के अपराध से कम का दोषी तो अवश्य है ही। फलस्वरूप उसे तीन वर्ष की कैद का दड दे दिया। मेरी राय मे यह फैसला टिकनेवाला नही था। मै सहमत हो गया और मैने अपील दायर कर दी।

मई १९३८ की गर्मियो की छुट्टियो से पहले यह श्री जस्टिस उमाशकर बाजपेयी के सामने पेश हुई। उधर मृतक के भाई की ओर से वकील ने सजा बढाने की प्रार्थना करते हुए दरख्वास्त दी थी। अपील के प्रारभ मे ही मैने तथ्यो को प्रकट कर दिया और माग की कि विद्वान सैशन जज को निजी जानकारी के आधार पर ही अभियुक्त को बरी कर देने का आदेश दे देना चाहिए था। मैने सारा फैसला पढा, जो बहुत लबा था। थोडे-से विवाद के बाद विद्वान जज ने मेरी माग के साथ सहमति प्रकट की और सरकारी वकील को जवाब देने के लिए कहा। सरकारी वकील ने विद्वान जज से प्रार्थना की कि वह मिसरीलाल चतुर्वेदी

को इस्तगासे का मामला पेश करने की इजाजत दें, जिन्होंने सजा बढाने की दरख्वास्त का पूरी तरह से अध्ययन कर रखा है। इस पर श्री चतुर्वेदी ने मुकदमे पर वहस की। उन्होंने वडी योग्यता और चतुराई के साथ जवाव दिया और यह कहते हुए मेरे पक्ष को एकदम पलट दिया कि सैशन जज की सारी जानकारी गलत थी। उस वात का यहा प्रश्न ही नही कि अभियुक्त को उद्धत काश्तकारो के जमघट ने घेर लिया था और उसके मारे जाने का खतरा हो गया था। वस्तुस्थिति यह है कि पोस्ट-मार्टम जाच, घाव की दिशा तथा अन्य गवाहियो से यह स्पष्ट है कि काफी फासले पर से मृतक पर पीठ की दिशा से सभवत तव गोली चलाई गई जवकि वह अभियुक्त से दूर भागा जा रहा था। जस्टिस वाजपेयी इस तर्क से वहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कागजात को गौर से देखा और साफ कहा कि मेरे खयाल में मि० चतुर्वेदी सही कहते हैं।

दोपहर के भोजन का वक्त होने को था। वह मुझसे बोले—"डा० काटजू, यह तो वडा गभीर मामला है। मै समझता हू कि श्री चतुर्वेदी ने इसकी विल्कुल सही वात पकड ली है और ऐसा मान लेने पर आप जानते है कि जान के वदले जान का सवाल होगा। मै इस सजा को इसी तरह रहने की मजूरी नही दे सकता।" मै तो सन्न रह गया, मेरी आखो के सामने श्री आल्स्टन की मूर्ति आगई और मन-ही-मन मै इस अपील की सहमति के लिए अपने को कोसने लगा। आध घटे के लिए अदालत उठी। अभियुक्त भी अदालत में हाजिर था। वडा विशालकाय व्यक्ति था वह। मै उसे एक ओर ले गया और उसे वताया कि विल्कुल आशा नही दिखाई देती। इसके अलावा, जहा तक मेरा खयाल है, अगर तीन ही वरस में छुटकारा हो जाय तो अपने को वडा भाग्यशाली समझो। मैंने यह भी कहा कि जज तो सजा की वढती के लिए नोटिस जारी करने पर तुला हुआ जान पडता है, और क्या तुम इसका सामना करने को तैयार हो। अगर तुम चाहो तो मै जज को यथाशक्ति नरम करने की कोशिश करूगा और उससे अनुरोध करूगा कि अपील को खारिज कर दिया जाय और अधिक कार्रवाई भी न की

जाय, लेकिन इसमे खतरा भी हो सकता है। अभियुक्त की वह शक्ल आज भी मेरे सामने आ जाती है। वह कितना भयभीत था ! कुछ रुककर वह बोला--"जो-कुछ मेरे लिए अच्छा लगे, वह आप करें। मैं तीन वरस की कैद काटने को तैयार हू। मेरे भाग्य में यही है।"

इसके थोडी देर वाद अदालत फिर से बैठी और श्री जस्टिस वाजपेयी मुझसे बोले--"डा० काटजू, खाने की छुट्टी के दौरान मे इस मामले पर विचार करता रहा हू और अब मैंने निश्चय कर लिया है कि दड-वृद्धि का नोटिस जारी होना चाहिए। इस सजा को मैं इस रूप में नही छोड सकता। यह तो बहुत ही थोडी है।" मैंने यह कहकर उन्हे भरमाने की चेष्टा की कि दो दिन तो पहले ही इस मामले ने ले लिये है और ऐसा नोटिस जारी करने में व्यर्थ ही सार्वजनिक समय की वर्बादी होगी। अगर इस मामले को जहा-का-तहा ही रहने दिया जाय, तो क्या इतने मे ही न्याय की पूर्ति नही हो जायगी ? लेकिन जस्टिस वाजपेयी अपनी राय पर अटल थे और उन्होने अपनी आज्ञा लिखा दी। अमोम काकुल की-सी मेरी दशा हो गई और लगा कि उन्होने मेरी इस निराशापूर्ण दशा को भाप लिया। वह बोले--"डा० काटजू, सामान्य ढग से यह मुकदमा छुट्टियो के दौरान में लगभग ६ सप्ताह वाद फिर से मेरे सामने पेश होता, लेकिन इससे आपकी छुट्टियो के दिन वर्वाद हो जायगे। इसलिए, मैं अपने आदेश मे यह लिखे देता हू कि यह मामला उन दो जजो की बैंच के सामने पेश किया जाय, जिसका सदस्य मैं नही हू। इससे आपकी छुट्टियो का समय वर्वाद नही होगा।"

इस कृपा के लिए मैंने उनका धन्यवाद किया। इससे पूर्व जीवन में मुझे ऐसा भीषण अनुभव कभी नही हुआ था और मैं यह मानता हू कि यद्यपि मैं इलाहावाद से पुरी तो चला गया, तथापि दड-वृद्धि के नोटिस की याद के कारण मेरी छुट्टियो के वहुत-से दिन परेशानी में निकले।

अगस्त मे अदालत खुलने पर जस्टिस हैरिस और जस्टिस रिछपाल सिंह के सामने यह अपील पेश हुई और मेरे खिलाफ थे वही

सरकारी वकील और श्री चतुर्वेदी । उन्ही आधारो पर मैंने मामला पेश किया और तथ्यो को प्रकट करने के बाद अत में विद्वान जजो के सामने फैसला रख दिया । जैसे ही मैंने बोलना समाप्त किया, श्री जस्टिस हैरिस बोले—"बेशक, यह सब गलत है । इसमें सजा देना ही गलत है । यह मुकदमा हमारे सामने आया कैसे ? इसमें तो केवल तीन ही बरस को सजा है । इसे तो किसी अकेले जज के सामने ही पेश होना चाहिए था ।"

मैंने कुछ-कुछ चतुराई के साथ उत्तर दिया कि जस्टिस श्री वाजपेयी ने यह खयाल करके दड-वृद्धि का नोटिस जारी किया था कि अगर दोनो जज इस निष्कर्ष पर पहुचे कि सजा देना ठीक है तो सभव है, उन्हें यह सजा बहुत ही कम जचे । लेकिन विद्वान जज तो बहुत ही असतुष्ट थे और बोले—"यह मामला बिल्कुल सीधा है । इसमें सजा देना सर्वथा गलत है ।" इतना सुनते ही मैं तत्काल बैठ गया । अभियुक्त को साफ बरी कर दिया गया ।

: १४ :

मुवक्किल का भाग्य

अपनी वकालत के पिछले ४० बरसो पर जब मैं निगाह डालता हू, तो मुझे इस अनिश्चय के बारे में बेहद आश्चर्य होता है, जो किन्ही मामलो के निर्णय के साथ सदा जुडा रहता है और जिसपर एक व्यक्ति का जीवन, स्वाधीनता या सपत्ति निर्भर होती है । इन पक्तियो को लिखते समय दर्जनो ऐसे मामले याद हो आते हैं, जिनमें अदालती निर्णय अतत एक बहुत ही क्षुद्र वातावरण द्वारा प्रभावित हो गया, जिसे वकील तक भी महत्वपूर्ण नही समझते थे । बहुधा कैदी का भाग्य और असभावित घटना ही उसे स्वाधीनता दिलाने का कारण बन जाते है । ऐसा ही एक मामला विशेष रूप से उल्लेखयोग्य है, जिसमें अपील की पेशी के दौरान में एक असाधारण और कल्पनातीत घटना-क्रम उपस्थित

हो गया। [illegible]

[illegible] है। [illegible] पुलिस-चौकी है, [illegible] और उसकी [illegible] है।

एक दिन प्रातः [illegible] दो सिपाही [illegible] के प्रवेश-द्वार पर [illegible]। [illegible] पर निकलते हुए देखा। [illegible] और अपने साथी से बोला—

"[illegible] साइकिल पर जाते हुए इस आदमी को तुमने देखा ?"

"क्यों क्या बात है ?" उसने पूछा।

"वह एम० जे० है, मशहूर क्रान्तिकारी। वह फरार है। मुझे इसका पक्का यकीन है और हम उसकी बहुत जरूरत है।"

"तुम उसे कैसे जानते हो ?"

"वह यूनिवर्सिटी का छात्र है और हम दोनो स्कूल मे साथ-साथ पढे है। मुझे इस बारे मे तनिक भी सदेह नही। यह वही है।"

इस पर इन दोनो ने, जिनके पास अपनी साइकिले थी, तुरत एम० जे० क्रातिकारी का पीछा करना शुरू कर दिया।

कुछ ही मिनटो की दौड के बाद वे हाईकोर्ट के सामने उसके समीप जा पहुचे, जहा कहा जाता है कि एम० जे० फौरन रुक गया और अपनी साइकिल से उतरकर ऊचे स्वर मे बोला—"तुम मेरा पीछा क्यो कर रहे हो ? मुझे क्यो नही जाने देते ?" और जब उसने देखा कि वे पीछा नही छोडते, तो उसने कमीज की जेब से पिस्तौल निकाली और उनमे से

एक की टाग पर गोली चलाई। वह उस समय कमीज और निकल पहने हुए था। इस प्रकार थोडे समय के लिए पीछा करने का अत हो गया।

अव एम० जे० अपनी साइकिल पर सवार होकर चल पडा, लेकिन वह साइकिल अच्छी नही थी। उसमें पकचर हो गया था। इसलिए उसने दौडना शुरू कर दिया। इधर खुफिया पुलिस के सिपाही ने अपने घायल साथी को किसी दूसरे के हवाले किया और वह भी उसके पीछे दौडा। इसके वाद इस सडक से उस सडक और उससे इस पर—इस प्रकार काफी देर तक पीछा किया गया। तव, कहा जाता है कि एम० जे० एक सरकारी डाक वगले के अहाते में घुस गया और डर के मारे वह एक पाखाने में जा छिपा।

इस वीच वहुत-से लोग जमा हो गये, लेकिन पाखा` में जाते हुए हर कोई डरता था, क्योकि एम० जे० की जेव में पिस्तौल थी और प्रत्येक सशक था कि न जाने कव क्या कर बैठे। इसलिए पुलिस सिपाही ने डाक वगले को घेर लेने की सोची और वही उसने किया भी। उसने पुलिस सुपरिटेंडेंट को फोन किया कि सहायता के लिए पुलिस भेजी जाय। थोडी ही देर वाद पुलिस वहा पहुच गई। इस वीच, एम० जे० पाखाने से वाहर निकला और सवकी नजरो के सामने हाथ में पिस्तौल लिये दौडता हुआ मैदान पार करके चला गया।

चौहद्दी दीवार पर से उसने पिस्तौल फेंक दी और वह दीवार के दूसरी ओर फाद गया। सडक को पार करके वह एक और अहाते में चला गया, वहा चद ही मिनटो वाद, पीछा करनेवालो ने उसे गिरफ्तार कर लिया। लेकिन कितने आश्चर्य की वात थी! गिरफ्तार किया हुआ आदमी धोती और कुर्ता पहने था। कमीज और निकर जैसे जादू के जोर से लोप हो गये थे।

एम० जे० की इस सारी दौड-धूप के विषय में स्पष्ट प्रमाण एव स्वतत्र गवाहिया मौजूद थी। साथ के मकान मे जो प्रतिष्ठित व्यक्ति रहते थे, उन्होने सौगध खाकर कहा कि मैंने एम० जे० को दीवार से

[illegible]

[illegible]

अभियुक्त पर [illegible] —[illegible] की चेष्टा और [illegible] हत्या-प्रयत्न [illegible] । [illegible] जज [illegible] । अभियुक्त की ओर से [illegible] सफाई पेश की गई थी । उसने यह स्वीकार किया था कि वह फरार है और कई महीनों से गिरफ्तारी से बच रहा है । उसने यह भी [illegible] कि वह [illegible] की निगाह में बना हुआ [illegible] था । उसने [illegible] इनकार किया और कहा कि उस घटना के साथ मेरा [illegible] नहीं । मैं धोती-कुर्ता पहने हुए सड़क पर जा रहा था कि [illegible] पुलिस ने मुझे पकड़ा और यह झूठा मामला मेरे विरुद्ध खड़ा कर दिया । इस मामले से सर्वथा अनजान हूँ । उसने पाखाने में और मैदान के उस पार जाने और दीवार फाँदने तक से इनकार किया । उसने कहा कि पिस्तौल से भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं और न मैंने उसे फेंका था ।

जूरी ने विस्फोट-कानून के अधीन उसे 'निरपराध' बताया । इसका आशय यह था कि अभियुक्त के कब्जे में पिस्तौल नहीं थी । इस निष्कर्ष के आधार पर स्वभावतः यह परिणाम निकलता है कि वह खुफिया पुलिस के सिपाही पर गोली नहीं चला सकता था और असेसरों के रूप में उन्होंने यही कहा भी था ।

सेशन जज की चाहे जो भी राय रही हो, पर वह बड़ी कठिनाई में था । पिस्तौल-सम्बन्धी अपराध के बारे में जूरी के मत को अस्वीकार करने का उसे कोई कारण नहीं दिखाई देता था और ऐसी अवस्था में, एक जज के नाते वह भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि दूसरा अपराध भी निराधार हो जायगा । तदनुसार उसने अभियुक्त को बरी कर दिया ।

इस रिहाई के विरुद्ध सरकार की ओर से हाई कोर्ट में अपील की गई। यह अपील हत्या करने की चेष्टा के अपराध के सबंध में थी। मैं अभियुक्त की ओर से पेश हुआ था।

यह अपील दो विद्वान जजो श्री मुल्ला और श्री यॉर्क के सामने पेश हुई। सरकारी वकील ने दो दिन तक बहस की और यह आभास हुआ कि जज निश्चित रूप से पुलिस के बयान को मजूर कर लेंगे।

जब मुझे जवाब देने के लिए कहा गया, तो मैंने इन कानूनी प्रश्न पर बोलना शुरू किया कि जिस शस्त्र के रखने के अपराध में अभियुक्त को हत्या करने की चेष्टा का दोषी ठहराया गया है, उसके अधीन वह दोषी करार नही दिया गया था और न ही उसके पास वह शस्त्र था। लेकिन मुझे लगा कि मैं अपने पक्ष को मजबूती से पेश नही कर सका। जजो का यह दृष्टिकोण था कि दोनो अपराध अलग-अलग हैं और एक-दूसरे से स्वतत्र हैं। यह सभव था कि अभियुक्त दोषी न हो और इसलिए पिस्तौल रखने-सबधी अपराध में बरी किया गया हो, किंतु वह युक्ति प्रस्तुत अपील में हस्तक्षेप नही कर सकती।

अपील के पक्ष में मैंने बार-बार उन सब महत्वपूर्ण तथ्यो पर जोर दिया, जिनके बारे में कोई व्याख्या नही दी गई थी। बाइसिकल पर चढे हुए जिस आदमी ने खुफिया पुलिस के आदमी को गोली मारी थी, उसने कमीज और निकर पहन रखी थी और जिस आदमी को गिरफ्तार किया गया था, वह धोती और कुर्ता पहने हुए था। पुलिस का इस सबध में बहुत ही स्पष्ट प्रमाण था कि पाखाने के हर कोने की पूरी सावधानी के साथ खोज की जाने पर कमीज और निकर कही भी नही मिले। मैंने युक्ति दी कि कमीज और निकर का धोती और कुर्ते में बदल जाना इस्तगासे के मामले को बिगाडता है। यहा मुझे पुन मानना होगा कि इससे भी मेरे पक्ष को कोई बल न मिला। जजो ने कहा कि प्रत्यक्ष गवाही बडी ही विश्वसनीय है। इसलिए उन पर अविश्वास नही किया जा सकता और वस्त्रो की अदला-

बदली भी किसी-न-किसी कारणवश होगी, जिसके बारे में सचमुच ध्यान नहीं दिया गया। उनका मत था—'संभव है, अभियुक्त ने कमीज के नीचे कुर्ता और निकर के नीचे धोती पहनी हो और कमीज और निकर को कहीं फेंक दिया गया हो और उनके लिए उचित खोज न की गई हो।"

बहस करने में काफी वक्त लग गया था और मई के दिन होने के कारण गर्मी भी बड़ी थी। दोपहर के भोजन से पहले अचानक मैंने देखा कि दोनों जज आपस में कुछ बात कर रहे हैं और जस्टिस यॉर्क मुझसे बोले—"डाक्टर साहब, रिकार्ड में अभियुक्त की गति के विषय में जो नक्शा पेश किया गया है उसे मेरे सहयोगी ठीक तरह से समझ नहीं सके। डाक बंगला पास ही तो है। हमारा मौके पर जाकर परीक्षा करना अधिक लाभकारी होगा। हमारे ऐसा करने में आपको कोई एतराज तो नहीं?

पारिभाषिक रूप से इस मामले में यह नया कदम पेश करता था, लेकिन मेरा किसी प्रकार का एतराज उठाना सर्वथा बेसरोकार साबित होता। इसलिए मैं फौरन ही सहमत हो गया। इसी प्रकार सरकारी वकील भी सहमत था। भोजन के बाद हम सब—दोनों जज, सरकारी वकील और मैं—डाक बंगले के लिए रवाना हुए।

वहीं [illegible] चल रही थी। डाक बंगले के पास पहुँचकर हो-जाने पर तो हम सब मोटर से [illegible] और उस रास्ते पर चलने लगे जिस पर से डाक बंगले के [illegible] का [illegible] किया गया था। हम सब [illegible] देखा कि [illegible] तो वहीं [illegible]।

[illegible]

सकने का मार्ग नही था। शरीरिक रूप में किसीके लिए भी इसके ऊपर से होकर जाना असभव था।

जैसे ही मैंने यह देखा, मैंने खयाल किया कि अब मामले का अत हो गया है और मैंने अपने मुवक्किल के भाग्य की सराहना की। मैंने देखा कि जज भी बहुत गभीरतापूर्वक देख रहे हैं और बडे व्यग्र हैं। मैंने धीरे से उनमें से एक से कहा—"जनाब, इस झाडी का मुलाहिजा फरमाइये।" वह चुप रहे, मैं भी और कुछ न बोला। सभी चुप थे। हम लोग हाई कोर्ट लौट आये और जजो ने आसन ग्रहण किया। उसके बाद उनमें से एक ने कहा—"डाक्टर काटजू, अपनी बहस जारी कीजिये।" मैंने जवाब दिया—"जनाब, मुझे और कुछ नही कहना है। मेरे मुव्वकिल का यह अहोभाग्य है कि जनाब को इस मौके की स्वय परीक्षा करने का खयाल हो आया। इस मामले की अनत्यता कदापि इतनी सफाई के साथ प्रकट नही हो सकती थी।" इतना कहकर मैं बैठ गया।

इसके बाद सरकारी वकील की बारी आई और जजो ने उससे कहा—"इन झाडियो के बारे में आपको क्या कहना है?" वहा कहने को कुछ भी नही था। निर्णय सुरक्षित रखा गया और कुछ दिनो के बाद फैसला सुनाया गया, जिसमें विद्वान जजो ने कहा कि उनके खयाल में जहा यह मामला बहुत ही सदेहास्पद और सच भी हो सकता है, वहा इस प्रमाण के आधार पर वह इतना स्पष्ट झूठ था कि कोई सजा नही दी जा सकती थी।

: १५ :

आत्म-सम्मान

एक मित्र के साथ वकालत के जमाने की चर्चा करते हुए अचानक मुझे एक मुकदमे की याद हो आई, जो एक पुलिस-अधिकारी के असाधारण अवस्थाओं में मारे जाने के विषय में चला था। यह कहानी लगभग २५-३०

साल पहले की है और यह दुर्घटना इतनी दिलचस्प थी कि मैं उसे भूल नहीं सका ।

उत्तर-प्रदेश में बांदा एक बहुत ही पिछड़ा हुआ जिला है । जलवायु और धरती की बेहद शुष्कता के कारण वहां के किसान बहुत मेहनती, सहनशील और मजबूत होते हैं । उस जिले के एक थाने में एक बार यह रिपोर्ट की गई कि अमुक नाम के व्यक्ति ने शिकायत करनेवाले की बच्ची के कान के झुमके और नथनी बलपूर्वक उतारकर छीन लिये हैं । उस थाने का दारोगा एक सिपाही के साथ घटना-स्थल पर आवश्यक जांच के लिए उस गांव में गया । शिकायती से पूछ-ताछ करने तथा अन्य जांच-पड़ताल से उसे संदेह हुआ कि वह रिपोर्ट झूठी थी और निराधार आरोप लगा कर अभियुक्त को फांसने का जाल रचा गया था । उसे यह भी सूचना मिली कि शिकायती ने वस्तुतः खुद ही उन कान के जेवरों को उतार लिया था और अपने पड़ोसी के यहां उन्हें छिपा दिया था । तदनुसार थानेदार तत्काल सबंधित जांच के लिए उस पड़ोसी के यहां पहुंचा । घर का मालिक उस समय घर में नहीं था । लेकिन वह रुका नहीं और सिपाही तथा गांव के चौकीदार के साथ घर के भीतर आंगन में जा पहुंचा । जाड़े के दिन थे । आंगन में उसने देखा कि उस आदमी की पत्नी अनाज बीन रही है, जिससे वह पूछ-ताछ करना चाहता था । ब्राह्मण जाति की उस स्त्री ने जब इन अपरिचितों को इस तरह घर में प्रवेश करते हुए देखा, तो वह बहुत ही डरी और उसने घूंघट काढ़ लिया । इधर थानेदार ने [illegible] उससे कहा कि वे झुमके और नथनी कहां हैं, उन्हें फौरन पेश करो । वह चुप रही और थानेदार बार-बार उन्हें [illegible] पेश करने को कहता रहा । आखिर उसने कहा कि उसे इस विषय में कुछ मालूम नहीं । उसका आदमी गांव से [illegible] बाहर [illegible] । [illegible] तलाश की [illegible], लेकिन पता नहीं कैसे थानेदार उसके [illegible] हो उठा और उसने [illegible] कि आदमी के [illegible] । [illegible]

वात वढ गई । वह औरत चिल्लाई और उसका देवर परमसुख, जो साथ के मकान में रहता था, इस हो-हल्ले को सुनकर घटनास्थल पर जा पहुचा । उसने देखा कि थानेदार डाट रहा है और हाथ में वेंत उठाकर उसकी भाभी को पीटने की धमकी दे रहा है । उसने वडी नम्रतापूर्वक शाति रखने को कहा और वोला—"दारोगा जी, आप यह क्या कर रहे हैं ? आप इस तरह इस औरत को क्यो वेइज्जत कर रहे हैं ? कृपा कर वाहर आइये । कुर्सी पर वैठिये । हम सव तो आपके सेवक है । जल्दी ही मेरा भाई आ जाता है और आप उसीसे सारी जाच-पडताल करे । घर के जनानखाने में जाकर आप उस औरत को अपमानित कर रहे है । ऐसा करना तो आपको शोभा नही देता ।" इस पर वह और भी ज्यादा आपेसे वाहर हो गया । वहुत ही गुस्से में आ जाने से उसे अपनी अधिकार-शक्ति पर हमले का खयाल हुआ । उसे लगा कि परमसुख ने हस्तक्षेप करके वडी भारी वेहूदगी की है । इसलिए उसने औरत को तो छोड दिया और परमसुख को अवज्ञा का अपराधी समझ कर डाटा और वुरी तरह गालिया दी । वादा का देहाती इस प्रकार सहज ही गालिया सुन नही सकता था । उसने तत्काल जवाव दिया—"दारोगाजी, कृपा कर अव और गालिया न दीजिये । कृपया होश में रहिये । यह अच्छी वात नही है कि आप गालिया देते जा रहे हैं । आखिर मैंने किया क्या है ?" इससे दारोगाजी और भी गुस्सा हो गये और उन्होने परमसुख को पहले से भी ज्यादा गालिया दी । इसके साथ ही थानेदार ने कडककर सिपाही को आज्ञा दी कि वह परमसुख के डडे लगाये । इस पर परमसुख ने गाव के चौकीदार के हाथ का छोटा-सा डडा छीन लिया और झपट कर दारोगाजी पर एक हाथ जमा दिया । दुर्भाग्यवश यह चोट दारोगा के सिर पर पडी और ऐसे मर्म-स्थल पर, कि थानेदार गिर पडा और वही वेहोश हो गया । इसके वाद दस घटे के अदर-अदर वह मर गया ।

इस भयकर घटना का समाचार आग की तरह सारे गाव में फैल गया ।

साल पहले की है और यह दुर्घटना इतनी विलक्षण था कि मै उसे भूल नही सका ।

उत्तर-प्रदेश मे बादा एक बहुत ही पिछडा हुआ जिला है । जलवायु और धरती की बेहद शुष्कता के कारण यहा के किसान बहुत मेहनती, सहनसील और मजबूत होते है। उस जिले के एक थाने मे एक बार यह रिपोर्ट की गई कि अमुक नाम के व्यक्ति ने शिकायत करनेवाले की बच्ची के सोने के झुमके और नथनी बलपूर्वक उतारकर छीन लिये है । उस थाने का दारोगा एक सिपाही के साथ घटना-स्थल पर आवश्यक जाच के लिए उस गाव मे गया । शिकायती से पूछ-ताछ करने तथा अन्य जाच-पडताल से उसे सदेह हुआ कि वह रिपोट झूठी थी और निराधार आरोप लगा कर अभियुक्त को फासने का जाल रचा गया था । उसे यह भी सूचना मिली कि शिकायती ने वस्तुत खुद ही उन सोने के जेवरो को उतार लिया था और अपने पडोसी के यहा उन्हे छिपा दिया था । तदनुसार थानेदार तत्काल सबधित जाच के लिए उस पडोसी के यहा पहुचा । घर का मालिक उस समय घर मे नही था । लेकिन वह रुका नही और सिपाही तथा गाव के चौकीदार के साथ घर के भीतर आगन म जा पहुचा । जाडा के दिन थे । आगन मे उसने देखा कि उस आदमी की पत्नी अनाज बीन रही है, जिससे वह पूछ-ताछ करना चाहता था । ब्राह्मण जाति की इस स्त्री ने जब इन अपरिचितो को इस तरह घर मे प्रवश करते हुए देखा, तो वह बहुत ही डरी और उसने घूघट काढ लिया । इसपर थानदार न कडककर उससे कहा कि वे बुदे और नथनी यहा है, उन्हे फौरन पेश करो । वह चुप रही और थानेदार बार-बार ऊचे स्वर मे यही कहता रहा । आखिर उसने कहा कि उसे इस विषय मे कुछ भी पता नही । उसका आदमी गाव के कुए से पानी लेने गया है । वह आने ही-वाला है और उसीसे जाच-पडताल की जाय, लेकिन पता नही कैसे, थानेदार इसपर शकित हो उठा और उसने सोचा कि आदमी के बजाय इस औरत से उन जेवरो को हासिल करना आसान होगा । इसलिए उसने उसे धमकाया और सभवत उसे गाली भी दी । स्वभावत इससे

बात बढ गई। वह औरत चिल्लाई और उसका देवर परमसुख, जो साथ के मकान में रहता था, इस हो-हल्ले को सुनकर घटनास्थल पर जा पहुचा। उसने देखा कि थानेदार डाट रहा है और हाथ में बेंत उठाकर उसकी भाभी को पीटने की धमकी दे रहा है। उसने बडी नम्रतापूर्वक शाति रखने को कहा और बोला—"दारोगा जी, आप यह क्या कर रहे हैं? आप इस तरह इस औरत को क्यो बेइज्जत कर रहे हैं? कृपा कर बाहर आइये। कुर्सी पर बैठिये। हम सब तो आपके सेवक है। जल्दी ही मेरा भाई आ जाता है और आप उसीसे सारी जाच-पडताल करे। घर के जनानखाने में जाकर आप उस औरत को अपमानित कर रहे हैं। ऐसा करना तो आपको शोभा नही देता।" इस पर वह और भी ज्यादा आपेसे बाहर हो गया। बहुत ही गुस्से में आ जाने से उसे अपनी अधिकार-शक्ति पर हमले का खयाल हुआ। उसे लगा कि परमसुख ने हस्तक्षेप करके बडी भारी बेहूदगी की है। इसलिए उसने औरत को तो छोड दिया और परमसुख को अवज्ञा का अपराधी समझ कर डाटा और बुरी तरह गालिया दी। बादा का देहाती इस प्रकार सहज ही गालिया सुन नही सकता था। उसने तत्काल जवाब दिया—"दारोगाजी, कृपा कर अब और गालिया न दीजिये। कृपया होश में रहिये। यह अच्छी बात नही है कि आप गालिया देते जा रहे हैं। आखिर मैंने किया क्या है?" इससे दारोगाजी और भी गुस्सा हो गये और उन्होने परमसुख को पहले से भी ज्यादा गालिया दी। इसके साथ ही थानेदार ने कडककर सिपाही को आज्ञा दी कि वह परमसुख के डडे लगाये। इस पर परमसुख ने गाव के चौकीदार के हाथ का छोटा-सा डडा छीन लिया और झपट कर दारोगाजी पर एक हाथ जमा दिया। दुर्भाग्यवश यह चोट दारोगा के सिर पर पडी और ऐसे मर्म-स्थल पर, कि थानेदार गिर पडा और वही बेहोश हो गया। इसके बाद दस घटे के अदर-अदर वह मर गया।

इस भयकर घटना का समाचार आग की तरह सारे गाव में फैल गया।

फौरन ही यह सूचना थाने और जिला-केंद्र में पहुचाई गई। थोडी देर में ही छः थानेदारों ने बहुत-से सिपाहियों के साथ गाव पर हमला बोल दिया। उन्होने परमसुख और उसके भाई के घर की एक-एक वस्तु लूट ली और कई दिन तक वे उस गाव में पडे रहे। गाव में भीषण आतक छा गया। जिला-अधिकारी भी भयकर रूप से आपे से बाहर हो गये। बादा जिले के इतिहास में ऐसी घटना कभी नहीं हुई थी। एक थानेदार को पीटना और इस ढग से मार डालना बडी ही अशोभनीय था। बाकायदा मजिस्ट्रेट ने जाच की और परमसुख को सेशन के सिपुर्द कर दिया गया। मुकदमे की पेशी पर परमसुख की ओर से निजी सफाई के अधिकार की माग पेश की गई। इस आवेदन में कहा गया कि उसकी मशा थानेदार को मार डालने की नही थी,, लेकिन आदि से अन्त तक थानेदार का आचरण कानून-विरुद्ध था। उसे घर में दाखिल होने और औरत को गालिया देने का कोई अधिकार नही था और उसे परमसुख को भी पीटने की आज्ञा देने का हक नही था।

जज महोदय प्रातीय न्याय-विभाग के सीनियर सदस्य थे और सैशन जज के रूप में उन्होने सभवतः पहली ही बार स्थानापन्नता का पद ग्रहण किया था। जहा तक मैं समझता हू, उन्हे सफाई में कुछ बल दिखाई दिया। फैसला सुरक्षित रखा गया। लेकिन मुझे शक है कि सरकारी वकील ने इस सबध में जिला मजिस्ट्रेट तथा ज्वाइट मजिस्ट्रेट को, जो अगरेज अफसर थे, सूचना दी होगी कि सभवतः यह फैसला इस्तगासे के खिलाफ जाय और अभियुक्त बरी हो जाय। ज्वाइट मजिस्ट्रेट नौजवान था और अभी नया-ही-नया इडियन सिविल सर्विस में भरती हुआ था। वह बडा जल्दबाज था। इस घटना से वह सतुलन खो बैठा और अभियुक्त के बरी होने की सभावना तो उसे और भी असहनीय लगी। वह सैशन जज से पहले कभी नही मिला था, किंतु इस मामले में उसने बहुत ही असामान्य रूप में आचरण किया। अभी फैसला सुनाया नही गया था कि एक दिन सवेरे ही वह जज के मकान पर गया। जज का अरदली साहब को आया

देखकर बहुत हैरान हुआ और भागा-भागा सूचना देने भीतर गया। जज साहब आये और जाइंट मजिस्ट्रेट ने बडी तेजी से उनसे कहा—"मैंने सुना है कि आप परसमुख को बरी कर रहे हैं। यह कैसे हो सकता है? दरअसल इस आदमी ने थानेदार की हत्या की है। आप उसे कैसे बरी कर सकते हैं? उसे सजा जरूर दी जानी चाहिए, चाहे जो भी सजा आप चाहें, दें, लेकिन बरी तो करना ही नही चाहिए।" इस तरीके से जज महोदय खुद भी बडे विचलित हुए। वह सादे मिजाज के आदमी थे और अगरेज अफसरो के इस ढग से पेश आने के आदी नही थे। लेकिन उन्होने साहस किया और कहा कि यह अदालत का मामला है और अगर इस बारे में कुछ कहने की जरूरत हो तो उसकी विधि यह है कि सरकारी वकील अदालत में पेश होकर अपनी बात कहे। इनसे जाइंट मजिस्ट्रेट और भी उत्तेजित हुआ और उसने कई अट-सट बातें की और चलता बना। जज महोदय को इस बात का श्रेय देना ही होगा कि वह, इस घटना के कारण, उनके खयाल में जो नही था, उसे करने से बाज न आये।

आखिर एक दिन उन्होने फैसला सुना दिया और अभियुक्त को बरी कर दिया गया। लेकिन इस फैसले की उन्हें कीमत भी चुकानी पडी। सैशन जज की बजाय वह शेष नौकरी-काल में दीवानी के ही जज रहे। कई बाद के आनेवाले उनसे आगे निकल गये, उनकी तरक्कियां हो गई, परतु वह उसी स्थान पर रहे और आखिरकार समय से पहले ही रिटायर हुए।

अधिकारी इस फैसले को ऐसे ही नही छोडना चाहते थे। जिला मजिस्ट्रेट ने अपने डिवीजन के कमिश्नर को इस रिहाई के विरुद्ध अपील करने के लिए लिखा। उसने पत्र में लिखा था (जो मैंने बाद में पढा) कि एक पुलिस-अधिकारी की हत्या में अपराधी को इस प्रकार बरी कर देने से सारे प्रशासन का अत हो जायगा और वह अपने जिले में शाति और शासन-व्यवस्था के लिए जिम्मेदार नही होगे। इसलिए प्रशासन-सबधी दृष्टि से ऐसे मामलो में सजा देना अत्यावश्यक है। कमिश्नर ने जिला मजिस्ट्रेट के पत्र का समर्थन करते हुए इस प्रस्ताव को सरकार के पास भेजा।

तदनुसार यह प्रस्ताव सरकारी वकील के पास कानूनी राय के लिए भेजा गया और उसके बाद वह न्याय-विभाग के सचिव के पास पहुचा । उन दिनो इलाहाबाद हाई कोर्ट मे सरकारी वकील एक अग्रेज बैरिस्टर थे । वह फौजदारी मे बहुत अनुभवी थे । उन्होने सलाह दी कि अपील में बहुत कामयाबी नही होगी । इस पर हाई कोर्ट मे इस अपील के जाने मे जनता में भी खलबली मचेगी और मृत पुलिस-अधिकारी के आचरण पर विपरीत टिप्पणिया होगी । यही खयाल न्याय-विभाग के सचिव का भी था । आखिकार यह फाइल यू० पी० के गवनर सर माल्कम हेली के पास गई । उन्होने अपने कानूनी सलाहकारो की राय के खिलाफ अपील करने का आदेश दिया । उन्होने टिप्पणी की कि ऐसे फैसले को मजूर करना सभव नही ।

फलत सरकारी वकील ने हाई कोट मे अपील दायर कर दी और हाई कोर्ट में परमसुख की ओर से मुझे पेश किया गया । यह अपील दो अगरेज जजो की अदालत में लगी । पेशी से एक या दो दिन पहले परमसुख मेरे यहा आया और उसने अपील के समय अदालत मे हाजिर रहने की स्वीकृति के लिए दरख्वास्त देने को कहा । मैने उस आदमी को देखा—लबा-चौडा कद, चौडी छाती और पहलवान-सा दिखाई पडता था । उसे देखकर वस्तुत मुझे इस बात का आश्चय नही रहा कि ऐसे दैत्याकार व्यक्ति के एक ही वार से बेचारा थानेदार जिंदा कैसे रह सकता था ! मैने कहा—"अगर जजो ने तुम्हारी सूरत भी देख ली, तो परमात्मा ही रक्षक है । तुम्हे जरूर ही सजा हो जायगी । तुम्हे कोई भी बचा नही सकेगा । इसलिए परमात्मा के नाम पर हाई कोट ही क्या, इलाहाबाद तक में न आना, क्योकि सभव है जज लोग तुम्हे देखना चाहे और अगर तुम अदालत के अहाते या इलाहाबाद शहर मे भी हुए, तो मुझे तुमको हाजिर करना पड जायगा । फिर होगा यह कि सारा मामला चौपट हो जायगा । अगर तुम इलाहाबाद मे न हुए तो देखने का प्रश्न आने पर मामला रफा-दफा भी हो सकेगा ।"

जिस दिन हाई कोट मे अपील पेश हुई और जब तथ्य उपस्थित किये गये, तो जज सहज भाव मे बोले—"बहुत भयकर मामला है । एक पुलिस-

अधिकारी की भी हत्या हो !" मै यह कहे विना नही रहूगा कि दोनो जज बहुत शात थे और दोनो पूरी वात सुनकर ही न्याय करने के इच्छुक थे। उन्होने कहा—"डा० काटजू, उस सारे मामले को पुन हमारे सामने पेश कीजिये।" मैंने तत्परतापूर्वक कहा—"अच्छा जनाव!" और इसके वाद मैंने क्रमश पूर्ववर्णित सारा दृश्य उनके सामने पेश किया। अत में मैंने कहा—"जनाव, यह तो वुदेलखड है, जहा ऐसी उत्तेजना पाकर एक पतगा तक भी हमला कर देता है। परमसुख की तो वात ही छोडिये, वह तो फिर भी इन्सान था।"

जजो की समझ में यह वात आ गई। अपील खारिज कर दी गई। इस प्रकार पुलिस-अफसर की हत्या का वदला नही लिया जा सका, लेकिन इसका वदला उसे वेचारे जज से ही लिया गया।

: १६ :

लालटेन की मौजूदगी

दोपहर वाद का समय था। कलकत्ते में हरिसन रोड पर मे निकलते हुए एक देहाती युवक का और एक पुलिस के सिपाही से वाते करने लगा। उसने कहा,

"वह जो आदमी सामने से आ रहा है, उसे देखते हो?"

"हा", पुलिसवाले ने कहा—"कौन है वह?"

"वह हत्यारा है, उसने एक आदमी की हत्या की है।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

"मेरे चाचा ने मुझे सूचना ी है। उनका खत इस वारे में मेरे पास आया है।"

"कव?"

"अभी थोडे ही दिन पहले। इसने गिरजाशकर की हत्या की है।" सिपाही ने यह सुना और वह तनिक व्यग्र हो उठा। एकाएक स्पष्ट

परिस्थिति को वह समझा नही । लेकिन सूचना इतनी सही थी कि उसकी उपेक्षा नही की जा सकती थी । वह कथित हत्यारे की ओर बढा और जाकर उसके कधे पर हाथ रखा और तीनो लाल बाजार की पुलिस-चौकी मे जा पहुचे । पुलिस के डिप्टी कमिश्नर को मामले की रिपोट की गई । वह इस घटना को सुनकर बडा प्रभावित हुआ और उसने वह पत्र मागा । मुझे याद यह नही रहा कि वह पत्र उस समय उस युवक की जेब मे था अथवा वह उसे अपने निवास स्थान से बाद मे लाया । जो हो, वह पत्र पेश किया गया । उस पत्र मे चाचा ने अनेक घरेलू तथा सामाजिक समाचार देते हुए अत मे लिखा था कुछ दिन हुए गिरजाशकर को बाजपेयी (सदभ के लिए मै यह नाम लिखता हू) ने मार डाला है । मृतक के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए उन्होने लिखा था—"जाति का एक सिंह चला गया ।" इस पर डिप्टी कमिश्नर ने बाजपेयी को हवालात म भेज दिया और जिला भजना के सुपरिंटेडेंट पुलिस से तार द्वारा पूछा कि क्या उन्हें अमुक आदमी की तलाश है ? तत्काल जवाब आया "हम उसकी तलाश मे है । उसे यहा भेज दीजिये ।" तदनुसार बाजपेयी को पुलिस की हिफाजत मे उसके घरू जिले म भेज दिया गया ।

मुकदमे की पेशी के दौरान मे गवाहो से पता चला कि यह हत्या पूवत आयोजित, निश्चित और इरादे के साथ अकेले आदमी का काय था । न केवल यह कि वास्तविक हत्या के प्रत्यक्ष गवाह भी मौजूद थे, प्रत्युत हत्या के मुद्दे के बारे मे सवथा निर्दोष गवाही भी उपस्थित की गई थी । इस सबध मे मालूम हुआ था कि वहा दो दल थे । एक दल का मुखिया मृतक गिरजाशकर था और दूसरे दल का मुखिया एक अन्य पडोसी जमीदार था, जिसका दाहिना हाथ—बाजपेयी—अभियुक्त था । दोनो दलो में बहुत पुराना झगडा चला आ रहा था और सब जानते थे कि अभियुक्त बाजपेयी ही इस झगडे की जड है, और वही अपने दल का सबसे अधिक क्रियाशील सदस्य तथा सारी शरारत की बुनियाद है ।

गिरजाशकर की हत्या से छ मास पहले की बात है कि अभियुक्त बाजपेयी को एक दिन शाम के वक्त गाव से बाहर कुछ लोगो ने घेर लिया और आक्रमणकारियो ने उसे मार-मार कर अधमरा कर दिया। उसे जो चोटें आईं थी, उनसे साफ जाहिर था कि वे उसे निश्चित रूप मे मार डालना चाहते थे। किंतु वह मृत्यु से केवल इसलिए बच गया, क्योंकि उन्होंने समझा था कि वह मर गया है। वह बहुत ही हृष्ट-पुष्ट और असाधारण रूप मे स्वस्थ था, इसलिए मौत के मुह में जाकर भी वह बच निकला। अस्पताल मे कई सप्ताह तक वह मृत्यु और जीवन के पालने में झूलता रहा, लेकिन अतत अप्रत्याशित रूप में स्वस्थ हो ही गया।

जैसे ही उसे होश हुआ, उसकी यह धारणा बन गई कि मृतक गिरजाशकर के आदमियो ने ही उसे मार डालना चाहा था और वह उसके भाडे के आदमियो का शिकार बना है। खूख्वार स्वभाव का होने के कारण उसने इसका बदला लेने का दृढ निश्चय कर लिया। उसने अपने डाक्टरो, कपाउडरो, नर्सो और अपने मिलनेवाले सभी लोगो से कहा कि जैसे भी हो, अस्पताल से छुट्टी पाकर सबसे पहले वह गिरजाशकर को मार डालने का काम करेगा। इस बीच उसने यह सुना कि उसके मालिक ने गिरजाशकर के साथ सुलह कर ली है। इससे वह और भी आग-बबूला हो गया। बाजपेयी की धमकियो का पास-पडोस में हर किसी को ज्ञान हो गया और गिरजाशकर को भी इसका पता लगा। उसने अपनी सुरक्षा और हिफाजत के लिए प्रबध किये। उसने दो बहुत तगडे अगरक्षक नियत किये। वे चौबीसो घटे उसके साथ रहते थे और रात के समय उसकी खाट के दोनो ओर अपने-अपने बिस्तर लगाकर सोते थे।

गिरजाशकर का घर उसके अपने ही अहाते में था। घर के सामने ही एक बरामदा था और बरामदे में दो द्वार थे, जो भीतर की ओर बडे कमरे में खुलते थे। उस समय गिरजाशकर के परिवार में एक तो वह खुद

था, एक उसका छोटा भाई था, जो बुखार में पडा था और तीसरी उसकी माता थी। भीतर के कमरे मे उसकी माता और उसका बीमार भाई सोते थे। दोनो दरवाजो मे से एक को रात के समय थोडा-सा खुला रखा जाता था।

दोनो अगरक्षको के बयान के अनुसार हत्या की रात को आधी रात के बाद वे बुरी तरह गलगलाने की आवाज सुनकर एकाएक जाग गये। वे उठे और अभियुक्त बाजपेयी को गिरजाशकर की खाट के सिरहाने देख कर डर गये। बाजपेयी के हाथ मे कुल्हाडी या कोई दूसरा पैना हथियार था और गिरजाशकर का सिर प्राय धड से अलग पडा हुआ था, और उस गहरे घाव मे से रक्त की धार बह रही थी। चारो ओर मृत्यु का-सा सन्नाटा था। बरामदे के उत्तरी छोर मे लटकी हुई एक छोटी-सी लालटेन की फीकी-सी रोशनी उस दृश्य पर पड रही थी। यद्यपि वह अधेरी रात थी, तथापि अगरक्षको ने लालटेन की रोशनी के सहारे बाजपेयी को पहचान लिया था। लेकिन पूव इसके कि वे कुछ कर सकें, वह भाग गया।

उन्होने हो-हल्ला मचाया। बुढिया मा भी जाग गई थी। वह बरामदे मे आ गई और उसने बाजपेयी को भागते हुए देखा और उसे पहचान लिया। बीमार भाई एक या दो मिनट के बाद बाहर आया। उसने भी हत्यारे को भागते हुए देखा लेकिन वह उसे पहचान नही सका। पद्रह मिनट के अदर-अदर सारा गाव जाग गया। लोग घटनास्थल पर दौडे आये और कुछ ने कहा कि उन्होने हत्यारे को भागते हुए देखा है और उन्हें पक्का यकीन है कि वह बाजपेयी के सिवा दूसरा कोई नही था। आधे ही घटे के अदर-अदर पुलिस थाने मे सारे मामले की रिपोट दर्ज कराई गई और इस अपराध के अपराधी के रूप मे अभियुक्त का नाम लिखाया।

तत्काल ही बाजपेयी की तलाश की गई, लेकिन वह नही मिला। यह कहा गया कि उसने बडी सावधानी के साथ हत्या की योजना बनाई थी और यह अपराध करने के फौरन ही बाद वह दस मील की दूरी पर ब्राच लाइन के एक छोटे से स्टेशन पर गया और वहा से उसने कलकत्ता के

लिए गाडी पकडो ।

इस्तगासे की गवाही सभी तरह से पूर्ण थी । बहुत-सी आखोंदेखी गवाहिया थी और इस मुद्दे के लिए भी बहुत मजबूत प्रमाण था । लेकिन इतने पर भी उसमें एक कमी रह गई थी, और वह यह, कि एक अनावश्यक झूठे प्रमाण के सहारे इस मामले को खडा करने की चेष्टा की गई थी । वह कमी इस असाधारण नाटकीय मामले में बडे ही नाटकीय ढग से प्रकाश में आई ।

मृतक गिरजाशकर अपने जिले में बहुत ही सम्मानित व्यक्ति था । उसकी जाति के बहुत-से व्यक्ति जिले में प्रतिष्ठित माने जाते थे । उनमें से एक प्रमुख वकील थे, जिन्हें हम अतुलबिहारी कहेंगे । वह जिला कचहरी में वकालत करते थे । हत्या के अगले दिन शव को पोस्ट-मार्टम की परीक्षा के लिए जिला-केंद्र में लाया गया और परीक्षा के बाद उसे सबधियो के हवाले कर दिया गया । दोपहर बाद गिरजाशकर के छोटे भाई तथा अन्य रिश्तेदारो ने उसका दाह-सस्कार किया । सूर्यास्त के बाद मुर्दनी के सब लोग अतुलबिहारी के मकान पर जमा हुए ।

बहुत-से लोग वहा हाजिर थे और उनमें कुछेक छोटे वकील थे, जो अतुलबिहारी के दफ्तर मे काम करते थे । स्वभावत हर कोई उस समय हत्या के बारे में विचार कर रहा था । बीमार भाई, जो उस समय पूर्णतया विक्षिप्त और बेहाल अवस्था में था, अपने भाई की मृत्यु से शोकातुर आराम कुर्सी पर चित्त पडा था । "यह तो केवल दुर्भाग्य ही है", उसने कहा—"गिरजाशकर कभी न मारा जाता, अगर मूनी (दो अगरक्षको में से एक) उस रात छुट्टी पर न गया होता । अगर मूनी मौजूद होता, तो यह हत्या कभी नहीं हो सकती थी ।" इतने पर भी सैशन जज की अदालत में इस मूनी ने गवाही दी थी कि वह हाजिर था और उसने वस्तुत बाजपेयी को गिरजाशकर की खाट के सिरहाने खडा हुआ अपनी आखो से देखा था ।

इसके बाद हुआ यह कि वहा उन हाजिर छोटे वकीलो में से एक को अभि-

जिस योजना के अनुसार मूसी (अगरक्षक) को घटनास्थान पर लाया जा सकता था, उसमे लालटेन का भी खयाल किया जा सकता था। वस्तुत सारा मामला यही था।

अभियुक्त की रक्षा की केवल यही आशा थी कि इस मामले को यथासभव हल्के तौर पर पेश किया जाय और इसकी गहराई मे न पैठा जाय, क्योकि जितना ही गहराई मे आप जायगे, उतना ही अभियुक्त उसकी गहराई में डूबता जायगा।

जिस-दिन हाई कोर्ट गर्मियो की छुट्टियो के लिए बद होनी थी, ठीक उसी दिन इस मुकदमे की पेशी हुई। मैंने बहुत ही सामान्य रूप मे मामला पेश किया और सबूत के बारे मे कोई खास चर्चा नही की। मैं मूसी और लालटेन की मौजूदगी पर ही केंद्रीभूत रहा। मैंने बहस मे कहा कि इन अवस्थाओ मे पहचानना सभव नही था और यह भी सभव नही कि हत्यारा इस ढग से वहा खडा रहे और पकडे जाने या पहचाने जाने का खतरा उठाये, जिस तरह गवाहो ने बयान दिया है।

सोनीयर जज पते की बात को बहुत जल्द पकडते थे। जब कभी उनके सामने कोई नुक्ता कोरे ढग से पेश किया जाता, तो वह उसे बहुत पसद करते। मुझे महसूस हुआ कि दोनो जज मेरी बात से प्रभावित हुए है। मैं बैठ गया। मैं समझता हू कि पूरे साठ मिनट भी मैंने नही लिये होगे। इसके बाद इस्तगासे के समर्थन के लिए सरकारी वकील की ओर से वह बडे वकील खडे हुए। उन्हें लगा कि जज इस मामले का एकदम हल्का-सा खयाल करके कही अभियुक्त को बरी न कर दे। उन्होने जवाब मे कहा कि मैंने इस मामले को आवश्यकता से अधिक सरल समझा है। इसको गुरुता के लिए सारे सबूत का भली प्रकार विश्लेषण करना आवश्यक है और इसमे लगभग तीन घटे लग जायगे। यह सुनकर विद्वान जज कुछ नाराज-से दिखाई दिये और सीनियर जज ने कहा—"अगर यह बात है तो अदालत के फिर बैठने तक मुकदमा स्थगित किया जाय।" उन्होने सभवत यही खयाल किया होगा कि जिस फौजदारी मुकदमे के पक्ष-समर्थन के लिए तीन घटे

चाहिए, वह निश्चय ही भद्दा होगा।

अदालतें बंद हो जाने पर मैं गर्मियों की छुट्टियों में काश्मीर चला गया और क्लर्क को आदेश कर गया कि छुट्टियों में मैं तो पेशी पर हाजिर न हो सकूंगा, इसलिए इस अपील-संबंधी कागजात अभियुक्त की बहन को लौटा दे। लेकिन उसने वह कागज न लिये। वह बेहद रोई, चिल्लाई और फलत: मुझे अपील के लिए काश्मीर से आना पड़ा। लेकिन मेरे आने की वस्तुत: जरूरत भी नहीं थी। मुझे मालूम नहीं, यह कैसे और क्यों हुआ कि जब अदालत बैठी और इस्तगासे के वकील खड़े हुए, तो जजों में से एक ने कहा—"ओह, यह तो वही मुकदमा है, जिसमें एक अनुपस्थित अंगरक्षक और लालटेन का किस्सा था। तो कहिये, अब आप क्या कहना चाहते हैं'? वस्तुत: उसमें बहुत कहने की गुंजाइश नहीं है।"

मेरे विद्वान मित्र ने बहुत यत्नपूर्वक पक्ष-समर्थन किया। मैं समझता हूं कि स्वत: उन्हें यह विश्वास हो गया था कि यह मामला बिल्कुल सच्चा है। उन्होंने सारे सबूत और गवाहों की शहादतों का विस्तार-पूर्वक उल्लेख किया, लेकिन इसका कोई लाभ न हुआ। जज अपना निर्णय कर चुके थे। उन्होंने बार-बार इस बात को दोहराया—"रात एकदम अंधेरी थी, मूसी वहां हाजिर नहीं था, घटना-स्थल के लिए लालटेन का आविष्कार किया गया और इसलिए किसी प्रकार की पहचान असंभव थी।" इससे भी अधिक उन्होंने यह खयाल किया—"संभव है, हत्यारे के पास टार्च हो और वह एक ही वार में गला अलग करने के बाद यथाशीघ्र भाग खड़ा हुआ हो।" इस्तगासे के वकील की बहस के बाद फैसला तत्काल सुना दिया गया और बाजपेयी बरी हो गया।

: १७

कड़ुए बादाम

श्री श्रीप्रकाशजी (इन दिनों बंबई के गवर्नर) हिंदुस्तान भर में प्रसिद्ध कांग्रेसी हैं और श्री आनंद नारायण मुल्ला उत्तर प्रदेश में इंडियन

सिविल सर्विस के एक उच्चाधिकारी है । जिस समय की मै यह घटना लिख रहा हू, उन दिनो श्री सप्रू लखनऊ के अस्पताल मे बहुत बुरी तरह बीमार पडे थे और जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहे थे । उनकी बीमारी के विषय में उनके डाक्टरो का कहना था कि ऐसी बीमारी ही बहुत कम देखने मे आई है । यह एक ऐसी बीमारी थी, जिसकी डाक्टरी रिपोर्टो और पत्रिकाओ में केवल आठ या नौ ही घटनाए देखने मे आई थी । उनके पास एक पालतू कुत्ता था जो पागल हो गया था और उनके परिवार के डाक्टर ने उन्हे सलाह दी कि सावधानी के तौर पर सारे घर के लोगो को पागल कुत्तो के काटने के असर से बचने के लिए इजेक्शन लगवा दिये जाय । यह एक मामूली सा इलाज था और ए० एन० सप्रू के सिवा किसीको कुछ भी तकलीफ नही हुई, लेकिन श्री सप्रू पर तो इसकी भीषण प्रतिक्रिया हुई । थोडे ही दिनो में उनका टेपरेचर बहुत ही बढ गया और उसके बाद गले से लेकर नीचे तक उनके सारे शरीर को लकवा मार गया । उनके डाक्टर कुछ भी कर सकने को लाचार थे और इजेक्शन की भीषण प्रतिक्रिया को निरतर सावधानी के साथ देखते रहे, जो स्वत ही कई महीनो के बाद शात हो गई ।

× × ×

श्री श्रीप्रकाशजी बहुत ही कोमल-हृदय व्यक्ति है । उनकी जन्म-भूमि बनारस में उन्हे सब कोई चाहते है । जो भी कोई उनके पास सहायता के लिए जाता, वह हमेशा उसकी मदद करने के लिए तैयार रहते और मै समझता हू कि उनकी इसी महानता के कारण कोई भी उनकी कही हुई बात को टाल नही सकता ।

श्री श्रीप्रकाशजी कुछ दिन के लिए इलाहाबाद आये हुए थे और मेरे ही यहा ठहरे थे । एक दिन उन्होने मुझसे पूछा कि मैने बनारस के किसी उस आदमी की फौजदारी अपील को लेने से क्यो इन्कार कर दिया था, जिसे मृत्यु-दड दिया गया था । मैने जवाब दिया कि मुझे तो इस मामले का कुछ भी पता नही और कोई भी व्यक्ति मेरे पास नही आया । उन्होने कहा कि बनारस के कुछ लोग अभी-अभी आपसे मिलने को आये थे ।

और सभव है आपके क्लर्क ने उन्हें इस कारण लौटा दिया हो कि वे ऐसे मामलो में जो आपकी आम फीस है उसे नही दे सकते थे । मैंने कहा—"ऐसे मामलो में मैं अपने क्लर्क को अपना सरक्षक समझता हू और वह हमेशा भरसक यत्न करता है कि मेरा मुआवजा मुझे ठीक-ठीक मिल जाय ।"

श्री श्रीप्रकाशजी मुस्कराये और बोले—"मैं इन बनारस के लोगो को बहुत अच्छी तरह जानता हू और इनमे अधिक मेरी उनमे विशेष दिलचस्पी भी है । क्या आप उनका मामला ले सकेंगे ?" मैंने फौरन ही मजूर कर लिया, "क्योंकि" मैंने कहा—"अब तो इस मामले का सारा रूप ही पलट गया है ।" मैंने अपने क्लर्क को बुलाकर आदेश दिया कि इस अपील को ले ले और आवश्यक कार्रवाई करे। इसके बाद श्री श्रीप्रकाश चले गये। जो काम उन्होने मुझे सौंपा था, न तो उन्होने ही उसे महसूस किया और न तब मैंने ही । कुछ दिन बाद जब मैंने कागजो को देखा, तब मैंने उसकी जटिलता को समझा । यह बहुत ही कठिन मामला था और यदि यह सच था तो निश्चत ही यह अत्यत भयानक और विद्रोहपूर्ण था । एक हिंदू लडके को इसलिए मृत्युदड दिया गया था कि उसने अपने पिता की हत्या करने के इरादे मे उसे जहर दिया था । इस अपराव का मुद्दा बहुत ही घृणित था—अर्थात पुत्र और उसकी सौतेली मा के बीच अनुचित सबध । इस्तगासे का मामला बडे सामान्य रूप में पेश किया गया था । मृतक की ताबे और पीतल के बर्तनो की दूकान थी । दूकान से थोडी ही दूरी पर उसका मकान था । अभियुक्त उसका बेटा था, जो उसकी पहली पत्नी से था । पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उसने पुन एक युवा स्त्री से विवाह किया, जिससे उसके दो या तीन बच्चे हुए । अभियुक्त की आयु पच्चीस-तीस वर्ष के बीच थी । वह विवाहित था और उसका भी एक बच्चा था। जो हो, उसका पिता उसके व्यवहार से बहुत ही असतुष्ट था । उसे अपने बेटे पर शक था कि उसका अपनी सौतेली मा के साथ बुरा सबध है । इसके अतिरिक्त वह अपने बेटे को एकदम आवारा खयाल करता था और उसने समाचार-पत्रो में विज्ञापन दिया था कि उसने अपने लडके को घर से निकाल दिया है और वह उसके कर्जो के लिए

सिविल सर्विस के एक उच्चाधिकारी हैं । जिस समय की मैं यह घटना लिख रहा हू, उन दिनो श्री सप्रू लखनऊ के अस्पताल में बहुत बुरी तरह बीमार पडे थे और जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहे थे । उनकी बीमारी के विषय में उनके डाक्टरो का कहना था कि ऐसी बीमारी ही बहुत कम देखने में आई है । यह एक ऐसी बीमारी थी, जिसकी डाक्टरी रिपोर्टों और पत्रिकाओ मे केवल आठ या नौ ही घटनाए देखने मे आई थी । उनके पास एक पालतू कुत्ता था जो पागल हो गया था और उनके परिवार के डाक्टर ने उन्हे सलाह दी कि सावधानी के तौर पर सारे घर के लोगो को पागल कुत्तो के काटने के असर से बचने के लिए इजेक्शन लगवा दिये जाय । यह एक मामूली सा इलाज था और ए० एन० सप्रू के सिवा किसीको कुछ भी तकलीफ नही हुई, लेकिन श्री सप्रू पर तो इसकी भीषण प्रतिक्रिया हुई । थोडे ही दिनो मे उनका टेपरेचर बहुत ही बढ गया और उसके बाद गले से लेकर नीचे तक उनके सारे शरीर को लकवा मार गया । उनके डाक्टर कुछ भी कर सकने को लाचार थे और इजेक्शन की भीषण प्रतिक्रिया को निरतर सावधानी के साथ देखते रहे, जो स्वत ही कई महीनो के बाद शात हो गई ।

× × ×

श्री श्रीप्रकाशजी बहुत ही कोमल-हृदय व्यक्ति है । उनकी जन्म-भूमि बनारस मे उन्हें सब कोई चाहते है । जो भी कोई उनके पास सहायता के लिए जाता, वह हमेशा उसकी मदद करने के लिए तैयार रहते और मैं समझता हू कि उनकी इसी महानता के कारण कोई भी उनकी कही हुई बात को टाल नही सकता ।

श्री श्रीप्रकाशजी कुछ दिन के लिए इलाहाबाद आये हुए थे और मेरे ही यहा ठहरे थे । एक दिन उन्होने मुझसे पूछा कि मैंने बनारस के किसी उस आदमी की फौजदारी अपील को लेने से क्यो इन्कार कर दिया था, जिसे मृत्यु-दड दिया गया था । मैंने जवाब दिया कि मुझे तो इस मामले का कुछ भी पता नही और कोई भी व्यक्ति मेरे पास नही आया । उन्होने कहा कि बनारस के कुछ लोग अभी-अभी आपसे मिलने को आये थे ।

और सभव है आपके क्लर्क ने उन्हें इस कारण लौटा दिया हो कि वे ऐसे मामलो में जो आपकी आम फीस है उसे नही दे सकते थे। मैंने कहा—"ऐसे मामलो में मैं अपने क्लर्क को अपना सरक्षक समझता हू और वह हमेशा भरसक यत्न करता है कि मेरा मुआवजा मुझे ठीक-ठीक मिल जाय।"

श्री श्रीप्रकाशजी मुस्कराये और बोले—"मैं इन बनारस के लोगो को बहुत अच्छी तरह जानता हू और इनमे अधिक मेरी उनमे विशेष दिलचस्पी भी है। क्या आप उनका मामला ले सकेंगे?" मैंने फौरन ही मजूर कर लिया, "क्योकि" मैंने कहा—"अब तो इस मामले का सारा रूप ही पलट गया है।" मैंने अपने क्लर्क को बुलाकर आदेश दिया कि इस अपील को ले ले और आवश्यक कार्रवाई करे। इसके बाद श्री श्रीप्रकाश चले गये। जो काम उन्होंने मुझे सौंपा था, न तो उन्होने ही उसे महसूस किया और न तब मैंने ही। कुछ दिन बाद जब मैंने कागजो को देखा, तब मैंने उसकी जटिलता को समझा। यह बहुत ही कठिन मामला था और यदि यह सच था तो निश्चत ही यह अत्यत भयानक और विद्रोहपूर्ण था। एक हिंदू लडके को इसलिए मृत्युदड दिया गया था कि उसने अपने पिता की हत्या करने के इरादे से उसे जहर दिया था। इस अपराध का मुद्दा बहुत ही घृणित था—अर्थात पुत्र और उसकी सौतेली मा के बीच अनुचित सबध। इस्तगासे का मामला बडे सामान्य रूप में पेश किया गया था। मृतक की तांबे और पीतल के बर्तनो की दूकान थी। दूकान से थोडी ही दूरी पर उसका मकान था। अभियुक्त उसका बेटा था, जो उसकी पहली पत्नी से था। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उसने पुन एक युवा स्त्री से विवाह किया, जिससे उसके दो या तीन बच्चे हुए। अभियुक्त की आयु पच्चीस-तीस वर्ष के बीच थी। वह विवाहित था और उसका भी एक बच्चा था। जो हो, उसका पिता उसके व्यवहार से बहुत ही असतुष्ट था। उसे अपने बेटे पर शक था कि उसका अपनी सौतेली मा के साथ बुरा सबध है। इसके अतिरिक्त वह अपने बेटे को एकदम आवारा खयाल करता था और उसने समाचार-पत्रो में विज्ञापन दिया था कि उसने अपने लडके को घर से निकाल दिया है और वह उसके कर्जो के लिए

सिविल सर्विस के एक उच्चाधिकारी है । जिस समय की मैं यह घटना लिख रहा हू, उन दिनो श्री सप्रू लखनऊ के अस्पताल मे बहुत बुरी तरह बीमार पडे थे और जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहे थे । उनकी बीमारी के विषय में उनके डाक्टरो का कहना था कि ऐसी बीमारी ही बहुत कम देखने में आई है । यह एक ऐसी बीमारी थी, जिसकी डाक्टरी रिपोर्टों और पत्रिकाओ मे केवल आठ या नौ ही घटनाए देखने में आई थी । उनके पास एक पालतू कुत्ता था जो पागल हो गया था और उनके परिवार के डाक्टर ने उन्हे सलाह दी कि सावधानी के तौर पर सारे घर के लोगो को पागल कुत्तो के काटने के असर मे बचने के लिए इजेक्शन लगवा दिये जाय । यह एक मामूली सा इलाज था और ए० एन० सप्रू के सिवा किसीको कुछ भी तकलीफ नही हुई, लेकिन श्री सप्रू पर तो इसकी भीषण प्रतिक्रिया हुई । थोडे ही दिनो में उनका टेपरेचर बहुत ही बढ गया और उसके बाद गले से लेकर नीचे तक उनके सारे शरीर को लकवा मार गया । उनके डाक्टर कुछ भी कर सकने को लाचार थे और इजेक्शन की भीषण प्रतिक्रिया को निरतर सावधानी के साथ देखते रहे, जो स्वत ही कई महीनो के बाद शात हो गई ।

× × ×

श्री श्रीप्रकाशजी बहुत ही कोमल-हृदय व्यक्ति है । उनकी जन्म-भूमि बनारस मे उन्हे सब कोई चाहते है । जो भी कोई उनके पास सहायता के लिए जाता, वह हमेशा उसकी मदद करने के लिए तैयार रहते और मैं समझता हू कि उनकी इसी महानता के कारण कोई भी उनकी कही हुई बात को टाल नही सकता ।

श्री श्रीप्रकाशजी कुछ दिन के लिए इलाहाबाद आये हुए थे और मेरे ही यहा ठहरे थे । एक दिन उन्होने मुझसे पूछा कि मैंने बनारस के किसी उस आदमी की फौजदारी अपील को लेने से क्यो इन्कार कर दिया था, जिसे मृत्यु-दड दिया गया था । मैंने जवाब दिया कि मुझे तो इस मामले का कुछ भी पता नही और कोई भी व्यक्ति मेरे पास नही आया । उन्होने कहा कि बनारस के कुछ लोग अभी-अभी आपसे मिलने को आये थे ।

और सभव है आपके क्लर्क ने उन्हें इस कारण लौटा दिया हो कि वे ऐसे मामलो में जो आपकी आम फीस है उसे नही दे सकते थे । मैंने कहा—"ऐसे मामलो में मैं अपने क्लर्क को अपना सरक्षक समझता हू और वह हमेशा भरसक यत्न करता है कि मेरा मुआवजा मुझे ठीक-ठीक मिल जाय ।"

श्री श्रीप्रकाशजी मुस्कराये और बोले—"मैं इन बनारस के लोगो को बहुत अच्छी तरह जानता हू और इससे अधिक मेरी उनमे विशेष चिलचस्पी भी है । क्या आप उनका मामला ले सकेंगे ?" मैंने फौरन ही मजूर कर लिया, "क्योकि" मैंने कहा—"अब तो इस मामले का सारा रूप ही पलट गया है ।" मैंने अपने क्लर्क को बुलाकर आदेश दिया कि इस अपील को ले ले और आवश्यक कार्रवाई करे। इसके बाद श्री श्रीप्रकाश चले गये । जो काम उन्होने मुझे सौंपा था, न तो उन्होने ही उसे महनूस किया और न तब मैंने ही । कुछ दिन बाद जब मैंने कागजो को देखा, तब मैंने उसकी जटिलता को समझा । यह बहुत ही कठिन मामला था और यदि यह सच था तो निश्चत ही यह अत्यत भयानक और विद्रोहपूर्ण था । एक हिंदू लडके को इसलिए मृत्युदड दिया गया था कि उमने अपने पिता की हत्या करने के इरादे मे उसे ज़हर दिया था । इस अपराध का मुद्दा बहुत ही घृणित था—अर्थात पुत्र और उसकी सौतेली मा के बीच अनुचित सबध । इस्तगासे का मामला बडे सामान्य रूप में पेश किया गया था । मृतक की ताबे और पीतल के बर्तनो की दूकान थी । दूकान से थोडी ही दूरी पर उमका मकान था । अभियुक्त उसका बेटा था, जो उसकी पहली पत्नी से था । पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उमने पुन एक युवा स्त्री से विवाह किया, जिससे उसके दो या तीन बच्चे हुए । अभियुक्त की आयु पच्चीस-तीस वर्ष के बीच थी । वह विवाहित था और उसका भी एक बच्चा था । जो हो, उसका पिता उमके व्यवहार से बहुत ही असतुष्ट था । उमे अपने बेटे पर शक था कि उसका अपनी सौतेली मा के साथ बुरा सबध है । इसके अतिरिक्त वह अपने बेटे को एकदम आवारा खयाल करना था और उमने समाचार-पत्रों में विज्ञापन दिया था कि उमने अपने लडके को घर से निकाल दिया है और वह उसके कर्जो के लिए

सिविल सर्विस के एक उच्चाधिकारी है । जिस समय की मैं यह घटना लिख रहा हू, उन दिनो श्री सप्रू लखनऊ के अस्पताल मे बहुत बुरी तरह बीमार पडे थे और जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहे थे । उनकी बीमारी के विषय में उनके डाक्टरो का कहना था कि ऐसी बीमारी ही बहुत कम देखने मे आई है । यह एक ऐसी बीमारी थी, जिसकी डाक्टरी रिपोर्टों और पत्रिकाओ में केवल आठ या नौ ही घटनाए देखने मे आई थी । उनके पास एक पालतू कुत्ता था जो पागल हो गया था और उनके परिवार के डाक्टर ने उन्हे सलाह दी कि सावधानी के तौर पर सारे घर के लोगो को पागल कुत्तो के काटने के असर से बचने के लिए इजेक्शन लगवा दिये जाय । यह एक मामूली सा इलाज था और ए० एन० सप्रू के सिवा किसीको कुछ भी तकलीफ नही हुई, लेकिन श्री सप्रू पर तो इसकी भीषण प्रतिक्रिया हुई । थोडे ही दिनो मे उनका टेपरेचर बहुत ही बढ गया और उसके बाद गले से लेकर नीचे तक उनके सारे शरीर को लकवा मार गया । उनके डाक्टर कुछ भी कर सकने को लाचार थे और इजेक्शन की भीषण प्रतिक्रिया को निरतर सावधानी के साथ देखते रहे, जो स्वत ही कई महीनो के बाद शात हो गई ।

× × ×

श्री श्रीप्रकाशजी बहुत ही कोमल-हृदय व्यक्ति है । उनकी जन्म-भूमि बनारस मे उन्हें सब कोई चाहते है । जो भी कोई उनके पास सहायता के लिए जाता, वह हमेशा उसकी मदद करने के लिए तैयार रहते और मैं समझता हू कि उनकी इसी महानता के कारण कोई भी उनकी कही हुई बात को टाल नही सकता ।

श्री श्रीप्रकाशजी कुछ दिन के लिए इलाहाबाद आये हुए थे और मेरे ही यहा ठहरे थे । एक दिन उन्होने मुझसे पूछा कि मैंने बनारस के किसी उस आदमी की फौजदारी अपील को लेने से क्यो इन्कार कर दिया था, जिसे मृत्यु-दड दिया गया था । मैंने जवाब दिया कि मुझे तो इस मामले का कुछ भी पता नही और कोई भी व्यक्ति मेरे पास नही आया । उन्होने कहा कि बनारस के कुछ लोग अभी-अभी आपसे मिलने को आये थे ।

और सभव है आपके क्लर्क ने उन्हे इस कारण लौटा दिया हो कि वे ऐसे मामलो में जो आपकी आम फीस है उसे नही दे सकते थे। मैंने कहा—"ऐसे मामलो में मै अपने क्लर्क को अपना सरक्षक समझता हू और वह हमेशा भरसक यत्न करता है कि मेरा मुआवजा मुझे ठीक-ठीक मिल जाय।"

श्री श्रीप्रकाशजी मुस्कराये और बोले—"मै इन बनारस के लोगो को बहुत अच्छी तरह जानता हू और इससे अधिक मेरी उनमें विशेष दिलचस्पी भी है। क्या आप उनका मामला ले सकेंगे?" मैंने फौरन ही मजूर कर लिया, "क्योकि" मैंने कहा—"अब तो इस मामले का सारा रूप ही पलट गया है।" मैंने अपने क्लर्क को बुलाकर आदेश दिया कि इस अपील को ले ले और आवश्यक कार्रवाई करे। इसके बाद श्री श्रीप्रकाश चले गये। जो काम उन्होने मुझे सौंपा था, न तो उन्होने ही उसे महसूस किया और न तब मैंने ही। कुछ दिन बाद जब मैंने कागजो को देखा, तब मैंने उसकी जटिलता को समझा। यह बहुत ही कठिन मामला था और यदि यह सच था तो निश्चत ही यह अत्यत भयानक और विद्रोहपूर्ण था। एक हिंदू लडके को इसलिए मृत्युदड दिया गया था कि उसने अपने पिता की हत्या करने के इरादे से उसे जहर दिया था। इस अपराव का मुद्दा बहुत ही घृणित था—अर्थात पुत्र और उसकी सौतेली मा के बीच अनुचित सबव। इस्तगासे का मामला बडे सामान्य रूप में पेश किया गया था। मृतक की ताबे और पीतल के बर्तनो की दूकान थी। दूकान से थोडी ही दूरी पर उसका मकान था। अभियुक्त उसका बेटा था, जो उसकी पहली पत्नी से था। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उसने पुन एक युवा स्त्री से विवाह किया, जिससे उसके दो या तीन बच्चे हुए। अभियुक्त की आयु पच्चीस-तीस वर्ष के बीच थी। वह विवाहित था और उसका भी एक बच्चा था। जो हो, उसका पिता उसके व्यवहार से बहुत ही असतुष्ट था। उसे अपने बेटे पर शक था कि उसका अपनी सौतेली मा के साथ बुरा सबव है। इसके अतिरिक्त वह अपने बेटे को एकदम आवारा खयाल करता था और उसने समाचार-पत्रो में विज्ञापन दिया था कि उसने अपने लडके को घर से निकाल दिया है और वह उसके कर्जो के लिए

सिविल सर्विस के एक उच्चाधिकारी हैं। जिस समय की मैं यह घटना लिख रहा हू, उन दिनो श्री सप्रू लखनऊ के अस्पताल में वहुत बुरी तरह बीमार पडे थे और जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहे थे। उनकी बीमारी के विषय में उनके डाक्टरो का कहना था कि ऐसी बीमारी ही वहुत कम देखने में आई है। यह एक ऐसी बीमारी थी, जिसकी डाक्टरी रिपोर्टों और पत्रिकाओ मे केवल आठ या नौ ही घटनाए देखने मे आई थी। उनके पास एक पालतू कुत्ता था जो पागल हो गया था और उनके परिवार के डाक्टर ने उन्हें सलाह दी कि सावधानी के तौर पर सारे घर के लोगो को पागल कुत्तो के काटने के असर से बचने के लिए इजेक्शन लगवा दिये जाय। यह एक मामूली सा इलाज था और ए० एन० सप्रू के सिवा किसीको कुछ भी तकलीफ नही हुई, लेकिन श्री सप्रू पर तो इसकी भीषण प्रतिक्रिया हुई। थोडे ही दिनो में उनका टेपरेचर वहुत ही बढ गया और उसके बाद गले से लेकर नीचे तक उनके सारे शरीर को लकवा मार गया। उनके डाक्टर कुछ भी कर सकने को लाचार थे और इजेक्शन की भीषण प्रतिक्रिया को निरतर सावधानी के साथ देखते रहे, जो स्वत ही कई महीनो के बाद शात हो गई।

× × ×

श्री श्रीप्रकाशजी वहुत ही कोमल-हृदय व्यक्ति हैं। उनकी जन्म-भूमि बनारस में उन्हे सब कोई चाहते हैं। जो भी कोई उनके पास सहायता के लिए जाता, वह हमेशा उसकी मदद करने के लिए तैयार रहते और मैं समझता हू कि उनकी इसी महानता के कारण कोई भी उनकी कही हुई बात को टाल नही सकता।

श्री श्रीप्रकाशजी कुछ दिन के लिए इलाहाबाद आये हुए थे और मेरे ही यहा ठहरे थे। एक दिन उन्होने मुझसे पूछा कि मैंने बनारस के किसी उस आदमी की फौजदारी अपील को लेने से क्यो इन्कार कर दिया था, जिसे मृत्यु-दड दिया गया था। मैंने जवाब दिया कि मुझे तो इस मामले का कुछ भी पता नही और कोई भी व्यक्ति मेरे पास नही आया। उन्होने कहा कि बनारस के कुछ लोग अभी-अभी आपसे मिलने को आये थे।

और मभव है आपके क्लर्क ने उन्हें इस कारण लौटा दिया हो कि वे ऐसे मामलो में जो आपकी आम फीस है उसे नही दे सकते थे। मैंने कहा—"ऐसे मामलो में मैं अपने क्लर्क को अपना मरक्षक समझता हू और वह हमेशा भरसक यत्न करता है कि मेरा मुआवजा मुझे ठीक-ठीक मिल जाय।"

श्री श्रीप्रकाशजी मुस्कराये और बोले—"मैं इन वनारस के लोगो को वहुत अच्छी तरह जानता हू और इससे अधिक मेरी उनमें विशेष चिलचस्पी भी है। क्या आप उनका मामला ले मकेंगे?" मैंने फौरन ही मजूर कर लिया, "क्योकि" मैंने कहा—"अब तो इम मामले का सारा रूप ही पलट गया है।" मैंने अपने क्लर्क को वुलाकर आदेश दिया कि इस अपील को ले ले और आवश्यक कार्रवाई करे। इमके वाद श्री श्रीप्रकाश चले गये। जो काम उन्होंने मुझे सौंपा था, न तो उन्होंने ही उसे महनूम किया और न तव मैंने ही। कुछ दिन वाद जव मैंने कागजो को देखा, तव मैंने उमकी जटिलता को समझा। यह वहुत ही कठिन मामला था और यदि यह सच था तो निश्चत ही यह अत्यत भयानक और विद्रोहपूर्ण था। एक हिंदू लडके को इसलिए मृत्युदड दिया गया था कि उसने अपने पिता की हत्या करने के इरादे मे उसे जहर दिया था। इम अपराव का मुद्दा वहुत ही घृणित था—अर्थात पुत्र और उसकी मौतेली मा के वीच अनुचित सवध। इस्तगासे का मामला वडे सामान्य रूप में पेश किया गया था। मृतक की तावे और पीतल के वर्तनों की दूकान थी। दूकान मे थोडी ही दूरी पर उमका मकान था। अभियुक्त उसका वेटा था, जो उसकी पहली पत्नी से था। पहली पत्नी की मृत्यु के वाद उमने पुन एक युवा स्त्री से विवाह किया, जिससे उसके दो या तीन वच्चे हुए। अभियुक्त की आयु पच्चीस-तीस वर्ष के वीच थी। वह विवाहित था और उसका भी एक वच्चा था। जो हो, उसका पिता उमके व्यवहार से वहुत ही असतुष्ट था। उसे अपने वेटे पर शक था कि उमका अपनी सौतेली मा के साथ वुरा सवध है। इसके अतिरिक्त वह अपने वेटे को एकदम आवारा खयाल करता था और उमने समाचार-पत्रो में विज्ञापन दिया था कि उसने अपने लडके को घर से निकाल दिया है और वह उसके कर्जो के लिए

जिम्मेदार नही होगा। जो हो, पिता-पुत्र रहते तो इकट्ठे ही थे।

पिता की दूकान के साथ एक दूसरी दूकान थी, जहा मिठाइया और ठडाई मिलती थी।

इस्तगासे के अनुसार, दशहरे के दिनो मे एक दिन दोपहर को यह लडका पडोसी दूकानदार के पास आया और कहा कि चलो, आज छुट्टी मनाये। किंतु इस मित्र ने उससे क्षमा चाही कि उसे बहुत काम है और उसने अकेले को चले जाने को कहा। इस पर पुत्र ने कहा कि वह भी नही जायगा। इतना कहकर वह चला गया। आगे यह कहा गया था कि आध घटा या चालीस मिनट बाद यह पुत्र फिर वापस आया और उसके हाथो मे ठडाई के दो गिलास थे। हर कोई जानता है कि ठडाई में थोडी भाग, चीनी और थोडा दूध और कभी-कभी थोडे से बादाम भी पडते है। उसने इन दोनो गिलासो में से एक पहले अपने पिता को दिया। उसका ऐसा करना ठीक ही था और पिता ने भी तत्काल ही उसे पी लिया। इसके बाद वह पुत्र साथ की दूकान में गया और उसने दूसरा गिलास अपने दूकानदार मित्र को पेश किया। यह मित्र उस समय एक ग्राहक को सौदा दे रहा था, इसलिए उसने वह गिलास ज्यो-का-त्यो रख लिया। कुछ मिनटो बाद उसने एक घूट भरा और उसे लगा कि उसमे कुछ कडवाहट है इसलिए उसने उसे थूक दिया। इसके बाद उसने फिर उसे चखा। उसे फिर वह कडुवा लगा और उसने फिर उसे थूक दिया। इस तरह करते-करते आध घटा या कुछ समय बीत गया और हर किसीको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पिता बेहोश होकर गिर पडा। वहा बडा भारी गुल-गपाडा हो गया और भीड जमा हो गई। कोई डाक्टर को बुलाने दौडा। नगर के इस हिस्से मे बहुत ही चहल-पहल रहती है और भाग्य से इसी क्षण लोगो ने एक डाक्टर को इक्के मे जाते हुए देखा, जो एक रिटायर्ड सिविल सर्जन थे। डाक्टर को तत्काल घटना-स्थल पर लाया गया। उसने पिता की जाच की और उसकी खतरनाक हालत देखते हुए उसे फौरन पुलिस-थाने की राह अस्पताल पहुचने की सलाह दी। इसके बाद डाक्टर ने दूसरे से पूछा कि उसे किसी तरह की कोई

तकलीफ तो नही है ? इसपर उसने शिकायत की कि उसे भी थोडे-थोडे चक्कर आ रहे है। डाक्टर उसे अपनी डिस्पेंसरी में ले गया, उसे उसने कुछ दवाई दी और उसके बाद उसके साथ थाने में गया जहा उसने अपनी रपट लिखाई। इस बीच पिता को किसी अस्पताल में भेज दिया गया था, जहा तीन घटे के अदर-अदर उसकी मृत्यु हो गई। शव-परीक्षा (पोस्ट मार्टम) होने पर मृतक के शरीर में से पोटाशियम साइनाइड मिला, जो बहुत ही घातक विष होता है और डाक्टरो की राय थी कि मृत्यु जहर से हुई है।

मुझे याद नही कि पडोसी को दिये गिलास में बची ठडाई का क्या हुआ। बहुत सभव है उसने स्वय ही उसे पी लिया हो अथवा कोई दूसरा उसे गटक गया हो। जो भी हुआ हो, इतना तो जरूर था कि उस गिलास की ठडाई की डाक्टरी जाच नही की गई थी।

पोटाशियम साइनाइड एक बडा ही घातक जहर है और उसका आम उपयोग भी नही होता। इसलिए बिना किसी पूर्व-योजना के वह ठडाई के गिलास में पड नही सकता था और इस्तगासे की कहानी के लिए वह स्वत प्रत्यक्ष प्रमाण था। ठडाई पीने से पहले पिता की तबियत बिल्कुल ठीक थी। चार या पाच घटे पहले उसने सुबह का खाना भी खाया था और कोई भी यह कह सकता था कि उसकी मृत्यु ठडाई पीने से ही हुई है।

सैशन जज की अदालत में जो वकील अभियुक्त की ओर से पेश हुए थे, वह मेरे परिचित थे। फौजदारी मामलो में वह बहुत अनुभवी और सिद्धहस्त थे। उन्होने इस आधार पर सफाई पेश की थी कि यह मृत्यु विशुद्ध रूप से घटनात्मक है। उस गिलास में कोई भी हानिकारक वस्तु नहीं थी, स्वाद में कडुएपन का कारण यह था कि ठडाई तैयार करने में कडुए बादामो का उपयोग किया गया था। इसके अतिरिक्त उन्होने चिकित्सा-विषयक न्याय-शास्त्र की कई पुस्तको के आधार पर यह सुझाव उपस्थित किया था कि थोडे से ही कडुए बादामो में पर्याप्त मात्रा में साइनाइड आइन होता है। यह साइनाइड आइन मृतक के खाये हुए भोजन में से मुक्त प्राकृतिक क्षारो के

साथ पेट मे मिलकर पोटाशियम साइनाइड बन गया और उमीके कारण उसकी मृत्यु हो गई । जिरह के दौरान मे यह दृष्टिकोण उम सिविल सर्जन के सामने पेश किया गया था, जिसने पोस्ट मार्टम किया था । उसने कहा कि यद्यपि यह सच है कि चिकित्सा-विषयक न्यायशास्त्र की किताबो मे गत २०० साल में इस प्रकार की घटनाओ का उल्लेख मिलता है, तथापि मैंने गत २७ बरस के निजी अनुभव मे ऐसी एक भी घटना नही देखी और वह सर्वथा असभाव्य जान पडता है । सैशन जज पर इस सफाई का कोई असर न हुआ और उन्होने दूसरी गवाहियो को दृष्टि मे रखते हुए दोप की पूर्ण प्रामाणिकता का खयाल कर लिया और उस दशा मे मृत्यु ही उसका दड था ।

जब मैंने अपील के कागजो का अध्ययन किया, तो मुझे यह मामला बडा जटिल-सा जान पडा । इसमे बचने की केवल इतनी ही गुजाइश थी कि यह अपराध अगर सच था, तो इतना अस्वाभाविक और इतना भयानक था, कि न्यायाधीश का मन उसे स्वीकारने मे ठिठक जाता और मानव-स्वभाव की ऐसी नीचता को स्वीकार करने से पूव कोई-न-कोई वैकल्पिक हल ढूढ निकालने की भरसक कोशिश की जाती । उधर अभियुक्त के पक्ष मे भी कुछेक स्पष्ट बातें थी । घटना के समय उसका आचरण सर्वथा सामान्य ही रहा था । उसके आचरण से यह प्रकट नही हुआ कि वह दोपी था । इस बात का भी कोई कारण नही मिला कि उसने पडोसी दुकानदार को क्यो विप देना चाहा । इसके बाद की घटनाओ के फलस्वरूप वह भागा भी नही । समाचार-पत्रो में पिता के विज्ञापन देने की बात निश्चय ही सही बात हो सकती थी, अथवा यह भी सभव था कि पिता तथा पुत्र के षड्यत्र के कारण ही यह विज्ञापन दिया गया हो, ताकि पुत्र के लेनदारो को धोखा दिया जा सके और वे परिवार की सयुक्त-सपत्ति पर हाथ न डाल सके ।

यह अपील हाई कोर्ट के दो बहुत ही अनुभवी जजो के सामने पेश हुई । मैंने अभियुक्त के आचरण-सबधी तथा इस मामले के अन्य पहलुओ को जजो के समक्ष रखा, लेकिन मैंने महसूस किया कि विद्वान जजो पर मेरी इन

युक्तियो का कोई विशेष असर नही पडा। इसके वाद, मुझे कडए वादाम के उक्त सिद्धात का आश्रय लेना पडा। जव मैंने यह तर्क उपस्थित किया, तो अदालती वातावरण और भी गभीर हो गया। जव मैंने चिकित्सा-सिद्धात की एक किताव में से उस एक अश को पढकर सुनाया, जिसमें कहा गया था कि कड़ुए वादामो द्वारा विप को अतीत में कुछ घटनाए हुई है, तो न्यायाधीशो के चेहरो पर हल्की-सी हसी की रेखा खिच गई। एक जज ने उपहास के तौर पर मुझसे कहा—"डा० काटजू, मै समझता हू कि गत २०० वरसो में जो घटनाए हुई है, उनमें आपकी वताई घटना का ११ वा नवर जान पडता है।"

इसी क्षण, मै नही कह सकता, क्या हुआ, किंतु इतना अवश्य था कि मुझमें नव-स्फूर्ति का उदय हो गया। मेरा चेहरा और स्वर दोनो ही वहुत नम्र एव उदास-से पड गये, और मैंने वहुत धीमे स्वर में कहा—"क्या जनाव, इस किताव के दूसरे पन्ने को पलटने का कष्ट करेंगे?" उसमें लिखा हुआ था कि पागल कुत्तो के काटने से वचने के लिए लगाये जानेवाले इजेक्शनो की कभी-कभी प्रतिक्रिया भी हो जाती है, लेकिन ऐसा वहुत ही कम अवस्थाओ में होता है, और १०० या इससे अधिक वरसो मे इस प्रकार के इजेक्शनो से केवल ९ या १० ही ऐसी घटनाए हुई है, जिनमें इजेक्शन लगवानेवाले को लकवा मार गया था। इसके वाद कोई नाम व्यक्त किये विना ही मैंने आगे कहा—"जनाव, इस अदालत के एक वहुत ही निकट के मित्र के विपय में हम सव वडे चिंतित रहे है, और इतने पर भी इस किताव के अनुसार, वह मामला भी इस विवरण के अनुसार ग्यारहवा ही है। उस मामले का आपको और मुझे व्यक्तिगत ज्ञान है। इसलिए हमें उसके वारे में कोई खास आश्चर्य नहीं जान पडता। हम सव इस मामले को जानते है और यह सत्य भी है। इस पर भी जव मैंने यह कहा कि यह विशेष घटना भी ऐसी ही है कि जिसमें कड़ुए वादामों द्वारा विप का एक अन्य उदाहरण उपस्थित हुआ है, तो जनाव को यह असभव तथा असभाव्य जान पडता है और आपके

लए विश्वास करना कठिन जान पडता है । लेकिन अतर क्या है ? अतर केवल इतना ही है कि एक मामला तो ऐमा है, जिमे हम अपनी आखो से खते है, और दूसरा मामला न्याय-मवधी जाच-पडताल का है ।"

मै नही कह सकता कि क्या हुआ, लेकिन इम विश्लेपण का, जो इतनी क़रीब की घटना का था, न केवल जजो पर ही, प्रत्युत अदालत में मौजूद र किसी पर, इतना प्रभाव पडा कि सारा वातावरण ही वदल गया । दोनो जज पूर्णतया गभीर हो गये और उनके सारे सशय हवा हो गये । मैंने फौरन ी अपनी बहस समाप्त कर दी और सरकारी वकील को जवाव देने के लिए कहा गया । उसने कडुए वादामो के आधार पर हुई मृत्यु की कहानी की सभाव्यता पर ही चर्चा की । लेकिन जजो ने कहा—"मगर ऐसा हो तो नकता है । ऐसा होने की सभावना को वह रद्द कैसे कर मकते है ?" इम प्रकार जल्दी ही बहस समाप्त हो गई और खुले इजलास मे फैमले की घोपणा कर दी गई और अभियुक्त को वरी कर दिया गया ।

× × ×

उसी शाम की वात है । एक मित्र के यहा चाय-पान का आयोजन किया गया था । हम सव वहा फिर एकत्र हुए । कुछ ठडाई का भी प्रवध था और जव ठडाई का गिलास मुझे पेश किया गया, तो मैने उसे लेने से इन्कार कर दिया । इन विद्वान जजो मे से एक ने मेरे इस इन्कार को भुन लिया । वह वोले—"डा० काटजू, मै ममझता हू कि अव तो आप ठडाई के नाम से ही डरने लगे है । मै आपको इस वात की तारीफ करता हू । अनुभव से शिक्षा गहण करना इमीको कहते है !"

१८

भाग्य-चक्र

१६४३ की वात है । काग्रेस का स्वतत्रता-सग्राम वडे जोरो पर चल रहा था । दूसरी ओर अग्रेजी सरकार को अपनी पुलिस की ताकत

पर वडा भरोसा था। इसमें शक नही कि अनेक पुलिस-अफसरो ने उन दिनो बेहद ज्यादतिया की थी। उन्ही दिनो ज़िला कानपुर के एक थाने का इचार्ज था, जो अपने इलाके के लोगो के साथ बहुत बुरा सलूक करता था। यह आम मशहूर था कि भ्रष्टाचार के मुद्दों से रुपया ऐंठने के लिए वह जिन्हें गिरफ्तार करके हवालात में रखता, उनको बहुत ही अपमानित करता और उनके साथ बडी निर्लज्जता-पूर्वक पेश आता था। नतीजा यह था कि सारा इलाका उसके डर के मारे कापता था।

एक दिन सुबह-सुबह उसके एक गश्ती सिपाही ने उसे सूचना दी कि ६ मील के फासले पर एक गाव में एक जमीदार के मकान पर बहुत-से हथियार वद आदमी जमा हो रहे है। वे लोग पडोसी-गाव के एक जमीदार पर हमला करना चाहते है। इसका राजनैतिक आदोलन के साथ कोई सबध नही था। यह तो केवल पारिवारिक मामला था। दो भाइयो में झगडा चल रहा था और उनकी बहन का पति उनमें से एक का साथ दे रहा था। तदनुसार एक भाई अपने बहनोई की सहायता से दूसरे भाई के घर पर हमला करने की तैयारी कर रहा था।

इस पर थानेदार ने अपने सहायक थानेदार को सिपाहियो के एक छोटे-से दल के साथ उस गाव में भेज दिया, जहा दूसरा भाई रहता था और स्वय एक पुलिस-दल के साथ उस बहनोई जमीदार के मकान पर जा पहुचा। इसका नाम हम उमाशकर मान लेते है। थानेदार ने देखा कि वहा बहुत-से आदमी जमा है और कुछ लाठिया भी जमा की हुई पडी है। इसके अलावा उमाशकर के पास वदूक का भी लाइसेंस था। उसने उमाशकर को हुक्म दिया कि वह अपनी वदूक पुलिस के हवाले कर दे। उमाशकर ने वदूक सौंप दी। इसके बाद उसने उमाशकर से कहा कि वह गिरफ्तार किया जाता है और उसे थाने चलना होगा। इस सारी चर्चा के समय उमाशकर के बहुत-से आदमी वहा मौजूद थे, जिनमें उसके नौकर, कारिंदे और काश्तकार भी थे।

उमाशकर ने पहले तो थाने जाने मे टाल-मटोल की, पर वह पीछा न छुडा सका। आखिरकार एक इक्का मगाया गया और थानेदार उमाशकर के साथ उसमें सवार हो गया। जब वह इक्के मे बैठ गया तो कहा जाता है कि उसने अपने कारिदो से सकेत मे कहा—"अब क्या देखते हो! अब कौन-सा दिन आयगा!" इस कहने का मतलब यह बतलाया गया था कि उसे पुलिस से छुडा लिया जाय और पुलिस-दल और थानेदार पर हमला किया जाय। उसकी मशा चाहे जो भी रही हो और उसके इशारे का चाहे जो भी अर्थ समझा गया हो, यह तो ठीक ही था कि पुलिस-दल पर हमला किया गया और थानेदार को पीटा गया और वह जमीन पर गिर पडा। इस मार-पीट के समय उमाशकर इक्के से उतरकर भाग गया और घटना-स्थल से सर्वथा लुप्त हो गया। उसके बाद दिन भर वह किसीको दिखाई नही दिया। ठीक उसी वक्त अचानक दूसरे गाव से दूसरा पुलिस-दल भी उसी जगह पहुच गया। सहायक थानेदार ने भीड को डराने और तितर-बितर करने के लिए रिवाल्वर से कुछ गोलिया चलाई और उसके बाद घायल थानेदार को उसने उठाया और इक्के मे बैठाकर थाने की ओर चला। अभी वे बहुत दूर नही जा पाये थे कि भीड (जिसमे उमाशकर नही था) फिर लौट आई। इस बार भीड और भी खूखार बन गई थी और उसने थानेदार को इतनी बुरी तरह पीटा कि वह वही मर गया। इसके बाद पुलिस-दल थाने पर लौट आया और इस दुर्घटना का समाचार हैडक्वार्टरो मे भेजा गया। आग की तरह यह समाचार जिले भर मे फैल गया।

उन भयानक दिनो मे एक पुलिस के आदमी की हत्या मामूली बात नही थी, इसलिए तत्काल सख्ती के साथ जाच शुरू कर दी गई। उमाशकर को और बहुत-से लोगो के साथ गिरफ्तार किया गया और जाच-पडताल के बाद उमाशकर-समेत बीस आदमियो पर मुकदमा चलाया गया। उमाशकर के विरुद्ध दोषारोपण यह था कि

उसने थानेदार पर हमला करने के लिए भीड को उकसाया और इसलिए वह हत्या के प्रोत्साहन के अपराध का दोषी था। किसीने भी यह नहीं कहा कि उसने किसी भी प्रकार से व्यक्तिगत तौर पर पुलिस-दल पर हमला किया या वह हथियारबद था या उसने किसी तरह के हथियार का उपयोग किया। सार-रूप में उसके अपराध के विषय में इतने ही शब्द कहे गये थे। कानपुर के सेशन जज ने सब अभियुक्तो को दोषी करार दिया और चार को छोडकर, जिन्हें उसने उनकी युवावस्था के कारण आजीवन कारावास का दड दिया था, उमाशकर-सहित बाकी सोलह व्यक्तियो को मृत्यु-दड दिया गया।

हाई कोर्ट में अपील के अवसर पर उमाशकर और बाकी कई दूसरो की तरफ से मैं पेश हुआ। चीफ जज और एक दूसरे जज ने अपील सुनी और कुछेक अभियुक्तो को पर्याप्त सबूत न होने के आधार पर बरी कर दिया। बाकी जिन लोगो की सजा स्थिर रखी गई, विद्वान जजो ने उसपर टिप्पणी की कि मृतक को वस्तुत किस व्यक्ति ने हत्या की, इस सबध में कोई प्रमाण न होने की दशा में सभी को मृत्यु-दड देना न्यायोचित नही होगा और ऐसी अवस्था मे आजीवन कारावास का दड समुचित जान पडता है। किंतु विद्वान जज इस बारे में सर्वथा निश्चित थे कि इस नृशस हत्या की नैतिक और कानूनी जिम्मेदारी उमाशकर पर ही मुख्यत है। उसीने लोगो को इस अपराध के लिए उकसाया। अगर वह थाने-दार के साथ चुपचाप थाने चला जाता, तो कुछ भी न होता, और इस आधार पर उसके मृत्यु-दड को स्थिर रखा गया। मैंने उसकी ओर से काफी जोर के साफ सफाई पेश करते हुए कहा—"पहली बात तो यह है कि उकसाने-सबधी सारी कहानी ही गलत है और जो शब्द उसके द्वारा कहे हुए बताये गये हैं, वे उसने नही कहे थे। दूसरे यह कि अगर वे शब्द कहे भी गये तो महज छुडाने भर के लिए थे और जरूरत हो तो जबरदस्ती करके भी छुडाने के लिए थे। लेकिन किसीकी हत्या के लिए नहीं। वही एक व्यक्ति था, जिसके पास कोई हथियार नहीं था, जिसने पुलिस के किसी आदमी को किसी प्रकार की हानि नही पहुचाई और जो तत्काल

भाग गया था।" जो हो, मेरी सारी वकालत और सफाई बिल्कुल बेकार साबित हुई। जजो ने अपना निश्चय कर लिया था। उमाशकर की पत्नी हाई कोर्ट मे अपने पति की अपील की देख-भाल कर रही थी। वह कई बार मेरे पास आई थी, छोटे-छोटे बच्चे उसके साथ होते और वह बेहद परेशान और बेशुमार चिताओ की प्रतिमूर्ति दीखती थी। इससे पहले यह औरत अपने गाव के घर से कभी बाहर नही आई थी और सभी पास-पडोसी उसकी इज्जत और मान करते थे। अब वह बेचारी अपरिचित जगहो और व्यक्तियो के पास अपने पति की जान बचाने के लिए मारी-मारी फिर रही थी।

× × ×

अपील खारिज होने और हाई कोर्ट द्वारा मृत्यु-दड बहाल रहने के बाद हिंदुस्तान में मृत्यु-दड प्राप्त आदमी को जान बचाने के लिए उसके परिवार तथा उसमें दिलचस्पी रखनेवाले दूसरे लोग एक आखिरी बाजी लगानी शुरू करते है। अग्रेजी राज्य के जमाने मे इग्लैंड मे प्रिवी-कौसिल मे अपील करनी होती थी और इन दिनो नई दिल्ली स्थित सुप्रीम कोर्ट मे अपील की जाती है। यह बहुत ही अनिश्चित तरीका था और आज भी वैसा ही है। यह अपील अधिकार के नाते नही होती। अपील करने की इजाजत मागनी पडती है और यह स्वीकृति बहुत ही कम अवस्थाओ मे दी जाती है।

इस उपाय के अतिरिक्त एक दूसरा उपाय भी है, अर्थात रहम की दरख्वास्त। हर प्रात मे प्रातीय सरकार को कानून के अधीन किसी भी दड को रोकने या स्थगित करने या बदलने का निश्चित अधिकार होता था और उसके बाद इग्लैंड के ताज का प्रतिनिधि होने के नाते वाइसराय रहम की दरख्वास्त पर उस हक का प्रयोग करता था। तदनुसार रहम की दरख्वास्त देने के क्षण से ही दरख्वास्त के फैसले तक मृत्यु-दड रोक दिया जाता था। पहले यह दरख्वास्त गवर्नर के पास जाती थी। अगर वह नामजूर करता, तो वाइसराय के सामने पेश की जाती। रहम की दरख्वास्त का चाहे

जो भी रूप हो, लेकिन इतना तो जरूर था कि इस ढग से मृत्यु-दड प्राप्त व्यक्ति को जीने के कुछ अतिरिक्त दिन मिल जाते थे ।

इस बुरे दिन को टालने की यह अक्सर निराधार आशा हर किसीको प्रिवी कौंसिल में अपील के लिए दरख्वास्त करने को भी प्रेरणा करती थी। इस मामले में भी उमाशकर की पत्नी ने प्रिवी कौंसिल में अपील करने के विषय में मुझसे सलाह मागी । मैंने उमसे स्पष्टतया कहा कि इस मामले मे कोई गुजाइश नही । लेकिन इस प्रकार की भीषण अवस्थाओ में ऐसी सलाह पर कौन ध्यान देता है ? किसी दूसरे वकील की मार्फत उसने आवश्यक कार्रवाई की और इग्लैंड मे सालिसिटरो को प्रिवी कौंसिल में अपील दायर करने का आदेश कर दिया । फलस्वरूप फासी की आज्ञा रोक दी गई ।

इसी बीच उसने सयुक्त प्रात के गवर्नर को भी रहम की दरख्वास्त दे दी। इस बार भी वह मुझसे सलाह और सहायता लेने आई । उसके बोलने के लहजे और उससे भी बढकर उसकी आखो के भाव ने मुझे इस बात के लिए लाचार कर दिया कि मैं उसके पति को फासी से बचाने के लिए जो भी कर सकता हू, करू । उनकी उस दशा से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ और स्वत मेरी भी यह राय थी कि यह सजा गलत है और इस पर मृत्यु-दड तो सर्वथा अन्यायपूर्ण है । इस दृष्टि से मैंने एक बहुत ही असाधारण बात की। मैंने श्री ग्राहम विवियन को एक व्यक्तिगत पत्र लिखा, जो उन दिनो सयुक्त प्रात के गवर्नर के सलाहकार थे । १९३७-३९ में जब मैं सयुक्त प्रात में मत्री था, तो उनके साथ मेरा परिचय हुआ था । अपने पत्र के आरभ में ही मैंने लिखा था कि मैं यह पत्र एक वकील के नाते नही, बल्कि व्यक्तिगत रूप में लिख रहा हू । मृत्यु-दड प्राप्त कैदी की पत्नी और बच्चो के लिए मुझे जो सहानुभूति है, उसीकी प्रेरणावश मानवीय आधारो पर यह पत्र लिखा है । मैंने लिखा कि मेरी राय मे सजा ग़लत है, लेकिन सभव है कि गवर्नर महोदय केवल न्याय-विभागीय जाच पर निर्भर रहें और स्वय इस मामले की पडताल न करे, और चूकि यह सजा सर्वथा उनकी मर्जी का प्रश्न

होगा, इसलिए मेरे विचार से यह मृत्यु-दड पूर्णतया अन्यायपूर्ण है। इस पत्र के थोडे ही दिन बाद श्री विवियन का एक सौहार्दपूर्ण पत्र मुझे मिला। उन्होने जवाब मे लिखा था कि आपका पत्र पाने मे पूर्व ही इस मामले का निपटारा हो चुका था, और साथ ही यह भी लिखा कि यदि आपका पत्र पहले भी मिल जाता, तब भी उमसे उनकी राय मे परिवर्तन न हो पाता, क्योकि बहुत सोच-विचार के बाद वह इन निष्कर्ष पर पहुचे थे कि यह मृत्यु-दड सर्वथा न्यायपूर्ण है और तदनुसार गवर्नर को भी उन्होने यही सलाह दी थी। फलत गवर्नर ने दरख्वास्त नामजूर कर दी। लेकिन इतने से ही मैने अपने आगे के प्रयत्नो को रोका नही। सामान्य क्रम मे अब यह दरख्वास्त वाइसराय के पास जानी थी और इस बार मैने अपने स्नेही मित्र श्री श्रीप्रकाशजी (जो उन दिनो केंद्रीय धारा सभा के सदस्य थे और आजकल बबई के गवर्नर है) को पत्र लिखा। मैने उनसे निवेदन किया कि वह इस मामले के सबध में भारत सरकार के गृह-मत्री और कानून-मत्री से चर्चा करे और जैसे भी हो, इस जान को बचाये। लेकिन इसका भी कोई लाभ न हुआ और श्री श्रीप्रकाशजी के कथनानुसार गृह-सदस्य इस प्रश्न पर दृढ मत थे। परिणामस्वरूप वहा भी यह दरख्वास्त नामजूर हो गई। इस प्रकार जहा तक मेरा सबध था, इस मामले मे मेरा काम समाप्त हो चुका था और मेरे बस का कुछ भी बाकी नही रह गया था। समय बीतते मै इस मामले को भूल ही गया। मै समझता हू, यह बात १९४५ के अत की है।

इसके बाद न तो उमाशकर की पत्नी ही और न कोई अन्य व्यक्ति ही इस सबध मे मेरे पास आया।

इधर भारत में राजनैतिक परिस्थिति मे बडी तीव्रता के साथ परिवर्तन होने जा रहा था। दिसबर १९४५ मे सयुक्त प्रात के गवर्नर सर मारिस हैलेट रिटायर हो गये और उनकी जगह सर फ्रैंकिस वाईली आये। आम चुनाव हुए और १ अप्रैल १९४६ को काग्रेस-दल ने पद-ग्रहण किया और मै पुन न्याय-मत्री बना। २ अप्रैल को सबसे पहले जो फाइले मेरे सामने आई, उनमे एक फाइल थी, जिसपर 'हत्या-केस' की 'अत्यावश्यक' लाल

चिट लगी हुई थी। स्वभावत मैंने सर्वप्रथम उसे देखना शुरू किया। यह फाइल एक स्वाभाविक क्रम में मेरे सामने पेश की गई थी। न्याय-विभाग के सचिव ने उसपर सिफारिश की थी कि चूकि कैदी की अपील को गवर्नर तथा वाइसराय ने नामजूर कर दिया है, इसलिए अब फासी देने की आज्ञा जारी कर दी जाय। यह महज एक जाब्ते की खाना-पूरी का प्रश्न था और स्वत सचिव भी इसे निपटा सकता था। लेकिन मेरे खयाल में उसने सोचा कि मत्री-मडल चूकि सात बरस बाद फिर पदारूढ हुआ है, इसलिए उसने इस फाइल को मेरे सामने पेश करना मुनासिब समझा। मैंने लिखित टिप्पणियो को पढा और मुझे यह देखकर महान आश्चर्य हुआ कि यह फाइल तो मेरे पुराने मुवक्किल उमाशकर की ही थी! मेरा खयाल था कि वह तो कबका फासी चढ चुका होगा, लेकिन मालूम हुआ कि जहा उसकी रहम की दरख्वास्त गवर्नर और वाइसराय दोनो ने ही नामजूर कर दी थी, वहा प्रिवी कौंसिल में उसकी अपील का इस बीच फैसला नही हो पाया था और आखिकार १८ मार्च १६४६ को वह अपील रद्द हो गई। इस अपील की अस्वीकृति की सूचना लदन के इडिया आफिस ने भारत सरकार द्वारा प्रातीय सरकार को तार द्वारा दी थी। परिणामस्वरूप इस तार की प्राप्ति पर दफ्तर के सुपरिंटेंडेंट ने टिप्पणी लिखी थी कि फासी रोकने की आज्ञा को अब वापस लिया जाय और जेल-अधिकारियो को फासी देने का आदेश जारी किया जाय। लेकिन इस हालत में मुझे क्या करना था? इससे पूर्व १६३७-३६ के दो बरसो में जब मै मत्रिमडल में था, उस समय ऐसा कोई भी मामला मेरे सामने आता, जिसमे बतौर वकील के मुझसे सलाह ली जाती, तो मेरा यह तरीका था कि ऐसे कागजो को आज्ञा के लिए उत्तर प्रदेश के मुख्य-मत्री के पास भेज देता था।

तदनुसार मैंने फाइल पर लिख दिया कि इस मामले में मुझसे पूर्व ही सलाह ली जा चुकी है। इसलिए मै इस सबध मे कोई राय नही देना चाहता। इस बारे में मै सर्वथा मौन रहा। इसके अलावा मैंने फाइल में देखा कि श्री विवियन को लिखा मेरा पत्र और उनका जवाब भी उसमें नत्थी था। इससे

मैं खुद उमाशंकर को फांसी पर चढ़ाने की आज्ञा नहीं दे सकता था। मैंने वह फाइल मुख्य-मंत्री के पास भेज दी। इसके बाद इस विषय में मैंने और कोई दिलचस्पी नहीं ली और कालवश मैं भूल भी गया।

बहुत दिनों बाद, बात-बात में विभाग के सचिव ने मुझे बताया कि सरकार ने मृत्यु-दंड की जगह इस आधार पर आजीवन कारावास की सज़ा देने का निर्णय किया है कि कैदी के सिर पर लगभग तीन वर्ष तक मृत्यु-दंड लटकता रहा है, इसलिए उसे फांसी पर चढ़ाना असमानवीय जान पड़ता है।

यदि कांग्रेस मंत्रि-मंडल चार दिन बाद पद-ग्रहण करता या फाइल मेरे सामने पेश किये बिना ही दफ्तर से फांसी की आज्ञा जारी हो जाती, तो वह आदमी फांसी के तख्ते पर झूल जाता। लेकिन भाग्य को वह मंजूर न था और परमात्मा की दया से उसकी जान बच गई।

इसके कई महीने बाद का जिक्र है। मैं उस जिले का दौरा कर रहा था। एक दिन कानपुर लौटते हुए रात के नौ बज गये। एक जगह मैंने देखा कि सड़क पर लालटेनों और टार्चों के साथ बहुत-से लोग जमा हैं। कार रोकी गई और मैंने पूछा कि क्या बात है। उन्होंने जवाब दिया कि आप चूंकि जमींदार उमाशंकर के गांव से निकल रहे हैं, इसलिए उमाशंकर के परिवार की स्त्रियां आपके दर्शन करना चाहती हैं। मेरा दिल भर आया और मेरी आंखों में उमाशंकर की युवा पत्नी की उन दिनों की दयनीय अवस्था का चित्र आ गया। मैं कार से उतर पड़ा और एक या दो फर्लांग पैदल चलकर उमाशंकर के मकान पर पहुंचा। वहां उसकी पत्नी ने मेरे पांव छुए। मैंने देखा कि सारा मकान एक खंडहर की हालत में है। उसने बताया कि थानेदार की हत्या के बाद पुलिसवालों ने इस घर को हर तरह से नष्ट कर डाला और सब-कुछ लूट लिया। मैं नहीं जानता कि वह सच था या झूठ, पर मकान की हालत स्वयं ही बतला रही थी।

इसीको कहते हैं भाग्य का चक्र।

१६ :

पहियों के निशान

फौजदारी मामलो में अभियुक्त हवालात में होता है, इसलिए वकील को अपने मुवक्किल से कोई खास सहायता नही मिल पाती। इसपर अदालत में कैदी अक्सर अपराध-स्थल से अपनी गैर-मौजूदगी का समर्थन करता है, जो या तो कोरा झूठ होता है या ऐसे सवूत के सहारे पेश किया जाता है जो सहज ही झूठ साबित हो जाता है। इसके अलावा भारत में अभियुक्त की सबसे पहली प्रवृत्ति यही रहती है कि वह अपराध-स्थल से, जितना सभव हो, दूर चला जाय और बाद में यह कह सके कि वह तो वहा मौजूद ही नही था। एक आदमी के बारे में यह कहा जाता है कि उसने कलकत्ते में अमुक की हत्या की और उसका यह कहना कि वह ठीक हत्या के समय लाहौर में था, उसके वकील के लिए बडा टेढा प्रश्न बन जाता है। उस दशा में वकील ऐसे गुणो के आधार पर एक दूसरा मामला तैयार करने में अपनी सहज बुद्धि और अनुभव पर ही निर्भर रह सकता है, ताकि उसका मुवक्किल अपराध से मुक्त हो जाय। दडित या अपराधी व्यक्ति से मामले की सचाई पूछना निर्दयता ही नही, बल्कि मूर्खता है। इसलिए अभियुक्त के साथ तो मैं बहुत कम बात करता था। मैं केवल मिसलो को पढता और अपने साथियो के साथ मामले पर विचार कर लेता। यह विचार ही वस्तुत बौद्धिक श्रम बन जाता था और इस विचार-विनिमय में हम शरलॉक होम के सब नियमो के अनुसार अमल किया करते थे।

उदाहरण के लिए आप इस विचित्र नियम को लीजिये कि आप एक आदमी या गतिशील वस्तु का पीछा करते है और आपको शारीरिक रूप में उस आदमी या वस्तु का उन अवस्थाओ में उत्तर, दक्षिण और पूर्व दिशा में जाना असभव जान पडता है। तो आप कितनी शका होने पर भी उसके जाने की दिशा पश्चिम मान लेंगे और आप उसी दिशा में उस

की खोज करने लगेगे। यह नियम है तो मामूली-सा, लेकिन अक्सर इसकी उपेक्षा की जाती है। शरलॉक होम के इसी सरल से नियम के सहारे शिवमगलसिंह फासी के तख्ते से साफ बरी हो गया। अपने वकालत के जीवन मे मुझे वह मुकदमा बडे मार्के का जान पडा था। महज एक ही बात के कारण एक आदमी का मृत्यु के मुह मे साफ बच जाने का मुझे कभी अनुभव नही हुआ था। मै नही जानता कि सचाई क्या थी और न शिवमगलसिंह को मैने उस एक दिन के बाद कभी देखा, जब वह इलाहाबाद हाई कोर्ट में अपनी अपील मे हाजिर हुआ था। सेशन अदालत मे इस्तगासे की वह कहानी इस प्रकार पेश की गई थी

एक किसान ने एक दिन दोपहर के समय अपने खेत मे खून के बडे-बडे धब्बे देखे। यह खेत उसके गाव से काफी फासले पर एक नहर के किनारे के पास था। नहर के किनारे की सडक कुछ दूरी पर एक ऐसी देहाती कच्ची सडक से जा मिलती थी, जो उत्तर से दक्षिण को जाती थी। किसान खून के उन दागो को देखकर बडा परेशान हुआ। वह गाव मे आया और उसने गाव के चौकीदार को इसकी सूचना दी। फौरन चौकीदार किसान के साथ उस खेत मे गया और उसने इस बात की तसदीक कर ली। इसके बाद पुलिस-थाने मे जाकर देखी हुई घटना की रिपोर्ट दर्ज करा दी गई। इस पर थानेदार एक सिपाही के साथ घटना-स्थल पर गया। लगभग सूरज डूबने के समय की यह बात है। थानेदार ने बडे गौर से इधर-उधर देखा। उसे एक स्थान पर कुछ मात्रा मे खून और देसी स्लीपरो का एक जोडा दिखाई दिया। इससे आगे उसने ऐसे निशान देखे कि किसी आदमी या वस्तु को खेत के पार खीचकर ले जाया गया है। ये निशान उसे नहर के किनारे के साथ-साथ जानेवाले उस रास्ते पर ले गये, जहा उसने दो पहियो के निशान देखे। इन लकीरो का उसने पीछा किया और आखिरकार वह ऊपर कही लम्बी-चौडी सडक पर पहुचा गया। वहा रुक कर उसने

देखा कि छकडे के पहियो की लकीरे उत्तर और दक्षिण दोनो दिशाओ में जा रही है। अपनी दी हुई गवाही के अनुसार पहले तो वह उत्तर दिशा की ओर गया और उसने देखा कि वे लकीरे लगभग १०० गज तक एक काफी चौडी लेकिन सख्त जमीन तक चली गई है और उसी-में उस राह का भी अत हो गया। उसने सोचा कि यह तो धोखे की पगडडी है, इसलिए वापस ही लौटना बेहतर होगा। तदानुसार वह मुडा और दक्षिण दिशा में चला। इस ओर उसे अधिक सफलता मिली, क्योकि लगभग दो फर्लांग तक बिल्कुल साफ-साफ पहियो के निशान बढते गये थे और पेडो के एक बडे झुड में उनका अत हो गया था। जो हो, यह थी वह जगह, जहा बडी भयकर घटना घटी थी, क्योकि यहा ढेरो लहू के सूखे हुए धब्बे थे। पहियो के निशान इससे आगे नही गये थे। सारे मामले का यही अत हो गया था। साफ जाहिर था कि यहा पर किसी-की हत्या की गई है। चारो ओर खेतो में फसलें उगी हुई थी, पुलिस-दल अधिक पता लगाने के लिए इधर-उधर गया। एक खेत में एक जगह कुछ-कुछ ताजी मिट्टी भरी दिखाई दी और खुदाई करने पर उसमें से एक बडल मिला, जिसमें बहुत से वस्त्र थे और उनमें एक बहीखाता लिपटा हुआ था। थोडी-बहुत परेशानी के बाद लोगो ने उस बडल को पहचान लिया और बताया कि वह रामनारायण फेरीवाले का है। वह अपने हाथ-ठेले पर सामान लाद कर हर हफ्ते गाव की पैंठो में जाया करता था और बहीखाते मे वह अपने ग्राहकों का लेन-देन दर्ज करता था। यह खेत शिवमगलसिह का था। इस बीच अधेरा भी हो चुका था और सडक का यह दक्षिणी छोर भी यही खत्म हो जाता था। इसलिए थानेदार अपने सिपाही के साथ गाव में आ गया और उसने जमीदार के घर में रात बिताई। अगले दिन जो उसने किया, उसमे यह मामला उलझ गया। अपनी गवाही के अनुसार, जिसे जज ने स्वीकार किया था, उसकी गति-विधि सर्वथा स्वाभाविक-सी रही और अपनी जाच-पडताल के बारे में उसने किसी प्रकार की दिल-

चस्पी नही प्रकट की। उसने शिवमगलसिह को बुलवाया, पर वह गाव में हाजिर नही था। थानेदार ने गाववालो के साथ सरकारी ढग से इस मामले पर विचार किया। लेकिन जब वह घटना-स्थल पर जाने लगा, तो गाववालो ने उसे थोडा रुकने को कहा। उन्होने बताया कि शिवमगलसिह आ गया है और इस बारे मे कुछ बता सकता है। थोडी देर बाद वे शिवमगलसिह को थानेदार के सामने ले आये और शिव-मगलसिह ने सब-कुछ साफ-साफ बतला दिया। उसने यह कबूल किया कि उसने रामनारायण की हत्या की और उसके वस्त्रो को अपने खेत मे दबा दिया और रामनारायण के शव को अढाई मील दूर एक जगल के कुए में फेंक दिया। उसने उस कुए का पता बताया और थाने-दार ग्रामीणो के दल के साथ उस कुए पर गया, लेकिन शिवमगल-सिह इस दल में नही था। थानेदार ने बताया कि उसके साथ केवल एक ही सिपाही था और उसका खयाल था कि शिवमगलसिह को कुए तक ले जाने में खतरा हो सकता है। सभव है, वह भाग जाय। इस-लिए थानेदार उसे जमीदार के मकान मे ताला लगाकर बद कर गया और सिपाही को उसकी चौकसी पर तैनात कर गया। कुए में उतर-कर रामनारायण का शव बाहर निकाला गया। इसके बाद थानेदार और सारा दल गाव मे लौट आया और शिवमगलसिह से अधिक जाच की गई। उसने छकडे का भी पता बताया। छकडे का ढाचा और पहिये अलग-अलग थे। ढाचा तो उसके घर ही के पास था और पहिये एक खेत में अरहर की फसल और घास के ढेर के नीचे पडे थे। थानेदार के इस बयान का उन कई ग्रामवासियो ने समर्थन किया था, जो शिवमगल-सिह के प्रति किसी तरह का द्वेषभाव नही रखते थे। इन ग्रामवासियो ने शिवमगलसिह के अपराध कबूलने का समर्थन किया था। उनके कहने के अनुसार थानेदार के पास से पहले शिवमगलसिह ने लोगो के सामने भी अपराध कबूला था। लेकिन इस अपराध का आखो-देखा कोई गवाह न था। सारा मामला शिवमगलसिह की कबूली और उसकी सूचनानुसार शव

और छकडे की प्राप्ति पर ही निर्भर था। यदि यह सबूत विश्वस्त था—और जज इसे शब्दश मान लेता है—तो इस मामले का यही अत हो जाता है और शिवमगलसिह को फासी होगी ही। तदानुसार उसे फासी की सजा हुई और उसने हाई कोर्ट में अपील कर दी।

जब मैंने गवाहियो को पढा, तो उनमें कही गुजायश नही थी। सभी गवाह भले आदमी नजर आते थे और शिवमगलसिह को फासी के तख्ते पर झुलाने में भी उनका मकसद नजर नही आता था। लेकिन भारत में मौखिक साक्षी को महत्व देने मे यही एक निर्णयात्मक अश नही होता। एक आदमी भारत की कानूनी अदालतो में झूठी गवाही क्यो देता है, इसका कारण या उद्देश्य जान लेना भी कभी-कभी बडा कठिन हो जाता है। बहुधा इसमें थाने या थानेदार के पक्ष को ही समर्थन देने की इच्छा निहित होती है। कई बार मुझे ऐसा मौका पडा है, जब किसी जज ने मुझे विपरीत स्थिति में डाल दिया और मैंने इस सवाल का जवाब देने से इन्कार कर दिया कि क्यो अमुक गवाह झूठ बोलता है। मेरा कहना था कि इस सवाल का जवाब देना मेरे लिए सभव नही है।

इस खास मुकदमे में गवाहो के विरुद्ध कुछ भी नही कहा जा सकता था, लेकिन एक बात से तो मुझे भारी आश्चर्य हुआ कि थानेदार जब कुए में से शव को निकालने गया था, तो वह शिवमगलसिह को साथ नही ले गया था। जब कभी पुलिस अभियुक्त की सूचना पर किसी चीज को बरामद करने जाती है, तो वस्तु के बरामद होने के समय अभियुक्त को अवश्य हाजिर किया जाता है और अमल में वही व्यक्ति घटना-स्थल से वस्तु बरामद करने की विधि बतलानेवाला होता है। शिवमगलसिह को इसलिए नही ले जाया गया था, क्योंकि उसका पुलिस की हिरासत से भाग जाने का डर था। यह कहानी मुझे मन-गढत लगी। क्या यह नही समझा जा सकता कि कुए में से शव की प्राप्ति किसी और ही कारण हुई थी? लेकिन यदि शिवमगलसिह ने पुलिस को न बताया होता, तो पुलिस उसके बारे

मे जान भी कैसे सकती थी ? यह एक विचारणीय प्रश्न था, क्योंकि वह कुआ आने-जाने की राह से बिल्कुल हट कर और बडी दूरी पर एक जगह में था और कोई भी जाच करनेवाला अफसर किसी निश्चित सूचना या किसी उचित कारण के विना उसमे खोज करने की सोच भी नही सकता था। यहा मुझे एक खास दस्तावेज मिला, जो मुझे बहुत ही महत्वपूर्ण और सारे भेद को स्पष्ट करनेवाला दिखाई दिया। लेकिन मातहत अदालत ने उसपर तनिक भी ध्यान नही दिया था। वह था घटना-स्थल का नक्शा, जो थानेदार ने अपनी खोज के दौरान मे गवाही के साथ पेश किया था। इस घटना-स्थल के नक्शे मे जिन बातो का मै उल्लेख कर चुका हू, वे सब स्पष्टतया दिखाई गई थी। लेकिन उत्तर दिशा मे यह नक्शा एक कहानी को प्रकट करता था। पहिये के निशान उत्तर दिशा मे थोडी दूर तक साफ-साफ दिखाये गये थे और उसके बाद ५०-७५ गज का एक सूखा और कठोर भूमि का हिस्सा आता था, जिसपर कोई निशान नही थे। उसके बाद नरम भूमि आ जाती थी और निशान फिर शुरू हो जाते थे, जो बहुत दूर तक तक गये थे। तब एकाएक दाई ओर घूम गये थे। ये निशान सीधे कुए तक पहुचते थे। मेरे खयाल मे यह नक्शा बहुत ही महत्वपूर्ण था और तत्काल ही मुझे लगा कि शिवमगलसिह का कथन थानेदार को कुए तक नही ले गया था, पहिये के निशानो का ही यह खेल है, और ये निशान ही असली सूचना देनेवाले है। पुलिस ने अपनी चतुराई से बेचारे शिवमगलसिह पर इस बरामद होने के तथ्य को लाद दिया है। मैने मन-ही-मन अनुमान लगाया कि अगर शरलॉक होम को इस खोज का काम सौपा जाता, तो वह क्या करता। निश्चय ही वह, जबकि गध तेज थी, शिकारी कुत्ते की तरह उनका पीछा करता। वह थानेदार की तरह गाव में ही सबेरे का सारा वक्त न गवाता, बल्कि अधेरे ही उठकर घटना-स्थल की ओर चल देता। यदि आवश्यक होता, तो वह दक्षिणी छोर को भी फिर से देख जाता और यदि उसे जचता कि वह नितात

अतिम छोर है, तो वह अपने-आप से कहता—"छकडे हवा में गायब नही हो जाते। यदि यह छकडा पश्चिम की ओर नही गया और चूकि पूर्व और पश्चिम का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता, तो वह निश्चय ही उत्तर को गया होगा, अत मुझे फिर से उत्तर की ओर चलना चाहिए।" इसलिए वह फिर से उत्तर दिशा की ओर जाता और सख्त जमीन के टुकडे को देखने के बाद वह और आगे बढता। उसके बाद फिर मे उसे पहियो के निशान मिल जाते, जो उसे सीधे कुए पर ले जाते। फिर मैंने मन-ही-मन सोचा कि मुझे इससे क्या मतलब है कि थानेदार शरलॉक होम-जैसा चतुर था या नही ? थानेदार की मौजूदा गवाही का एकमात्र आशय शिवमगलसिह को फसाना था। उसे शव मिल गया था और उसके बाद उसने खयाल किया कि वस्त्रो का बडल चूकि शिवमगल के खेत में दबा हुआ पाया गया, इसलिए वही असली अपराधी होगा और उसीको इस अपराध मे फासा जा सकता है। इस प्रकार, जहा तक शिवमगलसिह के जीवन का सबध था, वह मृत देह इस मामले में बडा ही ज्वलत प्रमाण था। इस दृष्टि से विचार करने से यह बहुत ही सहज-सा जान पडा और मैंने अदालत में इस ढग से उसे पेश करने का निश्चय किया।

वह पेशी मुझे कभी नही भूलेगी। मुकदमा इलाहाबाद हाई कोर्ट के दो प्रमुख न्यायाधीशो सर जेम्स आलसप् और श्री गगानाथ के सामने पेश हुआ था। जैसे ही मैं अदालत के कमरे में दाखिल हुआ, मैंने देखा कि शिवमगल ड्योढी में से झाक रहा है। पीला-जर्द उसका चेहरा था। उस मुझे नमस्कार किया। मैंने नमस्कार का जवाब दिया, लेकिन उसके साथ कोई बात नही की। बात करने से कोई फायदा भी नही था। लगभग साढे दस बजे मुकदमे की सुनाई शुरू हुई। मैंने सक्षेप में मुकदमे के तथ्यो को पेश किया। अपने तर्क को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए मैंने मच पर जाने की स्वीकृति ली। मच पर जाकर मैंने विद्वान जजो के सामने घटना-स्थल का नक्शा पेश किया, जिसका आश्चर्यजनक

हुआ। मैंने चालीस मिनट से भी कम समय लिया होगा, लेकिन मेरी बात विद्वान जजो को जच गई। सरकारी वकील मिस्टर मोहम्मद इस्माइल थे। फौरन ही सर जेम्स आलसप् ने उनसे कहा—"कहिये, आपको क्या कहना है? मैं समझता हू कि तथ्य वही है जो डा० काटजू ने उपस्थित किया है।" मिस्टर इस्माइल ने शिवमगल की अपने साथी ग्रामीणो से कबूलने-सबधी मौखिक गवाही का उल्लेख किया, लेकिन सर जेम्स पर इसका कोई असर न हुआ। उन्होंने कहा कि कथित जबानी कबूलने के आधार पर सजा को स्थिर रखना मुमकिन नही। छकडे के निशान ही इस मामले के असली निर्णायक हैं। घटे भर के अदर-अदर उन्होंने अपना फैसला लिख दिया।

इसी बीच मुझे दूसरी अदालत मे पेश होने का बुलावा आ गया और जैसे ही मैं अदालत के कमरे से बाहर निकल रहा था, शिव-मगल ने मुझे देखा। उसने खयाल किया कि मैं उसके मुकदमे को बीच ही में छोडे जा रहा हू, सलिए मैंने उससे बस इतना ही कहा—"तुम छूट गये।" उसे अपने कानो पर जैसे विश्वास नही हुआ और विस्फारित आखो एव कपित स्वर मे उसने चिल्लाना शुरु किया—"हम छूट गये। हम छूट गये!"

: २० :

जवाहरलाल नेहरू : वकील के रूप में

पडित जवाहरलाल के इलाहाबाद हाई कोर्ट में वकील के रूप में कार्य करने के बारे में अक्सर लोग मुझसे पूछा करते है। १९१२ मे इग्लैड मे उन्होने वकालत पास की थी और उसी साल स्वदेश आकर इलाहाबाद-बार मे शामिल हुए। उनके पिता पडित मोतीलाल नेहरू उन दिनो चोटी के वकील थे और सयुक्त प्रात-भर मे उनका नाम था।

कानपुर की अदालतो मे छ बरस तक काम करने के बाद मैं इलाहा-

वाद ग्रा गया ग्रौर १९१४ में इलाहावाद हाई कोर्ट-वार का सदस्य वन गया। जवाहरलाल, जैसाकि उन्होने ग्रपनी ग्रात्म-कथा में लिखा है, १९१६ में श्रीमती एनी वेसेंट द्वारा चलाये होम-रूल ग्रादोलन की ग्रोर ग्राकर्पित हो गये। वह तन-मन से इस ग्रादोलन में काम करने लगे। यह १९१७ की वात है। उसके वाद पजाव के मार्शल लॉ ग्रौर उसके वाद की घटनाए जवाहरलाल को ग्रदालतो के रग-मच से दूर ले गई। इस प्रकार जवाहरलाल के ग्रदालती जीवन की ग्रवधि चद वर्प ही रही। वह ग्रौर मै एक-दूसरे को भली प्रकार जानते थे, लेकिन वहुत घनिष्ठता नही थी। हम हाई कोर्ट में मिला करते थे, परतु सामाजिक सवध वहुत थोडा था। उन दिनो मै ऐसा कर भी नही सकता था। १९१९ के वाद जव जवाहरलाल गाधीजी के प्रभाव में ग्राये ग्रौर उन्होने तन-मन से ग्रपने-ग्रापको काग्रेस-ग्रादोलन में झोक दिया, तभी से वह जनता में मिलने लगे ग्रौर तभी से मेरे सवध भी उनके साथ घनिष्ठ हो गये, ग्रन्यथा वह ग्रौर मै ऐसी दुनियाग्रो में रहते थे, जो एक-दूसरे से वहुत दूर थी।

लोगो को इस वात का शक है कि जवाहरलाल ग्रपने पिता के समान ही ग्रदालती काम में सफल होते या नही। इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है ग्रौर इसके विषय में केवल कल्पना ही की जा सकती है। ग्रदालती सफलता का भेद वस्तुत कई सदियो से एक रहस्य ही है। जवाहरलाल ने वकालत-जीवन को पडित मोतीलाल नेहरू के पुत्र के तौर पर शुरू किया था, जिससे उनको भारी लाभ था। सामाजिक रूप में सभी जज उन्हें जानते थे ग्रौर उनका व्यावसायिक रूप में सयुक्त प्रात के प्रमुख परिवारो, जमीदारो ग्रौर उद्योगपतियो के साथ भी सामाजिक सवध हुग्रा होगा, जो कानूनी पेशे की खुराक है। मुझे भली प्रकार याद है कि एक वर्प से भी ग्रधिक काल तक उन्होंने मशहूर लाखना-केस में पडित मोतीलाल नेहरू के जूनियर वकील के तौर पर वडी कडी मेहनत की थी। यह मुकदमा कई वरसो तक चलता रहा था ग्रौर ग्राखिरी दौरान में मैं भी पडित मोतीलालजी के जूनियर के तौर पर काम करता रहा था। ग्रपनी वकालत के

मे मेरा और उनका बहुत कम ही वास्ता पडा, लेकिन दो मुकदमे मुझे याद है, जिनमे वह और मै साथ-साथ पेश हुए थे ।

पडित मोतीलालजी ने कानपुर मे १८८० के आस-पास वकालत शुरू की थी और कानपुरवासी आजीवन उनका मान करते रहे । वे उन्हे प्रेम करते थे और उन्हे अपना आत्मीय समझते थे । उनके युवाकाल के वहा कई मित्र थे, जिनके साथ श्री मोतीलालजी का घनिष्ठ सबध था । उनमे एक बाबू वशीधर थे, जो कानपुर मे स्नेहवश बसीबाबू के नाम से मशहूर थे । इलाहाबाद के नेहरू-परिवार और कानपुर जिला अदालत के प्रमुख नेता पडित पृथ्वीनाथ के साथ उनकी गहरी घनिष्ठता थी । मै समझता हू कि बसीबाबू ने जवाहरलाल को बचपन मे जरूर खिलाया होगा और १९०८ में जब मैंने कानपुर में अपना जीवन आरभ किया था और बसीबाबू को मालूम हुआ कि मै पडित पृथ्वीनाथ का जूनियर हू, तो तत्काल उन्होने मुझे अपने आश्रय में ले लिया। बसीबाबू के जीवन की अनेक दिशाए थी । वह जमीदार थे, एक तरह से साहूकार थे और सबके मित्र थे । उनकी बिरादरी का एक नौजवान था, जिसने बैंक मे नौकरी करनी चाही थी । उससे अच्छे आचरण के प्रमाण के लिए कहा गया । वह बसीबाबू के पास गया और उन्होने फौरन दो हजार रुपये की जमानत दे दी । इस आदमी को नौकरी तो मिल गई, लकिन कुछ बरसो बाद बैंक से कुछ पया गायब हो गया । आदमी देनदार ठहराया गया और जमानती होने के कारण बसीबाबू को वह हानि पूरी करने के लिए कहा गया । स्वभावत ही वह इस जिम्मेदारी से छूटना चाहते थे । प्रश्न यह था कि जमानत की शर्तें इस मुकदमे के अनुकूल है । बैंक ने अदालत मे मुकदमा किया और कानपुर की अदालत ने फैसला दिया कि बसीबाबू देनदार है और उन्हे यह अदायगी करनी होगी । वह इलाहाबाद आये और इस मामले को अपने घनिष्ठ मित्र पडित मोतीलाल और डाक्टर तेजबहादुर सप्रू के पास ले गये । बसी-बाबू जब कभी इलाहाबाद आया करते थे, तो मेरा खयाल है कि वह हमेशा आनद भवन में ठहरा करते थे । दोनो ने ही इस मामले को निराशापूर्ण

बताया। उसके बाद वह मेरे पास आये। मुझे बडा आश्चर्य हुआ, लेकिन वह बिल्कुल स्पष्टवादी थे। उन्होने कहा कि पडित मोतीलाल से मैंने सलाह ली थी। मोतीलाल ने कागजात भी पढे, परतु मामले को निराशापूर्ण बताया। पर साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि यह मामला बहुत-ही मामूली-सा है। मुझे यह निराशापूर्ण जान पडता है, लेकिन मेरा सुझाव है कि इन छोटे मुकदमो के लिए तुम्हें जवाहरलाल और कैलास-नाथ-जैसे नये खिलाडियो के पास जाना चाहिए। उन्हें अपने कागजात दिखाओ। उनके पास काफी समय है और बहुत मुमकिन है कि वे कोई नुक्ता खोज निकालें। न तो मेरे पास और न तेजबहादुर के पास समय है और न हमारी इसमें कोई दिलचस्पी है। इस तरह बसीबाबू मेरे पास आये थे। ये बातें दोहराने के बाद वह मुझसे बोले—"मै जवाहर-लाल से तो मिल चुका हू और अब मै आपके पास आया हू। चाहे कुछ भी हो, इसकी मुझे परवाह नही, लेकिन मैंने इस मामले पर अदालत में लडने का फैसला किया है। मै अभी तक किसी मुकदमे में कभी नही हारा हू और मुझे विश्वास है कि आप दोनो मेरे इस मुकदमे को जीतेंगे।" मै हसा और बोला—"यह तो सलाह मागना नही, बल्कि आदेश देना है।" तदानुसार जवाहरलाल और मैंने इस मामले का अध्ययन किया और हमें उसमें कुछ तत्व नजर आया। हमने अपील के मुद्दे लिखे और मैंने जवाहरलाल से कहा—"अपील की स्वीकृति की प्रारभिक बातो को अब तुम पूरा कर जाओ।" जवाहरलाल ने बडी कामयाबी के साथ वह काम किया। यह मामला तो मजूर हो गया, लेकिन तभी बेचारे बसीबाबू स्वय ही चल बसे और अपील की आखिरी पेशी से पहले ही जवाहरलाल भी राजनीति में चले गये।

एक और मामले में हम एक-दूसरे के विरोधी थे। गर्मियो के दिनो में एक रोज नारायणदास नामक (बसीबाबू की बिरादरी का) एक व्यक्ति एक मुकदमे के फैसले के साथ आया। कानपुर में वह यह मुकदमा हार चुका था और उसने मुझे अपील दाखिल करने को कहा। उसने मुझे

बताया कि मुकदमा तो बिल्कुल निराशापूर्ण है, लेकिन अपील दाखिल करनी ही होगी, क्योंकि यदि फैसला बहाल रहा तो वह उस एक मकान मे बेदखल हो जायगा, जिसमे उसका परिवार लगभग पचास बरसो मे रह रहा था। इसके अलावा इस समय कानपुर मे कोई मुनासिब मकान भी नही है और बरसात के दिन नजदीक है। इसलिए वह बेदखली को कुछ दिन टालना चाहता है और वह केवल अपील दाखिल करने मे ही हो सकता है। मैंने कागजो को पढा और सचमुच यह मुकदमा बिल्कुल निकम्मा था। इसकी शुरुआत औरतो के बीच झगडे मे हुई थी। पता लगा कि एक सपन्न व्यक्ति (नारायणदास के नाना) के तीन बेटे और एक बेटी थी। उसके पास बहुत-सी जायदाद और कई रिहायशी मकान थे। बेटी एक मध्यम वर्ग के परिवार मे ब्याही गई थी और पिता ने अपनी बेटी को इन मकानो मे से एक मे रिहायश की मजूरी दे दी थी। वह न केवल अपने पिता के जीवन-काल मे ही वहा रही, बल्कि उसकी मृत्यु के बाद भी अपने भाइयो की रजामदी से रहती रही। ये लोग असदिग्ध रूप मे उस सपत्ति के मालिक थे। कमेटी के रजिस्टरो मे मालिको के तौर पर उनके नाम दर्ज थे, वे सब तरह के टैक्स अदा करते थे और अगर मै गलती नही करता तो वे मकान के एक हिस्से मे अपनी गायो को भी रखा करते थे। आखिरकार तीनो भाइयो ने अपना बटवारा कर लिया। यह मकान उनमे से उस एक के हिस्से आया, जो स्वत निस्सतान था और उसकी मृत्यु के बाद उसकी पत्नी उत्तराधिकारिणी होने के नाते इस मकान की मालकिन बन गई। यह १९१४ की बात है। इस मकान मे इस औरत की ननद अपने बच्चो और पोतो के साथ रहती थी। मुझे बताया गया कि दोनो औरतो मे मेल-जोल था, लेकिन कुछ दिन हुए, उनमे आपस मे कुछ झगडा-सा हो गया। इस पर इस मकान मालकिन ने ननद से कह दिया—"मेरे मकान से निकल जाओ।" वह नही निकली और इसलिए यह मुकदमा हुआ। इस मामले का कोई जवाब नही था और न कोई वसीयत थी। इतने पर भी प्रतिवादी के वकीलो ने समय लेने के लिए विपरीत स्वत्वाधिकार का समर्थन

किया और एक छोटे जज ने उनके पक्ष में फैसला भी दे दिया। जिला जज की अदालत में अपील करने पर यह मामला खत्म हो गया, क्योंकि विपरीत स्वत्वाधिकार का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था। जिला जज ने मकान-मालकिन के हक में फैसला किया। जैसाकि मै पहले भी कह चुका हू, नारायणदास खुद भी जानता था कि इस मामले में जान नही है, और वह चार मास तक इस मकान में और रहना चाहता था। मैंने उमसे साफ-साफ कह दिया कि यह मामला मेरी ताकत से बाहर है। अगर मेरे जैसे जूनियर वकील ने इसकी अपील को प्रारभिक पेशी में वहस की, तो मुमकिन है कि यह मजूर ही न हो। इसलिए किसी बडे वकील को ही करना चाहिए। नारायणदास फौरन मान गया और मैंने डाक्टर तेजबहादुर को प्रेरणा की कि वह मुकदमे में मेरे बडे वकील बन जाय। अपील एक जज के सामने पेश हुई, जो मजूरी देने में तनिक उदार थे। डाक्टर सप्रू उठे और उन्होने कहा—"कानूनी प्रश्न अवधि-सबधी है।" और विद्वान जज ने कहा—"नोटिस जारी कर दिया जाय।" इस तरह एक बाधा तो पार की गई और उसके बाद मैंने बेदखली की आज्ञा को रोकने की दरख्वास्त दी, जो यथाक्रम मजूर कर ली गई। कुछ सप्ताहो के बाद वकीलो की लाइब्रेरी में पडित मोतीलाल ने विनोद मे कहा—"कैलासनाथ, क्या तुमने यह नियम ही बना लिया है कि कानपुर के हरएक मुकदमे की अपील की जाय?" पहले तो मैं समझा नही और बोला—"भाईजी, क्या बात है?" इसपर वह बोले—"वह बुढिया औरत आनद भवन में आई थी और जवाहरलाल की मा के पास गई थी। उसने अपना सारा मामला उनसे कहा था। इसके बाद उन्होने इस विषय मे मुझसे चर्चा की और मुझे उसे मजूर करना पडा। यह बिल्कुल ही निकम्मा मुकदमा है। तुमने इसकी अपील कैसे की?" इसपर मैंने उन्हें सारी कहानी सुनाई और उन्होने वादी का मामला लेना स्वीकार किया।

मैं समझता हू कि लगभग दो बरस के बाद वह अपील चीफ जज हेनरी रिचर्ड्स और श्री जस्टिस रफीक के सामने पेश हुई

मोतीलाल उस दिन थे तो इलाहाबाद मे ही, लेकिन सभवत उन्हे घर पर ही कोई अधिक आवश्यक काम था, इसलिए उन्होने इस मुकदमे की अपील जवाहरलाल को सौंप दी। इस तरह जवाहरलाल अपने पिता की ओर से इस मुकदमे मे पेश हुए।

अदालत के कमरे मे बडी भीड थी। मेरे बडे वकील डाक्टर तेजबहादुर मेरे पास बैठे थे। डाक्टर सप्रू और मैं दोनो ही जानते थे कि यह मुकदमा निस्सार है। जब मुकदमा पेश हुआ, तो स्वभावत मैं आशा करता था कि डाक्टर सप्रू खडे होगे। लेकिन उन्होने मुझसे कहा—"कैलासनाथ, इसमें है तो कुछ नही। तुम्ही जवाब दो और इसे खत्म करो।" मैं उठा और मैंने अभिनय शुरू किया। मैंने केवल तथ्य ही पेश किये और कई बार दोहराया कि बेटी और उसका परिवार चालीस साल से भी ज्यादा समय से मकान में रह रहा है और अधिक जोर देने के लिए मैंने कहा—"श्रीमान, नारायणदास तो वस्तुत इस मकान मे ही पैदा हुआ था।" जब मैंने यह कहा तो मैंने देखा कि सर हेनरी रिचर्ड्स ने अपना मुह एक कापी से ढक लिया और उन्हे झपकी आ गई। साथी जज ने भी इस बात को भाप लिया और उन्होने बडे टेढे-टेढे सवाल मुझसे किये। जब यह प्रश्नोत्तर जारी था, तो मैंने देखा कि सर हेनरी के मुह पर पडी कापी हिलने-डुलने लगी है। स्पष्टतया वह जाग गये थे और हर किसीको यह जाहिर करने की कोशिश कर रहे थ कि वह वास्तव मे सोये नही थे, लेकिन बडी गहराई के साथ मुकदमे का अध्ययन कर रहे थे। मैंने उन्हे देखा कि वह मुकदमे को उस जगह पर पढ रहे थे जहा नारायणदास को पैंतीस वर्ष की आयु का बताया गया था। उनके सोने से पहले मैंने यह आखिरी शब्द कहे थे—"श्रीमान, नारायणदास इस घर मे ही पैदा हुआ था।" मैंने देखा कि उन्होने फिर पन्ना पलटा और एकाएक मुझसे पूछा—"क्या आपने यह कहा था कि नारायणदास इस घर मे पैदा हुआ था?" मैंने कहा—"हा जनाब, यही।"

चीफ जज बोले—"लेकिन नारायणदास की उम्र तो पैंतीस वर्ष की है।"

मैंने जवाव दिया—"जनाव, यही तो मेरा तर्क है। यह परिवार इस मकान में पिछले पचास वर्ष से है और बच्चे और पोते इसमें पैदा हुए हैं।"

चीफ़ जज वोले—"वडी फिजूल वात है। दूसरी ओर से कौन है?"

इससे पहले कि मैं अपनी वात की पुष्टि में कुछ और निरर्थक वातें कहने की कोशिश करू, डाक्टर सप्रू ने मेरे चोगे के छोर को खीचा और फुसफुसाये कि वस करो, और मैंने वैसा ही किया। अव जवाहरलाल की वारी थी। जवाहरलाल ने वडी शाति के साथ कहा कि यह मामला स्वत्वाधिकार के प्रश्न का है और जिला जज ने इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है। सर हेनरी रिचर्ड्स ने निर्णयात्मक ढग से कहा—"हा, मुझे मालूम है। यह तथ्य मालूम करने का मामला है और इसमें हम दखल नही दे सकते, लेकिन मैं आपको यह वता दू कि तथ्य-ज्ञान का यह सर्वथा विपरीत रूप है। वादी के पक्ष में कोई न्याय की वात नही है।" सर हेनरी कुछ समय तक ऐसा ही कुछ कहते रहे और तव एकाएक वोले—"लेकिन आपका पक्ष तो औरत का है। इस मामले में औरत का अस्तित्व कहा से आ गया?"

जवाहरलाल ने तीन भाइयो के वटवारे का उल्लेख किया और कहा कि उनके मुवक्किल को यह मकान उसके पति के उत्तराधिकार से प्राप्त हुआ है। लेकिन चीफ जज ने कुछ नही सुना। वह वोले—"यह सयुक्त परिवार की सपत्ति है। एक हिंदू स्त्री उस सयुक्त परिवार में उत्तराधिकार नही पा सकती। आपको तीन भाइयो में वटवारे का सवूत देना होगा।"

इस पर जवाहरलाल ने ज़िला जज के फैसले में से एक-दो वाक्यो का उल्लेख किया, लेकिन सर हेनरी पर कोई असर न हुआ।

चीफ जज ने कहा—"यह तो एक सरसरी वात है, यह तथ्य-ज्ञान नहीं है। दिखाइये, आपने कहा इस वात का उल्लेख किया है कि आपको यह मकान इस ढग से हासिल हुआ? वटवारे का क्या प्रमाण है?"

इसके वाद जवाहरलाल ने कहा कि प्रतिवादियो ने इस तर्क से कही इन्कार नही किया और अगर जनाव का यह खयाल है कि उसे उचित रूप में पेश नही किया गया, तो यह मामला उचित निर्णय के लिए निचली अदालत

मोतीलाल उस दिन थे तो इलाहाबाद मे ही, लेकिन सभवत उन्हें घर पर ही कोई अधिक आवश्यक काम था, इसलिए उन्होने इस मुकदमे की अपील जवाहरलाल को सौप दी। इस तरह जवाहरलाल अपने पिता की ओर से इस मुकदमे में पेश हुए।

अदालत के कमरे में बडी भीड थी। मेरे बडे वकील डाक्टर तेजबहादुर मेरे पास बैठे थे। डाक्टर सप्रू और मैं दोनो ही जानते थे कि यह मुकदमा निस्सार है। जब मुकदमा पेश हुआ, तो स्वभावत मैं आशा करता था कि डाक्टर सप्रू खडे होगे। लेकिन उन्होने मुझसे कहा—"कैलाशनाथ, इसमें है तो कुछ नही। तुम्ही जवाब दो और इसे खत्म करो।" मै उठा और मैंने अभिनय शुरू किया। मैंने केवल तथ्य ही पेश किये और कई बार दोहराया कि बेटी और उसका परिवार चालीस साल से भी ज्यादा समय से मकान में रह रहा है और अधिक जोर देने के लिए मैंने कहा—"श्रीमान, नारायणदास तो वस्तुत इस मकान मे ही पैदा हुआ था।" जब मैंने यह कहा तो मैंने देखा कि सर हेनरी रिचर्ड्स ने अपना मुह एक कापी से ढक लिया और उन्हे झपकी आ गई। साथी जज ने भी इस बात को भाप लिया और उन्होने बडे टेढे-टेढे सवाल मुझसे किये। जब यह प्रश्नोत्तर जारी था, तो मैंने देखा कि सर हेनरी के मुह पर पडी कापी हिलने-डुलने लगी है। स्पष्टतया वह जाग गये थे और हर किसीको यह जाहिर करने की कोशिश कर रहे थे कि वह वास्तव मे सोये नही थे, लेकिन बडी गहराई के साथ मुकदमे का अध्ययन कर रहे थे। मैंने उन्हे देखा कि वह मुकदमे को उस जगह पर पढ रहे थे जहा नारायणदास को पैंतीस वर्ष की आयु का बताया गया था। उनके सोने से पहले मैंने यह आखिरी शब्द कहे थे—"श्रीमान, नारायणदास इस घर मे ही पैदा हुआ था।" मैंने देखा कि उन्होने फिर पन्ना पलटा और एकाएक मुझसे पूछा—"क्या आपने यह कहा था कि नारायणदास इस घर मे पैदा हुआ था?" मैंने कहा—"हा जनाब, यही।"

चीफ जज बोले—"लेकिन नारायणदास की उम्र तो पैंतीस वर्ष की है।"

के पास भेज देना चाहिए।

सर हेनरी ने कुछ नही सुना और तनिक कठोरता मे बोले—"यह ऐसा मुकदमा नही है, जिसमे अदालत आपकी किसी भी रूप मे रत्ती भर भी सहायता कर मके। यह आपका काम था कि आप इन आपत्ति को अपने बयान मे ठीक ढग मे पेश करते, जिससे निणयात्मक प्रश्न प्रमाण के लिए उपस्थित हो जाता। इस स्तर पर हम इसे निचली अदालत मे नही भेजेंगे।"

जवाहरलाल ने एक घटे मे भी अधिक समय तक सघर्ष किया, लेकिन सब बेकार रहा। तत्काल फैसला कर दिया गया और अपील मजूर हो गई। मुकदमा मय खर्चे के खारिज हो गया।

इस फैसले से मकान-मालकिन को बडा आघात पहुचा और वह रोती-चिल्लाती फिर मोतीलालजी के पास आनद भवन मे आई। मोतीलालजी ने फैसले की नजरसानी के लिए दरख्वास्त दी और कई महीनो के बाद इसकी सुनाई हुई। मोतीलालजी जैसे ही उठे और उन्होने सक्षेप मे तथ्यो का वर्णन करने के बाद बहस शुरू करनी चाही तो सर हेनरी बोले—"पडितजी, मुझे यह मुकदमा अच्छी तरह से याद है और जवाहरलाल ने बहुत अच्छी तरह इसपर बहस की थी। गलत या सही हम इस अदालत मे मुकदमो पर दुबारा बहस नही होने देंगे। दरख्वास्त नामजूर। अगला मुकदमा बुलाओ।"

सर हेनरी ने ये शब्द इतने विनोदपूर्ण ढग से कहे थे कि मोतीलालजी भी हसे बिना न रह सके।

१९१९ के बाद मैं समझता हू कि जवाहरलाल कई बार अदालतो मे पेश हुए हैं, लेकिन वकील के तौर पर नही, बल्कि एक कैदी के रूप मे। अतिम बार वह १९४५ मे आजाद हिंद फौज के मुकदमे मे दिल्ली के लाल किले मे उपस्थित हुए थे। निश्चय ही इस ऐतिहासिक अवसर पर वह एक वकील के रूप में पेश हुए थे।